अक्षरब्रह्म योग

श्रीमद्भगवद्गीताका आठवाँ अध्याय

ॐ

स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती

अक्षर ब्रह्म-योग

☆

प्रवक्ता

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

☆

संकलनकर्त्री

श्रीमती सतीशबाला महेन्द्रलाल जेठी

☆

संपादिका

डॉ० प्रमिला मलिक

एम. ए., पी. एच. डी.

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालावार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2540481/487

●

प्रथम संस्करण : 1100
5 जुलाई 2001
गुरुपूर्णिमा

द्वितीय संस्करण 1100
विजयादशमी
28 सितम्बर 2009

●

मूल्य : 50/- रुपये मात्र

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम
वाराणसी - 221001
फोन : (0542) 2392337

निवेदन

परमपूजय महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी द्वारा प्रवचित श्रीमद्भगवद्गीताके आठवें अध्यायकी पाठकोंको बहुत समयसे प्रतीक्षा थी। यह कार्य अनेक बाधाओंके कारण विलम्बित होता गया, परन्तु महाराजश्रीकी परम कृपापात्र श्रीमती सतीशबाला महेन्द्रलालजेठीने बड़े परिश्रमसे प्रवचनोंके टेपसे सुनकर इसे लिपिबद्ध कर लिया। विदुषी डॉ० प्रमिला मलिकने अक्षर ब्रह्म-योगको सांज संवारकर प्रकाशन योग्य कर दिया तथा श्रीजीतू भाई एवं सुहासबेन शाह (बड़ौदा)ने प्रकाशन हेतु आर्थिक सहयोग किया। इन सभी सज्जनोंके हम हृदयसे आभारी हैं। इनको महाराजश्रीका आशीर्वाद तो प्राप्त है ही, महन्तश्री ओंकारानन्दजी सरस्वती एवं स्वामीश्री गोविन्दानन्दजी सरस्वतीका भी स्नेह आशीर्वाद प्राप्त है।

इन महात्माओंकी कृपासे ही सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट पाठकोंको महाराजश्रीके नये-नये सत्साहित्य पहुँचा पा रहा है। यह कृपा बनी रहे, बढ़ती रहे जिससे लोकमें ऐसे ग्रन्थोंका प्रसार और-और बढ़े।

निवेदक

ट्रस्टी

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

मुम्बई/वृन्दावन

अनुक्रमणिका

☼

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

अक्षर ब्रह्म-योग स्वामीश्री अखण्डानन्दजी सरस्वतीके प्रवचनोंका संग्रह है। प्रवचन और लेख, दोनोंकी शैली सर्वथा पृथक् होती है; प्रवचन तो श्रोतागणोंको सामने रखकर दिया जाता है, और लेख पाठक वर्गकी जिज्ञासाकी पूर्ति हेतु होता हैं। पूज्य स्वामीजीने अपने विषयके प्रत्येक अंगको आसान-से-आसान शब्दोंमें, पूरे विस्तारके साथ स्पष्ट किया है। प्रवचनको लेखबद्ध करते समय कई सीमाएँ साथ जुड़ जाती हैं; सारे कहे हुए कथनको ज्यों-का-त्यों कागजपर उतारना कदाचित् हो नहीं पाता, क्योंकि कागजकी अपनी सीमा है। इसलिए कहीं-कहीं प्रवचनमें बार-बार दुहराई गयी बातको सीमित करके छोटा कर दिया गया है। इस बातका ध्यान रखनेकी चेष्टा अवश्य रही है कि स्वामीजीकी शैली, उनके शब्द, उनका विचार-प्रवाह खण्डित न हो।

दूसरी कठिनाई तब आयी, जब प्रवचनोंके सारे कैसेट ज्यों-के-त्यों उपलब्ध नहीं हो सके। समयके लम्बे अन्तरालमें वे कहाँ खो गये-पता नहीं चला। कुछ भाग अत्यन्त अस्पष्ट हो गये जिन्हें समझनेमें कठिनाई हो रही थी। आठवें अध्यायके आठसे चौदह तकके श्लोकोंकी व्याख्या पूर्णतः उपलब्ध नहीं हुई। फिर भी जितनी उपलब्ध थी, उसे ही छपवा कर पाठकोंके लिए उपलब्ध करवानेका प्रलोभन बहुत था। इसके लिए स्वामीजी के 'गीता रस-रत्नाकर' तथा 'गीता-रहस्य' भाग ५ में-से उन श्लोकोंकी व्याख्याका भाग ले लिया गया।

अपनी अल्पज्ञता तो सबसे बड़ी कठिनाई है ही। समुद्र तो अगाध है, किन्तु मोती लाने-वालेकी पहुँच कहाँ तक है—यह तो उसकी सामर्थ्यपर निर्भर करता है!

तो प्रबुद्ध पाठक त्रुटियोंपर क्षमा-दृष्टि डालेंगे और स्वामीजीके वचनामृतका आनन्दपूर्वक पान करें—सर्वशक्तिमान् प्रभुसे यही प्रार्थना है।

प्रमिला



स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

अक्षरब्रह्म योग

१

अब आठवाँ अध्याय प्रारम्भ होता है। इस अध्यायको कोई कहते हैं **अक्षर ब्रह्म योग**, कोई कहते हैं **महापुरुष योग**, और कोई इसका नाम रखते हैं **प्रणव ब्रह्म योग**। तीनों बातें इसमें कही गयी हैं और बड़ी विलक्षणतासे कही गयी हैं। 'अक्षरब्रह्मयोग'का तो अर्थ है कि हम परमात्माका, निर्गुण-निराकार परब्रह्मका ज्ञान कैसे करें। यह बात इस अध्यायमें बतायी गयी है। 'महापुरुष योग'का अर्थ यह है कि हम अपने हृदय और शरीरके एक देशमें और फिर ब्रह्माण्डके एक देशमें, फिर प्रकृतिके तिरोभावमें, अपने तिरोभावमें, ब्रह्माण्डके तिरोभावमें और फिर प्रकृतिके तिरोभावमें-परमेश्वरका ध्यान कैसे करें। यह महापुरुष योग है।

ये जितने गुरुपंथ वाले हैं मध्यकालके संतोंके जो मार्ग हैं न, जिनमें राम, कृष्णकी उपासना नहीं, केवल गुरुकी उपासना चलती है—वे लोग इसी अध्यायमें-से यह अर्थ निकालते हैं कि यह गीतामें जो महापुरुषका ध्यान करनेके लिए कहा गया है, वह वक्त-गुरुका ध्यान है। वक्त-गुरु आप समझते हैं न! मानो इस समय जो गुरु मौजूद है, वह महापुरुष है और वही सर्वोच्च लोकसे आया हुआ है। उसमें पिण्डदेश बोलते हैं, शरीरको। पिण्डदेश तो समझो—ये दोनों आँखें जो हैं, ये ज्योति हैं, ज्ञान हैं, प्रकाश हैं। ये कहाँसे आते हैं? एक ऐसी जगह है, जहाँ दोनों आँखोंकी पुतलीसे अगर लकीर खींची जाये, और जाकर दोनों मिल जाये उसको त्रिपुटी बोलते हैं संतोंकी भाषामें। आज्ञाचक्र, त्रिपुटी, फिर बंकनाल, फिर भ्रमरगुफा! भ्रमरगुफामें श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं। यह भी महापुरुष-ध्यान है।

इस प्रकार शरीरके भीतर पिण्डदेशमें भिन्न-भिन्न चक्रोंमें जो भगवान्‌का ध्यान करते हैं, वह भी महापुरुषकी उपासना है। और फिर, पिण्डदेशका सूत्र-सम्बन्ध जुड़ा हुआ है ब्रह्माण्डसे। कहते हैं, कि सिरमें छिद्र होता है-ब्रह्मरन्ध्र और उसका सम्बन्ध समूचे ब्रह्माण्डसे जुड़ा हुआ होता है। तो जैसे हमारे सिरमें ज्ञान गुरु बैठे हुए हैं, वैसे ब्रह्माण्डके सिरमें ज्ञान-गुरु बैठे हुए हैं। जैसे हमारे गुरु हमारे सिरमें हैं, वैसे ब्रह्माण्डके गुरु ब्रह्माण्डके सिरमें है। वे ब्रह्मा होते हैं, प्रजापति होते हैं-ऐसा उनका नाम रखा है! फिर वे हरेक ब्रह्माण्डमें अलग-अलग होते हैं। और

उन सबके ब्रह्मरन्ध्रका जो सूत्र है, वह जिस एकमें जाकरके मिला हुआ होता है न, वह है हिरण्यगर्भ। फिर बोले, ईश्वर पुरुष उसको प्रजापति बोलते हैं, वह सबका गुरु है। फिर उसमें सृष्टिके देवताका ध्यान, प्रलयके देवताकी ध्यान, स्थिति-देवताका ध्यान। वह हिरण्यगर्भका ही ध्यान अनेकरूपसे होता है। फिर है, सर्वेश्वरका ध्यान। इस तरहसे इस आठवें अध्यायमें महापुरुष योगका वर्णन है।

ये पुरुष हैं सब जीव! और ये महापुरुषका ध्यान करके भगवान्‌के जो मन्त्र हैं—ॐ राम त्वं—इस तरहसे ये जो बीज मन्त्र हैं—क्रीं ह्रीं श्रीं क्लीं—इन मंत्रोंका जप करके अपने आपको पिण्ड देशसे ब्रह्माण्ड देशके साथ और ब्रह्माण्ड देशसे फिर माया-मण्डलके साथ, प्रकृति मण्डलके साथ और उसके बाद फिर शुद्ध चैतन्य देशके साथ जोड़ते हैं। ये चार क्षेत्र मानते हैं—पिण्डदेश, ब्रह्माण्ड देश, मायादेश और उसके बाद दिव्य चैतन्य भागवत देश। जितने ये सगुण साकार रूपका ध्यान करनेवाले हैं, वे अन्तमें वहीं ले जाते हैं।

एक तो अक्षरब्रह्म योग, एक महापुरुष योग और एक प्रणवब्रह्म योग है। इसी अध्यायमें ॐकारके जपकी महिमा विशेष रूपसे बतायी हुई है—

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। और

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्—यह सब बात ध्यानकी विशेष रूपसे बतायी हुई है। ज्ञान तो एकाएक ही लोगोंको हो जाता है न, लेकिन ध्यानका अभ्यास करना पड़ता है। ज्ञान प्रमाणके विभागमें है—वस्तुको दिखाने वाला, और ध्यान-निर्माणके विभागमें है—जीवनको बनानेवाला। जीवनको आप जैसा बनाना चाहते हो, वैसा ध्यान करो। एक आदमी समूचा विचार-सागर, वृत्ति-प्रभाकर, पंचदशी पढ़ जाये, लेकिन उसको भाँग पीनेकी आदत हो, तो वह उससे छूट नहीं सकती। परन्तु यदि आदमी थोड़ी देर बैठकर रोज ध्यान करे और उसमें स्वाभाविक आनन्दका उदय हो जाये, कि हमको अपनी शान्तिके लिए, अपने आनन्दके लिए कृत्रिम वस्तुओंका उपयोग नहीं करना चाहिए और स्वाभाविक वृत्तिके द्वारा चित्तका निरोध करके सहज आनन्दको अपने हृदयमें स्फुरित कर ले, तो उसे संसारकी किसी वस्तुकी, किसी क्रियाकी, किसी पराधीनताकी जरूरत नहीं रहे! जो चीज न छूट सकती हो आपकी संसारमें, ऐसी कोई आदत पड़ गयी हो, तो आप थोड़े दिन भगवान्‌का ध्यान करके देखिये। ध्यान करनेसे वहाँ आपको इतना मजा आने लगेगा, इतना रस आने लगेगा, कि संसारकी वस्तु फीकी पड़ जायेगी। उसमें मजा ही नहीं आवेगा।

संसारके विषय-रसको फीका करनेके लिए हृदयमें भगवद्‌रसका आस्वादन होना जरूरी है। जब भीतर कुछ मजा आवेगा, तो बाहरकी चीजोंमें मजा लेनेकी प्रवृत्ति अपने आप ही कटेगी। केवल जानकारीसे काम नहीं बनता है। जानकारीसे अविद्याकी निवृत्ति होती है, परन्तु जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख, अभ्यासजन्य विलक्षण सुख कैसे मिलेगा?

देखो, आज एक वेदान्ती है, वह भी कहता है कि हमको ब्रह्मज्ञान हो गया है। माना, कि हो गया है, इसमें काटने-पीटनेकी कोई बात नहीं है। अच्छा, और शुकदेवजीको ब्रह्मज्ञान हुआ है, सनत्कुमारको भी ब्रह्मज्ञान है, नारदको भी ब्रह्मज्ञान है, दत्तात्रेय, ऋभु या भरत, निदाघ, रैक्व—इनको भी ब्रह्मज्ञान है। बोले-अब इन दोनों प्रकारके आजवाले और उस ब्रह्मज्ञानीमें फर्क है कि नहीं? बोले-ज्ञानमें तो जहाँ फर्क हो, वहाँ एक अज्ञानी होगा, एक ज्ञानी होगा। ज्ञानमें तो फर्क नहीं होता। तब उनके चित्तकी शांतिमें और रहनीमें इतना फर्क क्यों है? तो जो इतनी विशेषता है उनके जीवनमें, वह ध्यानकी विशेषता है। वे अपने चित्तको शांत करके, समाहित करके ऐसे बैठे हुए हैं, कि उनके मनमें संसारकी किसी वस्तुकी इच्छा ही नहीं है। यही जो ज्ञानकी विशेषता है, यह जीवनमें आनी चाहिए।

साधकके जीवनमें जब ध्यानकी विशेषता आती है, तब वह ज्ञानके योग्य हो जाता है। और यदि साधक जीवनमें ज्ञानका अभ्यास हो गया और वह विशेषता आगयी, तो ज्ञान होनेपर भी वह पचेगी नहीं, बनी रहेगी। और बनी रहेगी, तो उनके जीवनको चमका करके निष्ठावान् ज्ञानीके रूपमें लोगोंके सामने रख देगी। इसलिए ध्यानके प्रसंगका निरूपण करनेके लिए 'अक्षरब्रह्म योग' है। कैसे भगवान्‌के नामका जप करना, कैसे महापुरुषका ध्यान करना और कैसे अक्षर ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करना-विशेष करके इन तीनोंको बतानेके लिए यह आठवाँ अध्याय प्रारम्भ होता है।

अब इस आठवें अध्यायके प्रारम्भमें अर्जुन एक प्रश्न करते हैं। सातवें अध्यायके अन्तमें भगवान्‌ने ही ऐसा बीज़ बो दिया कि अर्जुन प्रश्न करे। उन्होंने बताया कि भाई, जो उस ब्रह्मको जानता है और सम्पूर्ण अध्यात्मको जानता है, जो सम्पूर्ण कर्मको जानता है, अधिभूतको जानता है, अधिदैवको जानता है, अधियज्ञको जानता है, और इन सबको मुझसे एक जानता है—अधियज्ञके रूपमें भी भगवान्, अधिदैवके रूपमें भी भगवान्, अधिभूतके रूपमें भी भगवान्, कर्मके रूपमें भी भगवान्, अध्यात्मके रूपमें भगवान्, अक्षर ब्रह्मके रूपमें भगवान्-वह

ऐसा इष्टचेता हो जाता है, कि मृत्युके समय भी विस्मृति और मूर्च्छा उसका कुछ नही बिगाड़ सकती—**प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।**

सातवें अध्यायके अन्तमें यह बात कही गयी कि 'ते युक्तचेतसो भवन्ति'—युक्तानि चेतांसि ये चायन्ते युक्तचेतसः—जिनका चित्त बिल्कुल युक्त है।

अब देखो, पहले युक्तचित्तके बारेमें दो बात सुनो। चित्त माने क्या? हमारे चित्तमें जो स्फुरणाएँ उठती रहती हैं न—यह अच्छा है, यह बुरा है, यह स्त्री है, यह पुरुष है—इन स्फुरणाओंका नाम चित्त है। तो यह युक्त है कि अयुक्त है? युक्त शब्दका प्रयोग संस्कृतमें उचितके अर्थमें भी होता है-यह बात युक्त है, यह बात अयुक्त है। अयुक्त है माने अनुचित है; युक्त है, माने उचित है तो चित्त उसका युक्त हो गया, माने औचित्य उसके चित्तमें अवतीर्ण हो गया। अब उसका चित्त औचित्यका उल्लंघन नहीं करता है, जो उचित है, सो ही सोचता है—**युक्तचेतसः।**

भगवान्को यह युक्त होना बहुत पसन्द है। यह बात आप छठे अध्यायमें देख चुके हैं, और सातवें अध्यायमें भी इसका प्रयोग हुआ है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

एक आदमी खूब योग करके, तीन घंटे आसन लगावे, और प्राणायाम करके साँसको बिलकुल रोक ले, तो बोले—ऐसा जो योगाभ्यास है आसन—प्राणायाम करनेका, उसको करनेवाला सुखी होगा कि नहीं होगा? तो बोले कि नहीं, आसनसे बैठनेसे कोई सुखी नहीं होगा, और साँस रुँधनेसे कोई सुखी नहीं होगा—**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।** तुम्हारा आहार-खाते क्या हो? उचित भोजन करना चाहिए। हित, मित, मेद्य। भोजन शरीर, मनके लिए हितकारी होवे। मित माने एक मात्रामें होवे, यह नहीं कि चाहे जितना खा गये। बोले खीर तो महाराज, बड़ी सात्त्विक है। हाँ, खीर तो बहुत सात्त्विक है। तो फिर ढाई सेर खा जायँ क्या? ढाई सेर खा जाओगे तो खीर सात्त्विक रहेगी क्या? नहीं, खीर सात्त्विक नहीं रहेगी। खीर हित तो है, लेकिन मित नहीं। माने, खानेकी एक लिमिट होनी चाहिए। यह मित है न, लिमिट सीमित मात्रा होनी चाहिए खानेकी। हित हो, मित हो और मेद्य हो। मेद्य हो माने यज्ञमें उसका प्रयोग किया जा सकता हो, भगवान्को भोग लगाया जा सकता हो। भोजन ऐसा होना चाहिए कि देह और मनके लिए हितकारी. और मात्रा उसकी उचित हो। यह नहीं कि कम हो। एक निश्चित मात्रा होनी चाहिए।

हमारे एक मित्र थे। अभी पिछले साल उनका शरीर पूरा हुआ—मैं समझता हूँ, कोई अट्ठावन उनसठ वर्षकी उम्रमें। उन्होंने जो तीस वर्षकी उमरमें नियम लिया था, कि उन्नीस ग्रास खायेंगे तो सारे जीवन उन्होंने उसका निर्वाह किया। इसका नाम मित है। हित, मित और मेद्य। ऐसा **आहार** भगवान् को पसन्द है।

विहार—स्त्री-पुरुषका जो सम्बन्ध है, अथवा चलना-फिरना है, उसके सम्बन्धमें भी एक नियम होना चाहिए—'युक्त विहार'।

युक्त स्वप्न—यह नहीं कि कभी रात भर जागते रहे, और कभी दिन भर सोते रहे। समयसे सोना और समयसे जागना।

युक्तचेष्टस्य कर्मसु—और कर्ममें जो अपनी चेष्टा है एक दिन पशुकी तरह लग गये तो दिन भर काम ही करते रहे और एक दिन ऐसा आलस्य आया कि बस पड़े हुए हैं, तो ऐसे आदमी यदि योगाभ्यास करें, तो उनका दु:ख नहीं मिटता है। योग दु:ख तब मिटाता है, जब आदमी कायदेसे अपना जीवन व्यतीत करता है। जीवनमें युक्त होना आवश्यक है, इसीलिए भगवान्ने युक्तकी प्रशंसा की है। जब किसीकी तारीफ करनी हो, तो भगवान् उसे युक्त कहते हैं।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥

स्थितप्रज्ञकी प्रशंसा करनी हुई, तो भगवान्ने क्या कहा? **स युक्त आसीत् मत्परः**। भगवान्का भरोसा करके, युक्त होकरके बैठना चाहिए।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥

जैसे कोई अपना विचार प्रकट करे, तो हम लोग कहते हैं—इसने बड़ा युक्तियुक्त विचार प्रकट किया है। वैसे ही हमारा आचरण, हमारी रहनी युक्तियुक्त होनी चाहिए। संयम होना चाहिए जीवनमें, युक्ति होनी चाहिए। मैंने थोड़े दिन हुए, किसी पत्रिकामें पढ़ा था कि जब महात्मा गाँधी गोलमेज कान्फ्रेन्समें गये थे, तो वहाँ सम्राट्की ओरसे आमंत्रित किये गये। जब सम्राट् और गाँधीजी दोनों मिले, पहले सम्राट्-पंचम जार्जने गाँधीजीकी बड़ी तारीफ की, और उसके बाद उनको क्रोध आ गया। बोले तुमने हमारे बिलका बहिष्कार करवा दिया। अब तुम हमारे अफसरोंको मरवा रहे हो, और बड़ा भारी असहयोग आन्दोलन हिन्दुस्तानमें छोड़ रखा है। तुमको भला ऐसा करना चाहिए? बड़ा अनुचित काम कर रहे हो। मुझे तुम समझते नहीं हो, मेरे अन्दर क्या शक्ति है, ऐसे महाराज, भरी सभामें।

अब तो सब लोग डर गये कि पता नहीं गाँधीजी क्या कहेंगे। गाँधीजी बोले कि सम्राट्! मैं आपके महलमें अतिथिके रूपमें आया हूँ, और भोजन भी कर चुका हूँ। ऐसी स्थितिमें मैं आपसे वाद-विवाद करूँ तो मेरे लिए बिलकुल अनुचित होगा। आप जो कहते हैं सो सब ठीक है। अब महाराज, क्या बतायें! गाँधीजीका अपने मनपर, अपनी बुद्धिपर, अपनी वाणीपर कितना संयम है, इसका यह एक नमूना है। इंग्लैण्डकी भरी सभामें इतना बड़ा तिरस्कार करनेके बाद बोले कि तुम्हारा आतिथ्य ग्रहण करनेके बाद तुमसे मैं वाद-विवाद नहीं कर सकता। बात ही कट गयी बिलकुल।

बुद्धिकी युक्तियुक्तता है, मनकी युक्ति युक्तता है, वाणीकी युक्तियुक्तता है, रहनीकी युक्तियुक्तता है—यही नियमका सार है। इसके बिना न ज्ञान दु:ख दूर करेगा, न माला दु:ख दूर करेगी, न प्राणायाम दु:ख दूर करेगा। सम्पूर्ण दु:खोंका कारण रहनी है और सम्पूर्ण दु:खोंकी निवृत्तिका कारण भी रहनी है। ज्ञानसे ब्रह्म और आत्माकी एकता जानी जाती है, भक्तिसे भगवान् प्राप्त होते हैं, योगसे समाधि लगती है, धर्मसे स्वर्ग मिलता है, लेकिन वर्तमान जीवनका सुधार अपनी रहनी से होता है। अगर रहनी नहीं सुधरी, तो इस जीवनमें कोई सुखी नहीं हो सकता।

युक्त शब्दका प्रयोग भगवान् बड़े ही ऊँचे अर्थमें करते हैं—

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥

बहुत सारी युक्तियाँ होती हैं तो युक्ततम भी बोलते हैं—**ते मे युक्ततमा मताः।** ऐसा!

भगवान्ने युक्तचेता कह कर जिनकी प्रशंसा की, यह इसलिए कि धरती और आकाश भी उनके लिए ईश्वर रूप हो जाता है। चींटी और ब्रह्मा भी, सब जीव और देवता भी ईश्वर रूप हो जाते हैं। और मृत्यु भी उनको ईश्वररूप दिखायी पड़ती है। भागवतमें एक श्लोक आया है—**दृष्टं ते पदाम्बुजं या तं संभ्रमं च कालेऽपि** जो भगवान्का ध्यान करते हैं, उनके चरणारविन्दका ध्यान करते हैं, उनको मृत्युके समयमें भी भ्रम नहीं होता, संशय नहीं होता, विस्मृति नहीं होती, मोह नहीं होता, मूर्च्छा नहीं होती। ध्यान ही असलमें मनुष्यका जीवन बन करके उतरता है। जिसका ध्यान करोगे, वही हो जाओगे।

वह कौन-सी वस्तु है, जिसको युक्तचेता लोग जानते हैं, जिसका ध्यान करते हैं। उसको जाननेके लिए अर्जुनने प्रश्न किया।

अर्जुन उवाच—ऐसा समझो कि व्यासजी महाराज कह रहे हैं। वैशम्पायन जनमेजयसे कह रहे हैं कि ये आगे जो दो श्लोक हैं, वे अर्जुनके वचन हैं। यह 'अर्जुन उवाच' भी तो कोई बोल रहा है न! वह बता रहा है कि आगेके जो दो श्लोक हैं, वे अर्जुनके वचन हैं।

अर्जुन शब्दका अर्थ तो आप कई बार सुन चुके हैं। जिसका स्वभाव ऋजु हो, सरल हो, उसे अर्जुन बोलते हैं। जो अर्जनशील हो, ज्ञानका अर्जन करे, उसका नाम अर्जुन होता है। जो अर्जुन वृक्षके समान सीधा और धवल होवे, उसको अर्जुन कहते हैं। वेदमें एक जगह कृष्ण और अर्जुन दोनों शब्दोंका प्रयोग है—'**अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च।**' दिनका नाम अर्जुन और दिनका नाम कृष्ण है।

यहाँ 'अहः' शब्दका प्रयोग है। तो अहः क्या है? प्रकाश। प्रकाशका नाम ही दिन है। बोले—कृष्ण भी प्रकाश है, अर्जुन भी प्रकाश है। प्रकाश और प्रकाशका यह मेल है। अभिप्राय क्या है? कि शुक्लता जो है, वह अर्जुनका स्वभाव है। कोई छल नहीं, कोई कपट नहीं, बिलकुल निश्छल; बात आयी मनमें, सरल स्वभावसे पूछ लिया। यह 'अहः' पद जो है न, यह सूर्यमें निकलता है, तो 'अहः' होता है, और बुद्धिमें-से निकलता है, तो 'अहं' होता है। 'अहं' और 'अहः'। यह वेदमें 'अहः' पदका दो तरहसे प्रयोग है; आधिदैविक—सूर्यमण्डलमें स्थित परमात्मासे जो प्रकाश निकलता है, उसका नाम 'अहः', दिन और आध्यात्मिक बुद्धिमण्डलमें उपाधिको काट दो, तो वह प्रकाश और प्रकाश दोनों एक। तो सूर्यमण्डलमें-से प्रगट होनेवाला अर्जुन।

यह बुद्धि जो है ना, यह भी कर्म-संस्कारसे ही बनती-बिगड़ती है। जो चीज संस्कारसे बनती-बिगड़ती है, वह इन्द्रमण्डलमें रहती है। क्यों? इन्द्र हाथका देवता है। हाथके अधिष्ठातृ देवताका नाम इन्द्र है। इसलिए जो भी वस्तु कर्मजन्य होती है, वह इन्द्रमण्डलमें होती है। उसका जो मालिक है, उसे इन्द्र बोलते हैं। और अर्जुन कौन है? कि इन्द्रका पुत्र है। इसलिए बुद्धिमण्डलमें स्थित चैतन्य और आधिदैविक सूर्यमण्डलमें स्थित चैतन्य, वह प्रकट होकर दिम बनता है, और यह प्रकट होकर अहं बनता है। वह कृष्ण है, वह समष्टिको प्रकाश देने वाला है और यह अहं है जो व्यष्टिको प्रकाश देनेवाला है। व्यष्टि और समष्टि दोनोंकी उपाधिका अपवाद करके यदि केवल शुद्ध चिन्मात्र वस्तुको देखा जाय, तो जो अहंमें है, वही अहःमें है।

न हन्यतेति अहं—जिसका कभी नाश न हो, उसका नाम अहं, जिसका कभी नाश न हो, उसका नाम अहः।

तब अर्जुनकी यह जिज्ञासा है—**उवाच**। बड़ोंके सामने बोलना, तो कुछ जाननेके लिए बोलना। 'उवाच'का यह अर्थ नहीं है कि कुछ उपदेश कर रहे हैं अर्जुन। उवाचका अर्थ है कि पूछ रहे हैं, जिज्ञासा कर रहे हैं। कहीं-कहीं आदर करनेकी भी यह प्रणाली है।

एक संत हैं बड़े अच्छे। बड़े हैं, वृद्ध हैं, विद्वान् हैं। उनके पास हम लोग कभी जायें, तो वे प्रश्न करना शुरू कर देते हैं। जानते हैं सब, पर पूछते हैं। क्यों? आदर करनेके लिए! यह एक प्रकारकी सम्मान करनेकी पद्धति है। अर्जुन सम्मान करनेके लिए नहीं पूछते हैं। उनके मनमें सच्ची जिज्ञासा है, इसलिए पूछते हैं—

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥ १॥

किं तद् ब्रह्म? तुमने कहा—**ते ब्रह्म तद् विदुः**—वे कुछ ब्रह्मको जानते हैं। वह ब्रह्म कौन-सा? ब्रह्म माने जो सबसे बड़ा है, और जिससे बड़ा दूसरा कोई न हो। ब्रह्म शब्द निरतिशय बृहत्ताशालीका वाचक है। जिससे बढ़कर दूसरा कोई बड़ा हो ही नहीं, उम्रमें भी। सबसे बड़ा होना माने अनादि और अनन्त होना। इससे पहले भी कोई नहीं था और पीछे भी कोई नहीं है, माने खानदानकी उन्नति और नाश-दोनों देखनेवाला है यह। इसको नित्य बोलते हैं, इसको सत्य बोलते हैं, इसको अविनाशी बोलते हैं।

अच्छा, और लम्बाई-चौड़ाईमें? लम्बाई-चौड़ाईमें सब इसकी गोदमें पैदा होते हैं, और मरते हैं! यह ज्यों-का-त्यों! देशसे परिच्छिन्न इसको बोलते हैं, यही बड़प्पन है। और वजनमें भी सबसे दमदार, बड़ा यही है। माने असली सत्ता इसीकी है। अबाधित सत्तावाला ब्रह्म ही है। सद्वस्तुकी दृष्टिसे ब्रह्म अन्तिम सद्वस्तु और कालकी दृष्टिसे ब्रह्म कालातीत, और देशकी दृष्टिसे ब्रह्म देशातीत; यह निरतिशय बड़प्पन है।

बताओ न—**किं तद् ब्रह्म**? वह जो ब्रह्म है, वह क्या है? किं तत् माने जैसे यह प्रश्न हमारी दृष्टिमें आता है, ऐसे एक बार ब्रह्म हमारी दृष्टिमें आजाये। एक सज्जन दावा करते थे कि तुम अपने मनमें कोई भी चीज सोचो, मैं बता दूँगा! एकने कहा, अच्छा, हम परीक्षा लेते हैं। तो आप बताओ, बताओ हमारे मनमें क्या है? बोले कि तुम्हारे मनमें 'क्या' है। जिस समय तुमने यह पूछा कि मेरे मनमें क्या है, उस समय तुम्हारे मनमें 'क्या' है। देखो, ठीक बताया कि नहीं? हाँ. बिलकुल ठीक है।

मनमें 'क्या' शब्दका जैसे अर्थ आता है, वैसे ब्रह्म शब्दका अर्थ हमारी वृत्तिमें एक बार, केवल एक बार आनेकी जरूरत है **अपूर्वमनपरं अबाह्यं अनन्तरं सकृद् विभासम्।**

श्रुति कहती है सकृद् विभासम्—केवल एक बार हृदयमें आयी हुई ब्रह्माकार वृत्ति अनादि अविद्याको सर्वदाके लिए तहस-नहस कर देती है। उसका लेश-मात्र भी नहीं रहता है। इसलिए बताया कि किं तद् ब्रह्म।

अब प्रश्न यह हुआ कि भगवान्ने कहा कि जिस ब्रह्मके बारेमें तुम पूछ रहे हो, वह ब्रह्म तो तुम्हारा शरीर ही है, तुम्हारी आत्मा ही है। बोले—नारायण कहो, हमारे शरीरमें है, हमारी आत्मा है, यह क्या विचित्र है! यह बताओ—**किमध्यात्मं?** जिस अध्यात्ममें वह ब्रह्म समाया हुआ है—यह आत्मा ही ब्रह्मका स्वरूप है, तो यह आत्मा क्या है? यह तो बताओ! ब्रह्म सगुण है कि निर्गुण है? और निर्गुण है, निर्विशेष है, तो सर्व होना चाहिए न! और सर्व होना चाहिए, तो 'मैं' भी होना चाहिए। यह 'मैं' क्या है? **किम् अध्यात्मं।** यह जीव क्या है?

अध्यात्म शब्दका अर्थ है, परा प्रकृति, जिसको सातवें अध्यायमें बताया—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

इसलिए आत्मनि इति अध्यात्मं। इस देहमें बैठ करके देहको मेरा माननेवाला यह कौन है? तुम कहते हो कि यह आत्मा ही ब्रह्म है! यह कौन है जो इस देहको मेरा मानकर इस शरीरमें बैठा हुआ है?

बोले, भाई, यह जो देह मिला है, यह हमेशाका थोड़े ही है! यह तो कर्मके फलस्वरूप मिला है। एक कर्म भगवान् करते हैं और एक कर्म जीवका होता है, और दोनोंसे यह सृष्टि बन जाती है!

देखो, सम्पूर्ण जीवोंके अनादि कर्मोंके अनादि संस्कार सत्तामें डूबे रहते हैं। अब वही जीव-विशिष्ट सत्ता जो है, उसका नाम प्रकृति है। जीव-विशिष्ट जो सत्ता है, उसका नाम अविद्या है, और जो शुद्ध सत्ता है, उसका नाम ब्रह्म है। जीव-विशिष्ट सत्ता ही माया है, जीव-विशिष्ट सत्ता ही अविद्या है, जीव-विशिष्ट सत्ता ही अव्यक्त है।

बोले, यह जो जीव-विशिष्ट सत्ता भी है, वह शान्त थी, वह कैसे बाहर निकली? वह अध्यात्म कैसे हो गया? वह अन्तःकरण-रूप कैसे हो गयी? बोले उसके पीछे तो कर्म है। भगवान्ने संकल्प किया—**एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायै।** सगुण

ईश्वरने संकल्प किया कि मैं एकसे बहुत हो जाऊँ। यह भगवत्कर्म है। भगवान्‌का कर्म है, और जीवके जो अनादि कालके सोये हुए कर्म थे—जो उसने यज्ञ किया था, याग किया था, दान किया था, व्रत किया था। पाप किया था, पुण्य किया था—वे सब सोये हुए थे, वे सब-के-सब जग गये।

बोले, देखो अर्जुन! युद्धका समय है। अब जो खास-खास बातें हैं, वे कर लो, और यह निश्चय करके कि युद्ध करना है—अब ज्यादा बातचीत इसके सम्बन्धमें मत करो। अर्जुनने कहा कि बाबा, युद्ध होगा तो उसमें कभी जय होता है, कभी पराजय होता है—उसकी तो कोई परवाह नहीं है। कभी मरते हैं, कभी मारते हैं, लेकिन तैयार आदमीको दोनों हालातके लिए रहना चाहिए। अगर उसको जाने बिना मर जायेंगे कृष्ण, तो संतोष नहीं मिलेगा। जानकर मरना अच्छा है। और फिर तुम्हारे सरीखा बतानेवाला पुरुषोत्तम! तुम्हारे सरीखा बतानेवाला दूसरा कोई मिलनेवाला नहीं है! अर्जुनका तो यह निश्चय है न, **त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता नहि उपपद्यते**—तुम्हारे सरीखा इस संशयको काटनेवाला नहीं मिलेगा।

नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥

कोई ऐसी शक्ति नहीं है सृष्टिमें, तुम्हारे सरीखा कोई गुरु नहीं है, जिसको प्राप्त करके हमारा शोक दूर होवे। तो **पुरुषोत्तम** पुरुषोंमें उत्तम सर्वश्रेष्ठ पुरुष! अब तुम बताओ कि तुम्हें छोड़करके मैं और किसीसे पूछनेके लिए इस प्रश्नको बाकी रख लूँ?

बोले—यह कर्म भी ईश्वरका संकल्प है और जीवका जो कर्म है, यह अन्तःकरण वैसा है! अच्छा भाई, यह भी समाधान हो जाये। **अधिभूतं च किं प्रोक्तम्**—यह जो हम लोगोंका स्थूल शरीर मिलता है, और यह जो अधिभूत सृष्टि है क्षर, यह कहाँ से हुई? यह पाँच भौतिक सृष्टि क्या है, यह बताओ। **अधिदैवं किमुच्यते**? और इसमें जो प्रजापति बनकर। ब्रह्मा बनकर, हिरण्यगर्भ बन कर तत् तत् वस्तुओंमें देवता बनकर जो बैठा है, वह क्या चीज है?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः॥ २॥

'हे' मधुसूदन! यह भी भगवान्‌के लिए बड़े प्रेमका सम्बोधन है। भगवान् मधुसूदन हैं। जैसे समझो कि कोई जंगल है और उसमें मधुमक्खियोंने बहुत सारे छत्ते लगा रखे हों, और एक मधु निकालनेवाला आवे और हर छत्तेमें-से मधु

निकाल-निकालकर अपने पास इकट्ठा करले, तो उसको क्या बोलेंगे? उसे मधुसूदन बोलेंगे। योग में, शास्त्रमें, पुराणमें जो मधु है—इस प्रपंचमें मधु तो ब्रह्म ही है। बृहदारण्यकोपनिषद्में एक मधु ब्राह्मण ही है—

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥
मधुनक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवँ् रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥

सम्पूर्ण अनेकताओंमें-से एक ब्रह्मको, समस्त विनाशी पदार्थोंमें-से एक अविनाशी ब्रह्मको, सब जड़ पदार्थोंमें-से एक चेतन ब्रह्मको जो निकाल करके ले आवे, उसका नाम मधुसूदन। जो सब फूलोंमें-से पराग चुनकर ले आवे, वह मधुसूदन। एक मधु नामका दैत्य हुआ है, मधु और कैटभ। मधु माने राग और कैटभ माने द्वेष। ये राग-द्वेष दो दैत्य हैं—असुर। ये किसके बेटे हैं? बोले—दैत्य-दितिके। कश्यपका सम्बन्ध छूट गया। कश्यपके बेटे तो देवता भी होते हैं। ये दैत्य क्यों हुए? इनमें जो विशेषता है, वह कश्यपका होनेसे नहीं है। अदितिका होनेसे देवता, और दितिके होनेसे ये दैत्य हैं। कश्यप तो दोनोंका बाप है।

मधुसूदन माने क्या हुआ? मधु और कैटभ नामके जो दैत्य हैं, वे कौन हैं? कि **विष्णुकर्णमलोद्भूतं**—भगवान्‌के कानमें जो मैल है न, उस मैलसे पैदा हुए हैं। यह राग-द्वेष जो होता है, यह कानका मैल ही है; आप कभी विचार करके देखना। हम लोगोंके हृदयमें भी जो राग-द्वेष होता है न! जब कोई बहू आजाती है घरमें, तब वह पतिका कान सासके विरुद्ध भर देती है, तो पतिके मनमें अपनी माँके प्रति जो दुर्भाव आया, वह कहाँसे आया? पतिके मनमें आया द्वेष, पतिके कानका मैल है। वह किसने भर दिया? कि वह श्रीमतीजी जो आयी हैं उसने कहा कि बचपनसे इन्होंने कब्जेमें कर रखा है। अब भी इनके कब्जेमें रहेंगे। मैं पराये घरसे आयी, तो कोई ऐसी युक्ति करो, कि इनके कब्जेमें न रहे। हम अपने कब्जेमें कर लें। यह लीला महाराज! हम भी संसारमें जिसके प्रति दुर्भाव रखते हैं, उसकी बुराई देख-देखकर दुर्भाव रखते हैं? नहीं, सुन-सुनकर! यह कर्णमलोद्भूत है!

महाराज, मधु-कैटभ ब्रह्माको मारनेके लिए तैयार! अन्तःकरणका संहार करते हैं। वह अन्तःकरणका बेटा है न! जहाँ ये पैदा हुए, अन्तःकरणमें, बस, जन्म-जन्म दुःख लाकर बसा देते हैं।

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ। ब्रह्माको मारनेके लिए उद्यत! अब महाराज, विष्णुने कहा कि हम मारेंगे। लड़ाई हुई। पाँच हजार वर्षतक

राग-द्वेष और विष्णु भगवान्‌की लड़ाई होती रही। तो नहीं मारे गये। राग-द्वेष! दुर्गा-सप्तशतीमें यह कथा है। फिर महाराज, उनके मनमें ऐसा हुआ, विष्णु भगवान्‌ने देवीकी आराधना की, देवीका चिन्तन किया। तब देवीने उन दैत्योंकी बुद्धि फेरी। वे बोले—विष्णु! हम तुमसे बहुत खुश है, क्योंकि हम दो भाई हैं और तुम अकेले हो और पाँच हजार वर्षतक हमसे लड़ते रहे, मरे नहीं! बहुत प्रसन्न हैं हम। जो माँगो, सो वरदान देनेके लिए तैयार। विष्णु भगवान्‌ने कहा—अच्छा, अब देवी महामाया भगवतीने इनकी बुद्धि फेरी। बोले, अच्छा भाई, तुम हमारे हाथों मर जाओ! माने जबतक राग-द्वेष स्वयं मरनेके लिए तैयार नहीं होंगे, तबतक उनको दूसरा कोई नहीं मार सकता। एक बार जब चित्तमें राग-द्वेष पैदा हो जाते हैं, तो उनको मारनेके लिए उन्हींकी स्वीकृति लेनी पड़ती है। माने जब संसारमें राग हो गया है, तो भगवान्‌से राग करना पड़ता है। यह उनके मारनेकी पद्धति है। अन्तमें उन्होंने कहा—अच्छा, आप हमको मार डालो—**आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता।** हमें कहाँ मारो? हमें वहाँ मारो, जहाँ धरतीपर पानी न हो। इसका मतलब है कि संसारका जो भोग है न, वह जीवनमें रसका संचार करता रहता है। तो उन्होंने कहा कि राग-द्वेषकी मृत्यु वहाँ हो सकती है, जहाँ रसीले विषयोंका, रसीले भोगोंका सेवन न हो। जहाँ हमारी व्यवहार-भूमिमें रागका रसीलापन न हो। मजा न आता हो। ऐसा तपस्वी जीवन व्यतीत करो, ऐसा ध्यानी जीवन व्यतीत करो, ऐसा ज्ञानी जीवन व्यतीत करो, जिसमें रसीलापन न आये, रँगीले न बन जाओ। एक 'रंगीले-रसिक' किताब मैंने पढ़ी थी, बहुत बढ़िया थी, स्वामी श्रद्धानन्दजीने अपने पूर्व जीवनमें, संन्यासी होनेके पहले लिखी थी।

यह रंगीलापन जो जीवनमें है, यह जब मिटता है, जब रागकी मृत्यु होती है। तो विष्णु भगवान्‌ने उन्हें अपने एक घुटनेपर मार डाला, बोले—यहाँ भाई, पानी-वानी नहीं है कोई। बिलकुल सूखा है। ऐसे जो पुरुष हैं, मधुसूदन-राग-द्वेषको मिटानेवाले। हमारे चित्तमें भी जो राग-द्वेष हैं, उसको मिटा करके हमको परमात्माका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कराओ, इसके लिए अर्जुन 'मधुसूदन' सम्बोधन करते हैं।

अब यह प्रसंग फिर कलके लिए रखते हैं।

★

२

भगवान् कृष्णने अर्जुनको यह बात बतायी, कि जो मेरा भजन करते हैं, मेरी प्राप्तिके सिवाय, मोक्षके सिवाय और सब कामनाओंको छोड़ देते हैं और केवल मेरा ही आश्रय लेकर प्रयत्नमें लगे रहते हैं, वे उस सम्पूर्ण ब्रह्मको जानते हैं, अध्यात्मको जानते हैं, सम्पूर्ण कर्मको जानते हैं। और जो अधिदैव, अधिभूत, अधियज्ञ सहित मुझे जान लेता है, मृत्युके समय भी वह मुझे अवश्य जानता है। उसका मन मुझमें ऐसा लग जाता है कि कभी छोड़ता नहीं। यह एक ऐसी बात कही भगवान्ने कि कोई चाहनेकी चीज ऐसी है—और वह भगवान् ही है कि अगर ठीक-ठाक जान ली जाये, तो मनुष्यका चित्त हमेशाके लिए भगवान्के साथ जुड़ जाता है, कभी बिछुड़ता नहीं।

अब अर्जुनके मनमें स्वभावसे ही यह जिज्ञासा हुई, कि जिसको जाननेसे फिर भगवान्के स्मरणमें कोई शंका नहीं रहती, उस चीजको जरूर जानना चाहिए। इसलिए उसने प्रश्न किया। कल बताया आपको—बड़ा सरल, भोला-भाला, शुक्ल स्वभावका, अध्यात्मका प्रताप है अर्जुन, क्योंकि जहाँ छल है, कपट है, राग है, द्वेष है, वहाँ महात्मा लोग परमात्माका जो असली तत्त्व है, उसका उपदेश नहीं करते। बोले—महात्मा लोग तो सबको अच्छा समझते हैं, सबको उपदेश करते हैं। कि हाँ, उपदेश तो करते हैं, परन्तु ऐसे लोगोंको वह उपदेश धारण ही नहीं होता है। देखो न! कितने लोग इस बातकी जानकारी प्राप्त करते हैं कि हमें भोग कैसे-कैसे करनी चाहिए। क्या-क्या चीज खायें, क्या-क्या चीज पहनें, क्या-क्या चीज अपने शरीरमें लगावें। भोगके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करने वाले लोग बहुत हैं—**बुभुक्षुः दृष्यते लोके**। संसारमें देखो, भोगके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा बहुत-बहुत लोगोंको है।

कुछ लोग ऐसे हैं, जो भोग भी नहीं चाहते हैं, किस्मतके मारे अर्थ ही चाहते हैं। उनको खाने, पहनने, भोगने, संसारी सुखकी भी कोई परवाह नहीं है। वे तो बस इकट्ठा करो, इकट्ठा करो—इसीमें लगे हुए हैं। मैंने एक सेठके बारेमें सुना कि

उनको यह याद नहीं रहती है कि मैंने आज भोजन किया है कि नहीं किया है। दूसरे लोग उनको याद दिलाते हैं कि सेठजी, आज अभी आपने भोजन नहीं किया। किस काममें लगे हुए हैं? कि धारा-प्रवाह जो उनके पास द्रव्य आ रहा है, वह आता रहे; और भी बढ़े—इसीमें उनकी चित्तवृत्ति लगी है। न तो उस द्रव्यका दान करते हैं, न तो उस द्रव्यका भोग करते हैं। आदत पड़ गयी हैं—आने दो, आने दो! और आवे, और आवे! नारायण कहो! सारी जिन्दगी मिट्टीमें मिल गयी!

बहुत लोग ऐसे हैं, जो भोग नहीं चाहते हैं, द्रव्य नहीं चाहते हैं, लेकिन-कैसे बोलें, कैसे चलें, कैसे उठें, कैसे काम करें, बोले-भाई, हमको कुछ नहीं चाहिए। हमें तो काम करनेको चाहिए। काममें लगे हुए हैं। उनको भी ईश्वर प्राप्तिकी इच्छा नहीं है; भोगकी इच्छा है, धनकी इच्छा है, काम करनेकी इच्छा है। कई लोग अपने शरीरको सजाने-सँवारनेमें लगे हैं। कई लोग अपने मनको सँवारनेमें लगे हैं, पर परमात्मा क्या है—यह जाननेकी इच्छा तो बहुत कम लोगोंमें होती है! केवल इन्द्रियोंकी तृप्तिमें ही मनुष्य लगा हुआ है। अकेले हुए तो मैं-मैं-मैं, ब्याह कर लिया तो हम, हम, हम, अब महाराज, यह 'मैं' और 'हम'के चक्करमें सारी सृष्टि चतुष्पाद हुई जा रही है। अर्जुन सरीखा कोई जिज्ञासु होता है, **किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा**— हम भोग लेकर क्या करेंगे, राज्य लेकर क्या करेंगे, जी कर क्या करेंगे, यदि इस जीवनमें सत्यका साक्षात्कार नहीं हुआ।

इसलिए अर्जुनने यह प्रश्न किया कि महाराज! जिसके जान लेनेसे मनुष्य युक्तचेता हो जाता है, और मृत्युके समय भी विस्मरण न हो, ऐसा ज्ञान प्राप्त हो जाता है—उन चीजोंका ज्ञान तो आप हमें प्राप्त करा दो, क्योंकि हे पुरुषोत्तम! आपके सिवाय इन बातोंको बतानेवाला दूसरा कोई नहीं है। आप स्वयं उत्तम पुरुष हैं। वह ब्रह्म क्या है? **किं तद्ब्रह्म**? वह सम्पूर्ण ब्रह्म जिसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं—वह क्या है, यह बताओ।

अथवा भक्त लोग तो इसका बड़ा विचित्र अर्थ निकालते हैं। वह भी आपको सुना देता हूँ। कि हे पुरुषोत्तम! त्वमेव साक्षाद् ब्रह्म त्वया तदिति ब्रह्म किं उत्तम? हे पुरुषोत्तम! साक्षात् ब्रह्म तुम्हीं हो, फिर वह ब्रह्म है—ऐसा तुमने क्यों कहा? यह क्यों नहीं कहा, कि मैं ही ब्रह्म हूँ? तुम तो साक्षात् ब्रह्म हो! अध्यात्मं किं? और वह ब्रह्ममें जो जीव विशिष्ट सत्ता, चित्ता, आनन्दता प्रकट हुई है, वह क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत क्या है? अब इन सब प्रश्नोंका उत्तर है न!

अधिभूत क्या है? मिट्टी, पानी, आग-जो क्षर भाव है, अपरा प्रकृति है—यह क्या है? इसमें अधिदैव कौन-सा है? प्रत्येक इन्द्रियका अलग-अलग देवता, प्रजापति, ब्रह्मा, हिरण्यगर्भ, यह क्या चीज है?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन!

जो राग और द्वेषसे युक्त होता है, वह सत्यका निरूपण कभी नहीं कर सकता, क्योंकि वह राग तो उसके ज्ञानमें जुड़ जाता है। वह न अपने बारेमें ठीक निर्णय कर सकता है, न दूसरेके बारेमें ठीक निर्णय कर सकता है। राग जो है, वह ज्ञानको भ्रष्ट कर देता है। सच्चाईके ज्ञानको भ्रष्ट करनेवाली अगर कोई चीज है, तो वह राग है।

हमें एक सज्जनने बताया था एक दिन, कि यह जैसा निर्मल प्रकाश सूर्यका है न, तो अभी ये जितने बल्ब बनाये गये हैं सृष्टिमें विज्ञानके द्वारा बिजलीके, उतना निर्मल प्रकाश वाला बल्ब कोई बना नहीं। जब बिजलीको किसी बल्बमें चढ़ाया जाता है, तो उस बल्बका जो रंग है, वह रोशनीमें मिल जाता है। सूर्यकी रोशनी निर्मल होती है और बल्बकी रोशनीमें रंगीनी होती है। यह सफेद-सफेद जो बिजलीकी रोशनी होती है, वह भी सफेद रंग ही है, सूर्यका जैसा निर्मल प्रकाश है, वैसा नहीं, जैसे इन्द्र धनुष-बोरो उगता है न आसमान में, उसमें थोड़ा हरा होता है, थोड़ा पीला होता है, थोड़ा लाल होता है, तो वह सूर्यकी रोशनी नहीं है न! जलकी उपाधिसे वह रंग आगया है। इसी प्रकार महाराज, संसारमें हम जितनी जानकारी प्राप्त करते हैं—आँखसे देखते हैं, कानसे सुनते हैं, त्वचासे छूते हैं, जीभसे चखते हैं—उसमें राग मिल जाता है। राग मिलनेसे ही मसालेवाला भोजन हिन्दुस्तानियोंको प्यारा लगता है, और विलायतियोंको नहीं प्यारा लगता न! इंग्लैण्डके लोग मसालेवाला भोजन पसन्द नहीं करते और भारतीय लोग मसालेवाला भोजन पसन्द करते हैं। क्यों भाई? बोले-राग जुड़ गया है। मसालेमें इनका राग जुड़ गया है, बिना मसालेमें उनका राग जुड़ गया है। देखो, यहाँ मिर्च कैसे खाते हैं। तो यह क्या है? बोले—यह बड़ा स्वाद है। यह स्वाद नहीं है, यह जीभके द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसमें राग और वैराग्यकी उपाधि जुड़ गयी है। आँखसे जो दिखता है, उसमें राग और वैराग्यकी उपाधि जुड़ गई है। कानसे जो सुनता है, उसमें राग-वैराग्यकी उपाधि जुड़ गयी है। दिलमें जो हम सोचते हैं, जिसमें अच्छाई-अच्छाई दिखती है—उसमें राग-वैराग्यकी उपाधि जुड़ गयी है। इसलिए सच्चा ज्ञान नहीं होता।

ये मधुसूदन भगवान् कौन हैं? बोले—मधु माने राग और रागका सहचरित द्वेष, इन दोनोंको इन्होंने काट दिया है। असलमें सच्चा ज्ञान उसीको होता है, जिसके चित्तमें राग-द्वेष न हो। एक बार राग-द्वेष-रहित होकर जब देखते हैं न, संसारका पर्दा फट जाता है।

हे मधुसूदन! आप बताओ कि अत्र-इस यज्ञात्मक सृष्टिमें, समूची सृष्टिमें, इस पात्रमें और अस्मिन्देहे—इस यज्ञमें अधियज्ञ कौन है? कैसे है? **अत्र अधियज्ञः कः कथम् च तत्रापि अस्मिन् देहे कः कथं च।** यह 'अत्र' और 'अस्मिन्' जो दो बार है न, यह जल्दी पकड़में नहीं आता है। जो अर्थ 'अस्मिन्' शब्दाका है, वही अर्थ 'अत्र' शब्दका है। तो दोनोंको अलग लेना पड़ता है।

इस यज्ञात्मक प्रपंचमें 'अत्र' इस शास्त्रमें इस समूची विश्व-सृष्टिमें, अधियज्ञ कौन है? और कैसे है? और 'अस्मिन्देहे'—इस शरीरमें अधियज्ञ कौन है, और क्या है, कैसे है, माने इसका ध्यान कैसे करना चाहिए? इसका ज्ञान कैसे प्राप्त करना चाहिए? प्रकार सहित स्वरूप-विषयक प्रश्न है। अधियज्ञका स्वरूप क्या है, और अधियज्ञका प्रकार कैसे है? क्या प्रकार है? कैसे होता है अधियज्ञ?

आप जानते हैं, यज्ञ सबके द्वारा होता है। ऐसा कोई नहीं है, जो सृष्टिमें यज्ञ न करता हो। ये सूअर हैं न! ऐसा लगता है न, कि ये कितने गन्दे हैं, पर ये दूसरों की गन्दगीको खा जाते हैं। संसारकी गन्दगीको अपने भीतर हवन करके धरतीको स्वच्छ बनाना यह भी एक यज्ञ है, बल्कि शास्त्रमें भगवान्‌के वाराहावतारका नाम विशेष रूपसे यज्ञ रखा हुआ है। भागवतमें तो वाराहका नाम यज्ञ है—**यज्ञा रोमकूपेषु निमील्य अध्वराः**—वाराह भगवान्‌के एक-एक रोमकूपमें यज्ञ समाये हुए हैं।

एक वैज्ञानिकने हिसाब लगाकर बताया है कि यह हमारे घरोंमें जो मकड़ी रहती है—जिससे हम लोग डरते रहते हैं कि जाला न लगाये, हमारे शरीरमें कहीं मूत्र न कर दे, नहीं तो जहर हो जाता है—तो वह मकड़ी दिन भरमें कितने विषैले कीड़ोंको खाती है, जो घर में आते रहते हैं, खिड़कियोंके रास्ते! जो विषैले कीटाणु घुसते रहते हैं, उनके लिए मकड़ी मोर्चेबन्दी कर देती है दरवाजेपर, और जो आकर उसके जालेमें फँसते जाते हैं उनको वह खाती जाती है। यदि मकड़ी कीड़ोंको न खाये तो एक वर्षमें विषैले कीटाणुओंका वजन इतना हो जाता है, जितना मनुष्यकी आबादीका वजन होता है। नारायण कहो, यज्ञ हो रहा है न! मकड़ीके द्वारा भी अपने हिस्सेका यज्ञ हो रहा है, दोषापनयन हो रहा है; हमारी सफाई स्वच्छता हो रही है।

मैंने सुना कि चीन देशमें एक बार ऐसा अभियान चला कि साँप मत रहने दो। तब उन लोगोंने सब साँपोंको मार दिया। अब वहाँ जो औषधियाँ हैं, जो वहाँकी माटी है, उसमें जहर हो गया। क्योंकि साँप जहर खाते हैं, जहर पीते हैं। तभी तो उनके शरीरमें जहर होता है। फिर बादमें उनको दूसरे देशोंसे साँप बुला-बुलाकर अपने देशमें जगह-जगह रखने पड़े कि यह जो जहर है, वे पीयें। कहनेका अभिप्राय यह कि संसारमें इस इस तरहका यज्ञ सर्वत्र हो रहा है। ये वृक्ष जो हैं न-इन वृक्षोंके शरीरमें-से अमृतकी धारा निकलती है। जब सूर्यका प्रकाश इनके ऊपर पड़ता है, तो इनमेंसे दवा निकलकर फैलती है। शास्त्रमें निषेध है कि रातमें वृक्षके नीचे नहीं रहना चाहिए। **रात्रौ न वृक्षमूलानि निषेवेत प्रयत्नतः—** मनुस्मृतिका श्लोक है कि रातमें वृक्षके नीचे नहीं रहना। केवल नीमके वृक्षके नीचे रातको रहना चाहिए।

यज्ञ हो रहा है न! अपने-अपने हिस्सेका यज्ञ कोई सफाई करनेका यज्ञ कर रहे हैं; गाय दूध देनेका यज्ञ कर रही है—इस प्रकार सृष्टिमें बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है। जब हम होम करते हैं न; यह महाराज, मारन-मोहन उच्चाटन जो होता है न, उसमें गन्दी चीजोंका होम होता है। मारण होता है, अभिचर-क्रिया होती है दुश्मनको मारनेके लिए। और, जैसे हम देवताके लिये होम करते हैं, तो घीका होम करते हैं। यह जब हम बोलते हैं न, यह बोलना भी एक प्रकारका हवन है। अपने भीतर जो वाक् है, उसका हम बाहर होम करते हैं। कौन कड़वी वाणी बोलता है। वह दूसरेके कानमें रूप कुण्डमें कड़वी वाणीरूप आहुति डाल रहा है, और जिसकी वाणीमें शहद मिली है—बहुत बढ़िया शक्कर घोलकर, घी मिलाकर बोल रहा है, वह यज्ञ कर रहा है। दूसरोंको सुना रहा है, यज्ञ कर रहा है। दूसरोंकी सेवा कर रहा है, यज्ञ कर रहा है। इसका भी निरूपण है शास्त्रमें। देखनेमें यज्ञ होता है, वाणीमें यज्ञ होता है, क्रियामें यज्ञ होता है। गतिमें यज्ञ होता है।

एक दिनकी बात बताता हूँ। एक सज्जन कोई आये, मैं पाँव फैलाकर सोया हुआ था। उन्होंने आकर हमारे पाँवपर हाथ रख दिया। हमारा मन उधर गया; अच्छा नहीं लगा, तो पाँव हटा लिया मैंने। उन्होंने हाथ हटा लिया। फिर मैंने पाँव फैलाया तो फिर पाँवपर हाथ रख दिया। इस तरहसे मैं खेलमें लगा; छोड़ दिया कि जाने दो, क्या होता है! पचास मर्तबे मैंने अपना पाँव उठाया और पचास मर्तबा रखा, परन्तु उनकी समझमें यह बात नहीं आयी, कि हाथ रखनेसे कोई विक्षेप होता है, इसलिए पाँव हटाते हैं। समझ ही तो है न! मनुष्यको हमेशा ही इस दृष्टिसे

अपना व्यवहार करना चाहिए कि हमारा यह व्यवहार ईश्वरके बीचमें हो रहा है। सम्पूर्ण ईश्वर है। हम साँस लेते है, तो ईश्वरमें, हम चलते हैं तो ईश्वरमें, बोलते हैं—तो ईश्वरमें, हम जो हँसते-खेलते हैं, सो ईश्वरमें। जो हम औरोंके साथ व्यवहार करते हैं सो ईश्वर में! तो कितनी सावधानीसे अपने मालिककी सेवा करनी चाहिए। श्रीउड़िया बाबाजी महाराज रातको लघुशंका करनेके लिए उठते थे, तो पाँवमें चट्टी नहीं पहनते थे; चुपचाप उठकर दबे पाँव चले जाते! क्योंकि चट्टी अगर पहन लेंगे, तो खट्-खट् आवाज होगी। तो दूसरे लोग जो सो रहे हैं न, उनकी नींद टूट जायेगी। बोलनेमें, खानेमें, चलनेमें सावधान! यज्ञ हो रहा है।

इस यज्ञका देवता कौन है? गीतामें तो बताया न, कि यज्ञ कैसे-कैसे होता है! कि पहले दूसरोंको खिला लो, तब खाओ। व्यवहारकी निपुणता ही यह है कि हम जिसके साथ व्यवहार करते हैं, उसको सुख पहुँचानेके लिए व्यवहार करते हैं, दुःख पहुँचानेके लिए व्यवहार नहीं करते हैं। अगर यह सार समझमें नहीं आया, तो तुम्हारे व्यवहारमें यज्ञ नहीं आवेगा।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥

भगवान्ने जब प्रजाकी सृष्टि की, तो 'सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा', प्रजामें, जनतामें जो एक-एक व्यक्ति है न; पशु, पक्षी, मनुष्य-सबके साथ भगवान्ने एक यज्ञ जोड़ा है। वह सृष्टिमें एक यज्ञ कर रहा है। ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जो यज्ञ न कर रहा हो। उसके द्वारा कैसे यज्ञ हो रहा है, यह बात समझना जरा मुश्किल है—

सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः अनेन प्रसविष्यध्वम्।

देखो, हम तुमको एक यज्ञ बताते हैं। इस विश्वमें मैं तुमको भेज रहा हूँ, यहाँ जाकर तुमको एक आहुति देनी है। अब, वह आहुति तुम दे रहे हो कि नहीं? अनेन प्रसविष्यध्वम्—इसीसे तुम्हारी वृद्धि होगी। तुम्हारी सब तरहसे उन्नति होगी, यदि यज्ञ करोगे। और यदि महाराज, कड़वाहट बरतोगे, किसीको दुःख दोगे, तो तुम्हारी हानि होगी। इसीलिए—**यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यते सर्वकिल्विषैः।**

खिलाकर, खाओ, देखो, सारे किल्विष, सारे पाप तुम्हारे धुल जाते हैं। और आगे अपनेको रखोगे कि पहले मैं खाऊँगा, मेरे भाई पीछे खायेंगे, पहले मैं खाऊँगा, बाल-बच्चे पीछे खायेंगे-ऐसे नहीं। हमारे गाँवके पास एक बड़े-बूढ़े थे। पचहत्तर-अस्सी वर्षकी उम्र थी उन दिनों उनकी, जबकी बात मैं कहता हूँ। उनके वंशके समझो बेटा, नाती, पोता सब मिलाकर सत्तर-पचहत्तर हो गये थे, जीवन

कालमें ही उनके, सबकी रोटी एक साथ ही बनती थी। बहुओंकी बारी बँध गयी थी—कौन बहू कितने दिन बनायेगी, कौन बहू कितने दिन बनायेगी। मैंने पूछा तुम्हारे घरमें इतना मेल-जोल कैसे है? बोले कि मेरा एक नियम शुरूसे है कि जब घरके सब लोग खा लेते हैं, तब मैं खाता हूँ। अगर एक भी आदमी खाये बिना रह जाये, तो मैं नहीं खाता हूँ। इसको बोलते हैं—***मुखिया मुखसों चाहिए, खान-पान सब एक।*** इसका नाम यज्ञ है।

अच्छा देखो, अधियज्ञ कौन है? अग्निमें होम करना भी यज्ञ है, परन्तु प्रेमसे देखना भी यज्ञ है, प्रेमसे छूना भी यज्ञ है, प्रेमसे चलना भी खटपट न हो—धमाधम होकर किसीके कानमें—किसीका मन इधरसे उधर न हो जाये, चंचल न हो जाये, यह सावधानी रखकर चलना, यह सावधानी रखकर बोलना—यह जो शिष्टाचार है, मर्यादा है, सदाचार है—यह भी यज्ञ है। सर्वमें अधियज्ञ कौन है? आपने गीता पढ़ी है, सो आप जानते होंगे—

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥

अग्नि बनाकर कौन बैठा है? अब एकने अपने घरमें आग जलायी और उसमें विष्ठा डाल दिया। दुर्गन्ध फैल गयी न! सारे घरमें धुआँ फैल गया दुर्गन्धका। और एकने अपने घरमें आग जलायी और चन्दन, घी, शाकल्य डाला और सुगन्ध फैल गयी घरमें। बोले—अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता—तुम जो बोलते हो, वह मुझमें बोलते हो, तुम जो चलते हो मुझमे चलते हो। तुम्हारी चालका मजा मैं लेता हूँ। नृत्य करते हुए चलो तो मुझे खुशी होती है, और तुम धमाधम करके चलो, तो उससे विक्षेप मुझे होता है। तुम अच्छी चीज खाओ, तो उसका मजा मुझे आता है, और तुम गन्दी चीज खाओ, तब भी मुझे चला आता है। इन्द्र नाम किसीका होगा, वरुण नाम किसीका होगा; होंगे दूसरे-दूसरे देवता, लेकिन सब यज्ञोंका भोग करनेवाला, सब यज्ञोंका भोक्ता प्रभु है, भगवान् हैं, और **भोक्ता च प्रभुरेव च** का अर्थ यह है कि प्रेरक भी वही हैं और भोक्ता भी वही हैं। यह बात आवेगी आगे। यह तो आप जानते हैं न; गीतामें आपने पढ़ा है—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

भगवान् क्या खाते हैं? बोले, जो तुम दूसरोंको खिलाते हो, सो भगवान् खाते हैं। खिलाना केवल मुँहसे नहीं होता; जैसा तुम दूसरोंको बोलते हो, भगवान्

कहते हैं, हमसे बोल रहे हो—भोक्तारं यज्ञतपसां। और अपने बारेमें जो तपस्या करते हो, उसको भगवान् खाते हैं। दूसरोंके बारेमें यज्ञ, और अपने बारेमें तप। जो बढ़िया माल बनाया, दूसरोंको खिला दिया, और खुद एकादशी कर ली। बड़े ही प्रसन्न हुए भगवान्। यह है अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।

जिस समय यजमान हाथमें आहुति लेकर 'इन्द्राय स्वाहा' बोलता है, उस समय भीतर जीवमें बैठकर हाथ उठानेकी शक्ति देनेवाला कौन? बोले भोक्ता च! इन्द्र भी वही! इन्द्रमें भोगयिताके रूपमें परमात्मा और यजमानमें कारयिताके रूपमें परमात्मा—यह अधियज्ञ है। इसीसे हमारा जीवन सम्पन्न होता है, इसीसे यह परमात्मा रहता है। इन्द्रकी देहमें कैसे परमात्मा रहता है, कैसे वह यज्ञ करवाता है, कैसे वह देवताओंसे भोग करवाता है। सूर्यमण्डलमें जो ईश्वर है, उसको हम हाथ जोड़ते हैं—**भूर्भुवः स्वः** उसका ध्यान करते हैं आँख बन्द करके। किसका ध्यान करते हैं? कि सूर्य-मण्डलमें रहनेवाला जो प्रभु है, नारायण है, उसका।

अब देखो, अधियज्ञका अर्थ क्या हुआ? वह सूर्य-मण्डलमें स्थित जो नारायण है, सो। भोक्ता तो वहाँ हाथ जोड़नेका मजा ले रहा है, और यहाँ हाथ जुड़वानेका मजा ले रहा है। वह दोनोंमें बैठा है। शिष्यमें भी वही है, गुरुमें भी वही है, पुजारीमें भी वही है, मूर्तिमें भी वही है। तब आगे चलकर तुम्हें बोध होगा कि जो जीवमें है, वही ईश्वरमें है। इसी शरीरमें भगवान्का बोध होगा!

प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।

अब बोले भाई, प्रयाणकालेऽपि---प्रयाणकालका वर्णन है इस आठवें अध्यायमें। **प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव। भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्** इसमें छह प्रश्न मुख्य हैं; और सातवाँ जो प्रश्न है, वह चिन्तन-विषयक है। कोई-कोई कहते हैं कि **तद्ब्रह्म** एक प्रश्न परमात्मा-विषयक है, और छह प्रश्न साधन-विषयक हैं—**किमध्यात्मं, किं कर्म पुरुषोत्तम, अधिभूतं च किं।**

एक प्रश्न परमात्मा-विषयक है, और बाकी उसकी प्राप्तिके लिए जो उपाय है, उसका वर्णन है। असलमें परमात्मा जो है, यह कर्मातीत, भावातीत और विचारातीत है। कर्म, क्रिया होती है शरीरसे, अभी देखो, यह रूमाल उठा लिया। यह हाथका कर्म है कि इसने रूमाल उठाया। इस तरहसे अगर कोई चाहे कि हम ब्रह्मको हाथसे पकड़ लें, तो वह कर्मातीत है। अब देखो, मनमें बैठकर किसका ध्यान किया? स्त्रीका, पुत्रका, धनका, तो भाव आगया न!

ध्यान आ गया! तो बोले—परमात्मा कैसा है? कि ऐसे ध्यानमें आने वाला नहीं, ध्यानातीत है! तो फिर विचार किया—यह चीज अच्छी है, यह चीज बुरी है—निश्चय हो गया कि जिससे दूसरेकी उन्नति होवे और अपनी उन्नतिमें बाधा न पड़े, अपनी भी उन्नति होवे, उसका नाम धर्म है। और जिससे दूसरेकी उन्नतिमें, और अपनी उन्नतिमें बाधा पड़े, उसका नाम धर्म नहीं। बिलकुल विवेकसे यह निश्चय हो गया। बोले जैसे धर्मके बारेमें निश्चय हो गया, वैसे ब्रह्मके बारेमें विवेककी गति नहीं है। अब इससे क्या निकला? कि कर्म, भावना और विवेक कर्म होता है सत्तामें, भावना होती है आनन्दमें और विवेक होता है ज्ञानमें। अस्तिका विकार कर्म है, चित्तका विकार विवेक है और आनन्दका विकार भावना है। बोले—विकार क्यों कहते हो? क्या सच्चिदानन्द विकारी है? नहीं, जब तुम देहकी उपाधि लेकर बैठे, तो वह विकारी न होनेपर भी विकारी-सा भासता है। यह इसकी गति है।

परमात्माका असली स्वरूप कर्मसे, करणसे, कर्तासे और कर्मफलसे जुदा है। हाथ हिलाना कर्म हुआ और हाथ कर्मेन्द्रिय हुआ, और उससे जो पकड़ा जायेगा वह कर्मका विषय हुआ। उसका जो कर्ता हुआ, सो जीवात्मा हुआ। सो इन चार बातोंसे परमात्माका स्वरूप जुदा है। कर्मफल जब कर्तासे जुड़ता है, तब उसका नाम भोक्ता हो जाता है। करण है हाथ, और उससे पकड़नेकी हुई क्रिया। जो पकड़ा गया, सो हुआ कर्मका विषय। अब उसको पकड़नेसे जो सुख या दुःख हुआ, वह कर्ताके साथ आकर जुड़ा, तो कर्ता भोक्ता हो गया। दखो, इसका नाम संसार-चक्र है। जिसने हाथके द्वारा हाथ हिलाकरके किसी चीजको उठा करके, किसी चीजको पकड़ा, पकड़ने वालेको पकड़नेका नतीजा मिला। कर्ता, करण, कर्म और कर्मफलका संयोग-भोक्तापन—यह हो गया जीवमें। और परब्रह्म परमात्मा कहाँ है? बोले—इनसे न्यारा! कर्तासे न्यारा, करणसे न्यारा, कर्मफलसे न्यारा, और कर्मफलका जिसे संयोग होता है, उससे न्यारा!

गीतामें यह बात हमने पढ़ी—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥

ऐसा जो परमात्मा है, वह, जो अधिकारी है—शुद्ध बुद्धि वाले, राग-द्वेष रहित—उनके लिए तो जाननेकी चीज है, जानोगे, तो झट वही हो जाओगे। और

बिना शुद्ध हुए अगर जानोगे, त्वं पदार्थका शोधन किये बिना अगर जानोगे, तो तत्काल राग-द्वेषकी निवृत्ति नहीं होगी, थोड़ी देर ज्ञानी रहोगे, थोड़ी देर दुःखी रहोगे। अष्टावक्र गीतामें एक श्लोक है—

यस्याभिमानो मोक्षेऽपि देहेऽपि ममता तथा।
न च योगी न वा ज्ञानी केवलं दुःखभागसौ॥

बड़ा भारी आक्षेप किया है। जो अपनेको मुक्त भी मानता है और अपनेको देह भी मानता है—देहको तो मानता है 'मैं', 'मेरा' और अपनेको मानता है मुक्त। बोले—न स योगी न ज्ञानी—न वह योगी है, न ज्ञानी है। तब वह कौन है? कि वह दुःखी है। अच्छा, मुक्त देखनेको मिला संसारमें कि अपनेको मुक्त भी मानता है, कि हमें नरक नहीं जाना, स्वर्ग नहीं जाना, हमारा पुनर्जन्म नहीं होना और दिन-रात दुःखी भी होता रहता है। तो उस परब्रह्म परमात्माको जान करके सम्पूर्ण दुःखोंसे बीन-बीनकर मुक्ति होनी चाहिए। आनन्दका विरोधी जो दुःख है, उससे मुक्ति; ज्ञानका विरोधी जो अज्ञान है, विरुद्ध भाव है, कर्ता है, उससे मुक्त होना चाहिए। परमात्माका ज्ञान होनेपर फिर मैं मरूँगा-यह डर नहीं होना चाहिए, और मुझे फिर कहीं अज्ञान हो जायेगा—यह डर नहीं होना चाहिए और मैं दुःखी हो जाऊँगा, यह डर नहीं होना चहिए। ज्ञान होनेका अर्थ होता है मृत्युसे, जड़तासे और दुःखसे हमेशाके लिए छूट जाना। जो जान लेता है, सचमुच जान लेता है, वह जानकर ही उसका मालिक बन बैठता है, क्योंकि वह तो अपना स्वरूप ही है।

लेकिन महाराज, जाननेपर भी अगर निष्ठा न होती हो, स्वरूपमें न बैठता हो, तो उसे क्या करना चाहिए? बोले, जाननेकी कोशिश करनी चाहिए। अच्छा, जाननेकी कोशिशमें बाधक क्या है? रुकावट क्या है जाननेकी कोशिशमें? कि संसारके ये राग-द्वेष। तो राग-द्वेष कैसे मिटेंगे? बोले—राग-द्वेष ज्ञानसे मिटते हैं। परमात्माका ध्यान करो, केवल परमात्माका ध्यान करो, अगर संसारमें राग-द्वेष करोगे, तो केवल दोष ही तुम्हारे पल्ले पड़ेगा, और कोई चीज तुम्हारे पल्ले नहीं पड़ सकती। यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आती है, कि जब किसीका किसीसे राग हो जाता है, तो उसके सिवाय दूसरे देवतामें भी दोष देखनेमें आता है। गुरुमें भी दोष देखनेमें आता है, माँ-बापमें भी दोष देखनेमें आता है। क्योंकि यह रागका विस्तार है। और जिससे राग होता है, वह? बिलकुल दूधका धुला देखनेमें आता है। इस तरहसे मनुष्य संसारमें फँसता है।

बिना परमात्माके ध्यानके कृष्णका ध्यान किये बिना-कृष्ण त्वदीय पद-ये राग-द्वेष नहीं मिटते हैं।

प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि? किसके द्वारा ज्ञेय है? बोले, नियतात्मभि:—जिनका आत्मा नियत है। सातवें अध्यायमें जो युक्तचेतस था, भगवान्ने जिनके लिए कहा था—**प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः** कहा था न, वही! और उन्हींके लिए अर्जुन यहाँ बोलते हैं नियतात्मा। दोनोंका मिलान भी है—

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥

'विनियत चित्त' होना और 'नियतात्मा' होना एक ही बात है। असलमें यह बहादुरोंका रास्ता है, जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें करें, जो अपने मनको वशमें करें। नकल करके कोई इस रास्तेपर चल नहीं सकता।

बोले—एक साधु थे। उन्होंने कहा—यह उड़िया बाबाजी हर समय मस्त कैसे रहते हैं? बाबा ऐसे थे कि यह जो उनका सिर था न, वह कभी झुकता नहीं था। हमेशा ही यह छाती भी थोड़ी ऊँची, और सिर भी थोड़ा ऊँचा रहते थे। कोई आये, कोई जाये-मस्त रहते थे। बाबा ऐसा मस्त कैसे रहता है—नकल करनी चाहिए। तब उन्होंने भी ऐसे सिर ऊँचा किया, छाती ऊँची की। बोले—यह रोटी बाँटता रहता है, इसलिए मस्त रहता है, तो उन्होंने भी रोटी बाँटना शुरू कर दिया। अब रोटी बाँटेंगे तो क्षेत्र खोलेंगे कि मस्त रहेंगे? तो नकल करके यह चीज मिलनेवाली नहीं है—कि ऐसे चन्दन लगावें और ऐसी माला पहनें और ऐसे बैठें और ऐसे उठें। बोले—भाई, बाबाका आसन बड़ा प्रबल है। बारह घंटे एक आसनसे बैठा रहता है। हम भी बैठनेका अभ्यास करलें, तो हम भी मस्त हो जायेंगे। अब बैठने लगे महाराज, तो बवासीर हो गया उन्हें। यह नकल करनेका मार्ग नहीं है, यह बड़ी समझसे, बड़ी सावधानीसे, गुरु, शास्त्र जैसे बताते हैं, उसके अनुसार चलनेका मार्ग है। अपनी भलाई चाहो, तो ठीक रास्ते चलो, और अपनी भलाई कोई न चाहता हो, तब तो फिर जैसे मौज हो, वैसे चलो!

☆

३

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥ ३॥

अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् उत्तर देते हैं। इसमें मर्यादा यह है कि यदि पूछनेवाला मनुष्य अपने चित्तकी बात ठीक-ठीक सामने रखकर पूछ ले, तो उससे कई बातें निकल आती हैं। वह जितना पूछता है, उतनी ही बात नहीं निकलती, वह कहाँ बैठकर पूछ रहा है, यह बात साफ मालूम पड़ जाती है। उसके प्रश्नसे साफ जाहिर हो जाता है कि वह आध्यात्मिक स्तरोंमें-से किस स्तरमें बैठनेपर यह प्रश्न उठाता है, और न पूछे आदमी, तो वह कहाँ बैठा हुआ है, यह बात जाहिर होना मुश्किल होता है। जो अन्तर्यामी सद्गुरु है, सर्वज्ञ सद्गुरु हैं, वे तो जान जाते हैं, लेकिन साधारण रूपसे अगर किसीसे समाधान प्राप्त करना हो, तो पूछना चाहिए। बात कहाँ अटकती है-यह मालूम पड़ना जरूरी है, और जबतक किसी विश्वासके कारण मनुष्य अपनी जिज्ञासाको दबा लेता है, तबतक तो ऐसा ही है, जैसे आगपर कोई राख डालता चलता हो, एक न एक दिन वह जिज्ञासा भड़केगी, उठेगी जरूर! दबा-दबाकर किसीको कोई बात नहीं मनवायी जा सकती। यह हमारी बात है, आपको मानना पड़ेगा—ऐसे कोई बात नहीं चलती है। या, तुम यह नहीं करोगे तो ऐसे हो जायेगा-डरा दिया। अब डराकर या अपना बड़प्पन दिखाकर जो बात मनवायी जाती है वह ज्यादा टिकाऊ नहीं होती। भगवान् तो एक हुक्म देते हैं, अर्जुनको—बस, तुमको ऐसा करना पड़ेगा! मेरे ऊपर विश्वास करो। मेरी बात मानो। यह घंटोंतक गलकुच्चन करनेकी क्या जरूरत पड़ी? यह जीभ तड़ातड़ ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे मुँहमें होती रहे, बोलना पड़े इसकी क्या जरूरत? नहीं, समझाना भी एक विज्ञान है, उसकी भी जरूरत पड़ती है। इसलिए प्रश्न भी ठीक और उत्तर भी ठीक।

कई महापुरुष ऐसे होते हैं, जो बिना पूछे ही बता देते हैं-**ब्रूहि स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरुर्यो गुह्यमर्प्यतु। अनापृष्टमपि ब्रूते गुरुर्यो दीनवत्सलः।** यदि अपना स्नेही कोई शिष्य है, उसकी कोई भलाई-बुराई है, तो दीन वत्सल गुरु बिना पूछे ही बता देते हैं। पर ऐसा देखनेमें आता है कि बिना पूछे बतानेसे शिष्यके हृदयमें उसका जितना आदर होना चाहिए, उतना आदर नहीं आता है। और बिना ठोकर खाये

आदमी मानता भी नहीं। जबतक दो-चार जगह जान ले, दो-चार जगह घुटने न टेक ले, दो-चार बार, दस बार गलती न कर ले!

वैसे मनुष्यकी जो गति होती है, वह विज्ञानके अनुसार होती है, जैसे राग पहले आँखमें आता है। यह रागका नियम है, पहले आँखमें आता है, फिर सिरमें जाता है, फिर बुद्धि उसका समर्थन करती है कि यह बिल्कुल ठीक है। फिर जो उसमें बाधा डाले, उससे द्वेष होता है। फिर जिससे द्वेष होता है, उसकी हिंसा होती है—माने राग जो है, वह एक मनोविज्ञानके क्रमसे ही बढ़ता है।

संसारमें जितनी भी गतियाँ होती हैं, वे एक ढंगसे चलती हैं; कोई महीने भरमें प्रकट होती है, कोई वर्ष भरमें प्रकट होती है। पर इन सबका हिसाब होता है, इन सबका गणित होता है। बात सब समझने और समझानेकी होती है। जबरदस्तीकी मान्यता ज्यादा दिन नहीं चलती है, कबतक धूल डालोगे? तो उसको पूछना और समझना होता है। हमारी बात तुमको माननी होगी, नहीं मानोगे तो तुम्हारा यह बिगड़ जायेगा—ऐसा कहनेसे काम नहीं चलता है। स्वयं भगवान् ही अर्जुनको समझा रहे हैं। नहीं तो हुकुम नहीं चलता है? समझानेकी क्या जरूरत है? हाथसे बाण चलाना है। भगवान्‌ने हुकुम दिया, और हाथ बाण चलाने लगते! बोले—नहीं, मनमें दृढ़ संकल्प होना चाहिए। तो मनमें दृढ़ संकल्प कब होगा? जब समझ ठीक होगी। क्रिया ठीक होनेके लिए संकल्प ठीक होना जरूरी, और संकल्प ठीक होनेके लिए समझ ठीक होना जरूरी! तो भगवान् भी जब किसीसे कोई काम कराना चाहते हैं, तो पहले उसकी समझ बदलते हैं। समझ बदलनेसे मन बदलता है, मन बदलनेसे क्रिया बदलती है। भगवान् भी कायदेसे ही काम करते हैं, बेकायदेसे काम नहीं करते हैं। शास्त्रमें आया है कि—

न हस्ते तीरमादाय देवा रक्षन्ति साधकान्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति सुधियायोजयन्ति तत्॥

देवता लोग हाथमें धनुष बाण लेकर अपने साधकोंकी, पुजारियोंकी रक्षा नहीं करते। जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसको बढ़िया समझ दे देते हैं, कि भाई, यह चाहने लायक है, यह नहीं चाहने लायक है। जो चाहने लायक है, उसके लिए प्रयत्न होता है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए, कि समझ अच्छी होना जरूरी है। केवल युद्धसे या दबावसे कोई काम संसारमें नहीं होता है।

अब अर्जुनके प्रश्न करनेपर भगवान् उसके हृदयकी जो गुत्थी है—ग्रन्थियाँ है उसके हृदयमें, गाँठ उसको खोलनेके लिए बोलते हैं—श्रीभगवानुवाच। अब ये

बोलनेवाले कौन हैं? बोले-यह श्रीभगवान् हैं। तो जिसकी ओर सब खिंच जायें, उसका नाम **श्रीयते सर्वै इति श्रीः। आश्रियते** जिसका आश्रय सब लें।

भगवान्‌को ऐसा लगा कि संसारके जीव इधर-उधर विषयोंमें फँस रहे हैं, भटक रहे हैं। बोले—इनको तो अपनी ओर खींचना चाहिए, तो बोले—हमारी ओर तो लोग नहीं खिंचते हैं—तो उन्होंने लक्ष्मीको अपनी छातीपर बिठा लिया। जब उनके वक्षस्थ:लपर लक्ष्मीजीका दर्शन होने लगा, तब लोग भगवान्‌की ओर जाकर हाथ जोड़ने लगे। एक दिन लक्ष्मी और भगवान्‌की लड़ाई हो गयी; लक्ष्मी कहे कि मेरी महिमा ज्यादा है, और भगवान् कहें कि मेरी महिमा ज्यादा है। दोनोंमें बड़ा प्रेम है न! तो दोनोंमें लड़ाई हो गयी! तो महाराज, लक्ष्मीजीने कई जगह बड़े-बड़े भक्तोंके घर जाकर यह बात सिद्ध कर दी, कि जब लक्ष्मीजी आने लगीं, तब उन्होंने भगवान्‌की पूजा छोड़ दी। लक्ष्मीके आगत-स्वागतमें भगवान् छूट गये।

श्रीका अर्थ है, जो **श्रीयते भगवन्तम् श्रीयते सर्वैः।** जो भगवान्‌के आश्रयसे रहती है और सौन्दर्य-माधुर्य जिसमें कूट-कूटकर भरा हुआ है।

अब यह **भगवान्** शब्दका अर्थ क्या है? भगवान् शब्दका अर्थ भी शक्तिमान् होता है। 'भग' शब्दका अर्थ मूलत: शक्ति है। ये शब्द तो बहुत प्रचलित हैं—भगवती, भगिनी; भगिनीमें भी तो यही शब्द है न! तो स्वयं भगवान् हैं सर्वैश्वर्यशाली, परम सुन्दर, परम मधुर, सबके हितैषी, सबका कल्याण चाहनेवाले, किसीका बुरा न चाहनेवाले। दैत्य लोग तो भगवान्‌से भी द्वेष करते हैं, अपना भला चाहनेवाले-से भी द्वेष करते हैं। भगवान् दैत्योंका भी भला चाहते हैं। उनकी खोल उतार-उतार उनको वैकुण्ठमें बुला लेते हैं, उनको मुक्ति दे देते हैं, उनकी पोशाक उतार-उतारकर उनको मुक्ति दे देते हैं, लेकिन वे यही समझते हैं कि ये देवताओंका पक्ष ले-लेकर हमको मार रहे हैं।

आओ, अब देखें कि **अधिभूत, अधियज्ञ** क्या है? **अधिदैव** क्या है? छह बातें तो ये हैं; मरनेके समय किसका स्मरण होना चाहिए—यह सातवीं विद्या है, और शुक्ल गति कैसी है और कृष्ण गति कैसी है—इन दो गतियोंका वर्णन है।

भगवान्‌की भक्ति क्या है?

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

भगवान्‌की भक्ति क्या है, इस तरहसे कौन लोग आते हैं और कौन नहीं आते हैं, इन सब बातोंका वर्णन आठवें अध्यायमें है।

अब पहली विद्या है उपनिषद् विद्या; ब्रह्म विद्या। अर्जुनने पूछा था—**किं तद् ब्रह्म**? वह ब्रह्म क्या है? इसके उत्तरमें भगवान् बताते हैं—**अक्षरं ब्रह्म परमं।** आप अक्षर शब्दका अर्थ भली भाँति समझते हो, कभी गौर करो, तब समझमें आवेगा, जैसे आपमें-से कई लोग ऐसे होंगे जो इस बातको जानते होंगे, कि गुजराती लिपिमें 'क' कैसे लिखा जाता है और नागरी लिपिमें कैसे लिखा जाता है और अंग्रेजी लिपिमें कैसे लिखा जाता है। लिपि वह होती है, जो लीप दी जाये। सफेद कागजपर स्याही लीप दी, तो लिपि हो गयी। ताड़के पत्तेपर थोड़ा-थोड़ा सुईसे अक्षर उभाड़ दिये, लेख हो गया, और पत्थरपर टाँकी मार-मारकर खोद दिया, तो टंकण हो गया। उट्टंकण, उल्लेखन और लिपि! यह भिन्न-भिन्न भाषाओंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। 'क' तो सब बोलते हैं, यह बात जरूर है कि कोई 'काफ' कह देते हैं, तो कोई 'के' कर देते हैं, लेकिन 'क' के बिना तो न 'के', न 'काफ'। अब इसीसे समझ लो कि जिसने 'क' और 'काफ' में से 'ए' और 'आफ' निकालकर खाली 'क' रखा होगा, वह भाषाका विशेषज्ञ रहा होगा। भाषामें किसीका नाम कल्पनाथ हो, और 'काफ' लिखा जाये और 'के' लिखा जाये और 'क' पढ़ा जाये! नहीं, जब 'के' पढ़ना हो, तब 'के' लिखो, 'क' पढ़ना हो तो 'क' लिखो। देखो 'क' अक्षर है और उसको फारसीमें, उर्दूमें, सिन्धीमें उसको दाहिनी ओरसे लिखके ले जाना, और अंग्रेजीमें, नागरीमें उसको बायीं तरफसे लिखकर दाहिनी ओर ले जाना—यह लिपिमें अन्तर है, लेकिन 'क' अक्षर एक है। उर्दूमें शक्ल-सूरत दूसरी, अंग्रेजीमें शक्ल-सूरत दूसरी, नागरीमें शक्ल-सूरत दूसरी—इसका अर्थ हुआ कि रूप क्षरणशील है, रूप तो क्षरित हो गया, झड़ गया, शक्ल-सूरत जो लिखी गयी कागजपर, वह तो बदलती गयी लेकिन उनमें जो 'क' अक्षर है, वह एक ही रहा।

अच्छा, अब देखो, इसी तरहसे क ख ग अक्षर इनको बोलते हैं न! अ आ इ अब लिपिको छोड़ो, उच्चारण को लो। चाहे अ उच्चारण करो चाहे आ चाहे ई, चाहे ऊ, चाहे क ख ग, 'अ' उच्चारण सबमें है कि नहीं। 'अ' के बिना उच्चारण होगा नहीं। जैसे लिपियोंका भेद होनेपर भी अक्षर जैसे यहाँ वैसे वहाँ है, वैसे उच्चारणका भेद होने पर भी सब उच्चारणोंमें अकार नामका अक्षर एक ही है। माने शब्दोच्चारणका भेद होनेपर और लिपिका भेद होने पर भी अक्षर एक ही होता है।

यह हुआ दृष्टान्त। अब इसका दार्ष्टान्त देखो। दार्ष्टान्त क्या है? कि नीमकी पत्ती, नीमका फूल, नीमका फल जुदा होता है और आमकी पत्ती, आमका फूल और आमका फल जुदा होता है। ये सब कैसे हैं? कि लिपिके समान हैं। और

खानेका जो स्वाद है सबमें, वह जुदा-जुदा और शरीरपर जो गुण करता है, वह भी जुदा-जुदा। नाम सबका जुदा-जुदा; शक्ल सबकी जुदा-जुदा। लेकिन एक इसमें अक्षर तत्त्व है, जो हजारों आम हों, तो भी सबमें एक है और हजारों अंगूर, आम और इमली इकट्ठे हों, तो भी सबमें एक है। वह नाम बदलनेसे, रूप बदलनेसे, गुण बदलनेसे बदलता नहीं है, स्वभाव बदलनेसे बदलता नहीं है, वह सबमें एक है। उसीको बोलते हैं अक्षर। वह बना रहता है। अनेकतामें एक है-वह अक्षर है। अनेक लिपिमें, अनेक उच्चारणमें, अनेक वर्णमें, अनेक जातिमें जो एक है, सो अक्षर है। बोले—ऐसे तो अनेक अक्षर निकलेंगे। कि नहीं, बहुतसे अक्षर नहीं, जो आखिरी अक्षर होवे, माने जिस तत्त्वके बिना दूसरा कोई तत्त्व होवे नहीं, वह परमं, परमं-अक्षरं। वैसे अनेक रूपोंमें 'क' भी रहता है, और अनेक रूपोंमें 'अ' भी रहता है, लेकिन वह परम तत्त्व जो सब चीजोंके बदलनेपर भी बदलता नहीं है उसका नाम अक्षर। न क्षरति जो क्षरता नहीं, उसका नाम अक्षर।

अब देखो, महाभाष्यकार पतंजलिने इसकी दूसरी व्युत्पत्ति बड़ी अद्भुत की है, एक ही व्युत्पत्ति दी है **अस्मिते इति अक्षरं।** जो सबमें व्यापक हो, उसका नाम अक्षर है। जो सबमें व्यापक हो, उसका नाम अक्षर है। बोले-भाई, अक्षर तो आकाश भी है। यह प्रश्न आया बृहदारण्यक उपनिषद्में। ब्राह्मणोंने गार्गीसे पूछा कि गार्गी! यह आकाश किसमें ओत-प्रोत है? याज्ञवल्क्यने गार्गीको बताया—

एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलम् अनणवह्रस्वमदीर्घम्—अरी गार्गी, ब्राह्मण लोग बताते हैं, यह अक्षर है, जो स्थूल नहीं है, अणु नहीं है। **एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः।** इसी अक्षरके प्रशासनमें सूर्य-चन्द्रमा नियन्त्रित होकर रहते हैं। मैत्रेयीका बड़ा विचित्र उपाख्यान है उपनिषद्में। याज्ञवल्क्यने मैत्रेयीसे पूछा—आओ, आओ मैत्रेयी, अब हम संन्यास लेने वाले हैं। तुम्हें धन-सम्पत्ति दे दें, बँटवारा कर दें। मैत्रेयीने कहा-महाराज, यह तो बताओ कि जो धन-सम्पत्ति हमको हिस्सेमें मिलेगी, उससे अमृतत्वकी प्राप्ति होगी कि नहीं होगी? मोक्ष मिलेगा, कि नहीं? परमात्मा मिलेगा कि नहीं। याज्ञवल्क्यने साफ कह दिया—

अमृतत्वस्य तु नाऽऽशाऽस्ति वित्तेन।

धनसे अमृतत्वकी प्राप्ति नहीं होती। मैत्रेयीने हाथ जोड़ लिया—

ये नाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्!

जिससे मुझे अमृतत्व कि प्राप्ति नहीं होती, वह चीज लेकरमें क्या करूँगी?

उन्होंने बताया कि **एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः।** (बृहद् ३.८.९) सूर्यको पकड़ रखा है आसमानमें इसी अक्षरने; चन्द्रमाको पकड़ रखा है आसमानमें इसी अक्षरने, सारी सृष्टिको पकड़ रखा है इसी अक्षरने।

अब गार्गीने पूछा कि ये सब तो हैं आकाशमें, आकाश किसमें है? तो उन्होंने बताया-**एतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति।** (बृ ३.८.११)

जैसे सूतमें कपड़ा, ऐसे जिस अक्षर तत्त्वमें यह आकाश रहता है, उसका नाम अक्षर!

तो बोले—अक्षर तो ओंकारको भी बोलते हैं, अक्षर तो केवल प्रकृतिको भी कभी-कभी बोलते हैं। यहाँ भगवान् किस अक्षरको ब्रह्म बता रहे हैं? यहाँ पुरुषोत्तमको ही ब्रह्म बता रहे हैं, यह बात समझ लें-**अक्षरं ब्रह्म परमं**-क्षरसे विलक्षण और अक्षरसे भी उत्तम जो है, उसको पुरुषोत्तम बोलते हैं। यह बात आपने पन्द्रहवें अध्यायमें पढ़ी है—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

क्षर-अक्षर दोनोंसे जो विलक्षण है, उस अक्षरको यहाँ तो ब्रह्म बतलाते हैं, बोले—यहाँ अक्षरको ब्रह्म नहीं बतलाते हैं—**परमं अक्षरं ब्रह्म** परम अक्षरको ब्रह्म बतलाते हैं। परं अक्षर कौन हुआ? कि जो अक्षरसे श्रेष्ठ हो, सो परं अक्षर। पुरुषोत्तमको ही ब्रह्म बता रहे हैं, माने पुरुषोत्तम ही ब्रह्म हैं। उत्तम पुरुष-पुरुषोत्तम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण परम ब्रह्म हैं। **अक्षरं ब्रह्म परमं।**

उपनिषद्में ऐसा प्रसंग आया है, कि एक होता है अक्षर, जो सबका कारण होता है, और एक उससे भी परे होता है—**अक्षरात्परतः परः।** कठोपनिषद्में आया **परतः अक्षरात्परः** सबका कारण है अक्षर, और उस अक्षरसे भी परे जो है, सो ब्रह्म है। तो वह जो परम अक्षर है—प्रकृति मण्डलसे परे, सबकी कारणताके परे जो वह परम अक्षर तत्त्व है, उसीका नाम ब्रह्म है। कर्मसे जिसको कोई पा नहीं सकता, उपासना, ज्ञानकी जहाँतक गति नहीं, बुद्धि जिसको विषय नहीं कर सकती और सबको जाननेवाला साक्षी भी अविद्याके वशवर्ती होकरके अपनेको अलग मान रहा है। असलमें वही है तो उसका नाम परम ब्रह्म है।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते। यह ब्रह्म शब्द जो है, इसका कभी-कभी बड़े कट्टर भगत लोग जो होते हैं न, वे ब्रह्म शब्दका बहिष्कार कर देते हैं, कि बाबा, यह ब्रह्म शब्द हमारे मुँहमें समाता नहीं है, बोले तो बड़ा मालूम पड़ेगा। हमारे

तो सीधा-सीधा कोई राम हो, कोई श्याम हो, शिव हो। बोलते हैं—ब्रह्म शब्द हमारे मुँहमें अटता नहीं है। बोलनेमें जरा भारी शब्द है न यह! क्यों? क्योंकि 'ब्र' भी संयुक्ताक्षर है गुरु है, और 'ह्म' भी गुरु है-संयुक्ताक्षर है। 'ब्रह्म' बोलनेमें थोड़ा मुँह फूल जाता है। परन्तु यह विचार करना चाहिए कि यो जो उपनिषद् हैं न, इनको सब आचार्य, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य—सब उपनिषदोंको प्रमाण मानते हैं; और उपनिषदमें उसी परमात्माका नाम ब्रह्म करके रखा हुआ है। अब ब्रह्म शब्दका बहिष्कार कर दो तो किसी आचार्यके अनुयायी नहीं हुए तुम; माने उपनिषदोंमें परमात्माका नाम, भगवान्‌का नाम ब्रह्म है और वे **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**को यह नहीं कहते, कि यह दूसरेका वर्णन है।

अच्छा देखो, ब्रह्मसूत्र जो है-**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**-इसपर अनुभाष्य श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजका है। अब वे कहते हैं-ब्रह्म माने पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण। निम्बार्काचार्य ब्रह्मका क्या अर्थ करते हैं? साक्षात् नारायण, पुरुषोत्तम वासुदेव। श्रीरामानुजाचार्यजी ब्रह्म शब्दका क्या अर्थ करते हैं? कि नारायण। अब बताओ जब सब आचार्य ब्रह्म शब्दका अर्थ अपना-अपना इष्टदेव ही करते हैं, तो ब्रह्म शब्दको अगर तिरस्कारकी दृष्टिसे देखोगे, तो अपने आचार्य और अपने सम्प्रदायकी मान्यताका ही तिरस्कार हुआ कि नहीं? बोले-भाई, ब्रह्म शब्दका आखिर तिरस्कार कौन करते हैं? तिरस्कार वे अनन्य लोग करते हैं। अनन्य लोग कौनसे होते हैं? जैसे श्रीरामानुजाचार्य महाराज विशिष्टाद्वैतवाद सम्प्रदायके आचार्य हैं। अब उसमें-से बहुतसे रसिक जो निकल जायेंगे न, तो अवान्तर सम्प्रदाय निकल जायेगा। श्रीनिम्बार्काचार्यजी महाराज तो ब्रह्म शब्दकी व्याख्या करेंगे, लेकिन हरिदासजी महाराज ब्रह्म शब्दको बचा जायेंगे। निम्बार्काचार्यजी महाराज तो ब्रह्म शब्दका बड़ा भारी आदर करेंगे, पर हरिव्यास देवजी जब महावाणी लिखेंगे, तो ब्रह्म शब्दको बचा करके! ब्रह्माकार, ब्रह्मपुण्य अलग-अलग हैं।

मूल आचार्यसे जब आदमी अलग हो जाता है तब वह वेदका तिरस्कार करता है, और ब्रह्म शब्दका अनादर करता है। जबतक वेदका आदर है, जबतक अपने सम्प्रदायका आदर है, जबतक अपने आचार्यका आदर है, तबतक ब्रह्म शब्दका तिरस्कार नहीं किया जा सकता। यह तो अपने इष्टदेवका ही नाम है भला! अपने-अपने इष्टदेवका नाम ही ब्रह्म है। ब्रह्म माने सबसे बड़ा। बोले—महापुरुष तो सब है, पर अपना गुरु तो सबसे बड़ा। परब्रह्म परमात्मा तो सब है, पर अपना इष्टदेव सबसे बड़ा! अपना मंत्र सबसे श्रेष्ठ! मंत्र तो सात करोड़ हैं, इनमें-से अपना

मंत्र सबसे भला! **मन्नाथः श्रीजगन्नाथः। मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः।** मेरे गुरु जगद्गुरु हैं और मेरा इष्टदेव जगत्का स्वामी है। इसीका नाम ब्रह्म है। तो अक्षर शब्द जो है, उसका वाचक है।

अब **अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्** यह अव्यक्त अक्षर परमगति रूप है, परमात्माका ही नाम है यह। इसलिए श्रीमद्भागवतमें इसका निर्णय बड़े-ही अच्छे ढंग से किया—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

एक अद्वय तत्त्व है। जिसमें जाननेवाला और जाना जानेवाला दोनों अलग नहीं होते हैं, उसका नाम होता है अद्वय। वही ज्ञानस्वरूप तत्त्व है और उसी ज्ञानस्वरूप अद्वय तत्त्वको वेदान्ती लोग ब्रह्म कहते हैं, योगी लोग परमात्मा कहते हैं, और उसीको भक्त लोग भगवान् कहते हैं। ब्रह्म और भगवान् दोनों एक ही वस्तुका वाचक शब्द है, जुदा-जुदा नहीं। इसलिए ब्रह्म शब्द सुनकर घबड़ाना नहीं। अपने प्यारेका नाम ब्रह्म है।

एक महात्मा गिनकर बताते थे अक्षर। जैसे 'क' से लेकर 'स' तक अक्षर गिन जाओ—सीताराम। 'अ' से लेकर 'ई' तक गिन जाओ और फिर 'स' से लेकर 'त' तक गिन जाओ, फिर 'अ' से लेकर 'आ' तक गिन जाओ तो 'सीता' हुआ न! देखो, गिनकर देखना कभी, बहुत मजा आवेगा—और 'क' से लेकर 'र' तक गिन जाओ, 'अ' से 'आ' तक गिन जाओ, और 'क' से लेकर 'म' तक गिन जाओ—राम। व्यंजन गिनने हों 'क' से शुरु करो और स्वर गिनने हों तो 'अ' से शुरू करो। 'सीताराम'में एक सौ आठ गिनती निकलती है। इसी तरह 'राधिका-कृष्ण'की गिनती करो, तो एक सौ आठ ही निकलता है। ये हैं युगल-युगल, और 'ब्रह्म' अकेला ही एक सौ आठ पड़ता है। क्योंकि ये दो युगल इसमें हैं न-एक 'ब' और एक 'र', और एक है 'ह' और एक 'म'—तो युगल होनेसे ब्रह्म अकेला ही एक सौ आठ पड़ता है, और वे लोग अपनी-अपनी श्रीमतीके साथ एक सौ आठ पड़ते हैं। देखो, कवर्ग+चवर्ग+टवर्ग+तवर्ग+पफब=२३ 'र'के लिए हो गये २७ अब 'ह' और 'म' को गिन लो, 'ह' = ३३ हुआ और 'म' हुआ २५ तो कुल हुआ १०८। ऐसे महाराज, यह ब्रह्म अकेला ही एक सौ आठ होता है।

वैसे केवल ब्रह्म नामका जप नहीं किया जाता; सोऽहंका जप करते हैं। अहं ब्रह्मास्मिका भी कोई-कोई जप करते हैं, परन्तु वह तो विचारके द्वारा जाननेकी

वस्तु है और सीताराम-सीताराम ध्यान करनेकी और जप करनेकी वस्तु है। हृदयमें बसानेके लिए सीताराम, हृदयमें बसानेके लिए राधे श्याम! ये ज्ञानके बाद भी रहते हैं, जाते थोड़े ही हैं कहीं! और जाननेके लिए ब्रह्म!

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते—ये शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं; इनकी संख्या एक सौ आठ होती है। इसीलिए एक सौ आठ उपनिषद्, एक सौ आठ मालाके दाने—ये सब ब्रह्मरूप ही हैं।

अब स्वभावकी बात करते हैं। यह भगवान्‌का स्वभाव माने स्वस्वरूप है—अपना स्वरूप, वह क्या है? कि **अध्यात्मं।** इसी शरीरके भीतर जो जीवात्मा है, यह भगवान्‌का अपना ही स्वरूप है, दूसरा नहीं। **आत्मनि इति अध्यात्मं**—जो शरीरके भीतर रहे, उसका नाम होता है अध्यात्म। शरीरके भीतर प्राण भी रहता है, शरीरके भीतर इन्द्रियाँ भी रहती हैं, शरीरके भीतर मन-बुद्धि भी रहती हैं, लेकिन ये सब शरीर ही हैं, शरीरके भीतर कहाँ है? प्राण भी शरीर है, इन्द्रियाँ भी शरीर हैं, मन भी शरीर है, बुद्धि भी शरीर है। इसके भीतर जो शरीरी आत्मा बैठा हुआ है, उसको बोलते हैं अध्यात्म, और वह कौन है? बोले भगवान्‌का स्वभाव ही है।

एक बार भगवान् अकेले बैठे हुए थे। आप जानते हो, ब्रह्म तो खास करके अकेला ही बैठता है। ब्रह्मके पास तो हँसी-खेलके लिए, मनोरंजनकी कोई सामग्री ही नहीं है। लेकिन यह नहीं समझना कि अकेलेमें सूना-सूना लगता होगा, नहीं, कुछ अखरता नहीं है, बड़ा मजा रहता है। बड़े आनन्दसे ब्रह्म रहता है—सच्चिदानन्दघन रूपसे। ऐसा आनन्द, ऐसा आनन्द, कि उससे बड़ा आनन्द कोई है ही नहीं। ब्रह्मानन्द सब आनन्दोंकी परम सीमा है, यह बात उपनिषदमें बतायी गयी है। सम्पूर्ण प्राणियोंमें मनुष्यका आनन्द श्रेष्ठ है, मनुष्योंसे फिर पितरोंका आनन्द श्रेष्ठ है, फिर देवताओंका आनन्द श्रेष्ठ है। यह सब आनन्द करते-करते आनन्दकी जो परम सीमा है, आखिरी स्थिति है, उसको ब्रह्मानन्द बोलते हैं। उसमें मैं, यह, वह, तुम—कुछ नहीं, अकेला, बिलकुल कैवल्य! केवल अकेला बन गया है हिन्दीमें।

ब्रह्मके मनमें एक ख्याल आया। उसने कहा कि मैं तो अनन्त आनन्द-स्वरूप हूँ। अब तो मेरा आनन्द न घट सकता है, न बढ़ सकता है, न घटे, न बढ़े-तब क्या युक्ति की जाये? कुछ तो खेल होना चाहिए न! तो खेल कैसे होगा? बोले—अच्छा आओ, एक ऐसी युक्ति करें, कि अनन्त होनेपर भी वृद्धि हो। अनन्तमें वृद्धि कैसे हो? भगवान्‌ने क्या किया? भगवान्‌ने कहा कि अच्छा, आनन्द तो नहीं बढ़ सकता—यह अनन्त है, लेकिन अकेले मैं ही तो ले रहा हूँ न यह आनन्द! यदि इस

आनन्दको लेनेवाले बहुतसे हो जायँ, और सब पूरा-पूरा आनन्द लें! समझो कि कोई दूधका समुद्र होवे और पीनेवाला एक होवे, छक रहा हो पीकर! तो ठीक है, वह अकेला तो ज्यादा पी नहीं सकता, और यह अनन्त आनन्दका समुद्र बढ़ाया नहीं जा सकता। लेकिन पीनेवाले बहुतसे हो जायँ, तब क्या होगा? आनन्द बढ़ेगा कि नहीं बढ़ेगा? जब परमात्माने यह निश्चय किया कि इस आनन्दको लेनेवाले बहुत-से हो जायँ, तो उसका जो संकल्प है न, नाना अन्तःकरणके रूपमें प्रकट हो गया। अब उसी अन्तःकरणपर बैठकर परमात्मा अपने ही परमानन्दका अनुभव कर रहा है। एक ईश्वर है, एक जीवन्मुक्त है और ब्रह्मानन्दका अनुभव कर रहा है, तब भी ब्रह्मानन्द अनन्त ही है, और करोड़ जीवन्मुक्त हो गये और करोड़ ब्रह्मानन्दका अनुभव कर रहे हैं, तो कोई ब्रह्मानन्द घट गया? घटा नहीं, परन्तु अनुभव करने वालोंके अधिक हो जानेके कारण उसकी अनुभूतिमें एक उल्लास, एक मौज, एक तरंगायमान जैसी स्थिति हो गयी! एक ही परमात्मा कोटि-कोटि जीवन्मुक्तोंके अन्तःकरणमें बैठकर अपने ही ब्रह्मानन्दका अनुभव कर रहा है। न तो परमात्मा जुदा है, न वह अन्तःकरण जुदा है, न वह जीवन्मुक्त जुदा है।

फिर बोले—भाई, एक ही तरहका आनन्द सब जीवन्मुक्तोंको आता है, जरा कुछ चटपटा मसाला भी तो चाहिए न! थोड़ी खटाई भी चाहिए, थोड़ी मिर्च भी चाहिए, थोड़ा नमक भी चाहिए। यह संसारी लोगोंका जो दुःख होता है न, यह मिर्च है, खटाई है, नमक है और परमानन्द स्वरूप परमात्मा जीवन्मुक्तोंके रूपमें प्रगट होकरके अपने अनन्त-अनन्त ब्रह्मानन्दका आस्वादन कर रहा है। यह क्या है? बोले—**स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।**

यह कोई कर्मसे पैदा हुआ? बोले—नहीं, यह भगवान्‌का स्वभाव है। भगवान्‌का स्वभाव क्या है? यह बात जल्दी ध्यानमें नहीं बैठती है। परमात्मा चेतन है, देखो। चेतन उसको कहते हैं, कि अपनेको प्रकाशित करनेके लिए तो जिसको किसी दूसरेकी जरूरत न हो स्वयं प्रकाश हो और दूसरेको प्रकाशित करे। तब यह चेतन-स्वरूप परमात्मा अकेला और इसको प्रकाशित करनेके लिए कोई दूसरा है ही नहीं! किससे प्रकाशित करें? एक परब्रह्म परमात्माके सिवाय न मैं, न तुम! प्रकाशित किसको करे? तब क्या हुआ? बोले—स्वयं प्रकाशक और स्वयं प्रकाश्य, तो प्रपंचके रूपमें यही परमात्मा! तब? वैष्णवाचार्योंका बिना मतभेदका सिद्धान्त है कि जीवात्माके अहंके रूपमें, और जगत्‌के इदं के रूपमें एक जो मूल ब्रह्म-तत्त्व है, वही प्रकट हो रहा है भला! अहमर्थ भी ब्रह्म है और इदमर्थ भी ब्रह्म है!

शंकराचार्य तो ऐसे प्रतिपादन करते हैं न, कि इदमर्थ मिथ्या है, और छोटा अहमर्थ भी मिथ्या है—वह भी प्रपंच है। और अहंका जो सच्चा अर्थ है, वह ब्रह्म है, और ब्रह्मदृष्टिसे दूसरा कुछ नहीं है—अद्वैत तत्त्व है। उपासनाके आचार्य लोग प्रतिपादन करते हैं कि जो कुछ अहं, इदंके रूपमें व्यवहार-कालमें है वह भी परमात्माका स्वरूप ही है। माया-वाया नहीं है, अविद्या नहीं है-ऐसे वर्णन करते हैं।

क्या आनन्ददायक प्रसंग है यह, कि एक ही सत्ता प्रकाशक भी है और प्रकाश्य भी है। एक ही चेतन प्रकाशक भी है, और प्रकाश्य भी है! एक ही आनन्द प्रकाशक भी है, और प्रकाश्य भी है! इसका अर्थ हुआ कि भोक्ता भी वही और भोग्य भी वही! ज्ञाता भी वही और ज्ञेय भी वही, कर्ता भी वही और कर्म भी वही। उसके सिवाय दूसरा कोई नहीं! यह सब कैसे हो गया? बोले—**स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते**—यह चेतन वस्तुका स्वभाव ही है कि अपने आपको ही जाननेवाला और जाना जानेवाला, कर्मोंवाला और किया जानेवाला, भोगनेवाला और भोगा जानेवाला सब रूपमें प्रकट करना, यह चेतनका अपना स्वभाव ही है।

यह सृष्टि क्या हो रही है? यह जीवात्मा क्या हो रहा है? यह परमात्माका स्वभाव है। **अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते**। यह जो इतना बताते हैं न, कि सब परमात्मा है-इसका अर्थ यही होता है कि राग-द्वेष मत करो। तत्त्वकी दृष्टिसे तो सब ब्रह्म है और व्यावहारिक इसका अर्थ यह है कि अपने दिलमें जलन मत बसाओ। अगर तुम किसीसे द्वेष करते हो, तो जिससे द्वेष करते हो, वह भी ईश्वर है। और जिस अन्तःकरणमें द्वेषको बसाते हो, वहाँ भी ईश्वर बैठ करके जलनका तो आश्रय हो रहा है! एक मोमबत्ती जला लो, और वह मोमबत्तीकी लौ दूसरेको छुआओ, तो मोमबत्ती तो जलेगी ही, जिसको छुआओगे, वह भी जलेगा। वैसे ही द्वेषकी आग जिस दिलमें प्रज्वलित होती है, उसको भी जलाती है, और जिसके साथ छुआई जाती है, उसको भी जलाती है। जब तुमको यह ज्ञान होगा, कि दोनों जगह ईश्वर ही दुःख पा रहा है, सो अपने देहमें भी द्वेष करके हम ईश्वरको जलाना चाहते हैं, और दूसरेके शरीरमें बैठे हुए ईश्वरसे द्वेष करके उसको वहाँ जलाना चाहते हैं। तो सब ईश्वर है—यह कहनेका अर्थ हुआ, 'सबके घरमें साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे। घूँघट का पट खोल रे, तोहे पीऊ मिलेंगे।' सबके हृदयमें एक ही ईश्वर बैठा हुआ है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

☆

४

विसर्ग : कर्मसंज्ञितः

आधा पाव घी भी एकादशी व्रतके दिन खा लिया, तो तप कहाँ हुआ? एकादशी व्रत पूरा तब होता है, जब उस दिन फलाहारके नामपर पक्वान्न नहीं बनाते हैं।

जब भोगका त्याग करते हैं, तब ब्रह्मचर्य-रूप धर्म होता है। जब धनका त्याग करते हैं, तब संतोष-रूप धर्म होता है। बिना त्यागके धर्म होता ही नहीं। कम्बल ओढ़े बैठे हैं, गर्मी लग रही है। अब कम्बलको हटाया और जाड़ेकी परवाह न करके कि हमको ठंड लगेगी-गंगामें स्नान किया। आरामका त्याग किया।

बिना त्यागके कभी धर्म होता ही नहीं है। इसलिए **विसर्गः कर्मसंज्ञितः**— भगवान्‌ने कहा, कि समूचे कर्मको समझना, सम्पूर्ण कर्मको समझना! सम्पूर्ण कर्मको कैसे समझना? बोले-त्यागके रूपमें कर्मको समझना। बिना भोगका त्याग किये कर्म सम्पन्न नहीं होता, और इसी कर्मके अनुसार मनुष्यका जन्म और मनुष्यका संरक्षण होता है।

कर्म किसे कहते हैं? मनुष्यके हृदयमें भावकी उत्पत्ति करनेवाला, भाव देने वाला—जन्म देनावाला, पालन देनेवाला—जो त्याग है, उस त्याग को ही कर्म कहते हैं।

अब दूसरा नमूना इसका देखो—

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।

इसमें विसर्ग है; त्याग है। विसर्ग माने त्याग, विसर्जन। हे पाँच रुपया! अब हम तुम्हारा विसर्जन करते हैं। विसर्जन करते हैं—माने जाओ! जैसे देवताकी पूजा की न! गोबरकी गौरी बनायी, सुपारीका गणेश बनाया, उनकी फिर पूजा की, बोले—अब हम तुम्हारा विसर्जन करते हैं। विसर्जन करते हैं-माने, पधारो महाराज! धीरे-धीरे अपने घर पधारो!

इस त्यागसे मनुष्यके मनमें भावकी उत्पत्ति हुई। भूत माने मनुष्य प्राणी और भावका उद्भव करनेवाला विसर्ग। एक आदमीको मालूम न पड़े, और उसके खजानेमें—से कोई धीरेसे पाँच रुपया निकाल ले, खोया कि पाया उसको पता न चले, तो उसे क्या होगा? रुपया तुम्हारी जेबमें-से घरमें श्रीमतीजी निकाललें, समझो पाँच रुपया—तो उसे क्या होगा? पाप होगा कि पुण्य होगा? जिसका निकाला गया, उसे न पाप होगा, न पुण्य होगा। पूर्व जन्मके पापका फल जरूर होगा, जब मालूम पड़ेगा, तब! भाव उदय होगा, कि हाय-हाय हमारे पाँच रुपये खो गये। वह पाँच रुपयेके जानेसे दु:ख नहीं आया; वह तो पहलेका कहीं पाप संचित था, वह दु:ख आनेवाला था, लेकिन पाँच रुपयेका निमित्त बनाकर दु:खका भाव हृदयमें आगया। अब समझो, किसीको पाँच रुपया जान-बूझकर, बड़े प्रेमसे दिया, देकरके मनमें खुशी हुई। तो यह क्या हुआ? कि खुशी तो आनेवाली थी, पाँच रुपया देनेसे एक निमित्त बन गया तुम्हारे चित्तमें, और उस निमित्तसे खुशी प्रकट हो गयी!

अब रुपया जानेसे दु:ख होता है—एक बात, और रुपयेका दान करनेसे सुख होता है—ये दो संस्कार चित्तमें चले। चोरीके प्रति द्वेष हुआ और दानके प्रति राग हुआ। इससे आगे भी तुम दान करोगे और आगे चोरके प्रति द्वेष करोगे ये दो भाव तुम्हारे चित्तमें उत्पन्न हो गये।

अब समझो, कि आज संक्रान्तिका दिन है, पवित्र तीर्थ है; गंगा-स्नान किया और उत्तम, एक पढ़े-लिखे संस्कारी, सदाचारी ब्राह्मणको पाँच रुपयेका दान किया-सबकुछ शास्त्रोक्तरीतिसे किया; आज तो भाई! हमारा धन सफल हो गया। जिस त्यागसे अपने हृदयमें पवित्र भावनाका उद्भव होवे, उसको असलमें धर्म-कर्म बोलते हैं। उसका नाम कर्म है। जहाँ भाव ही बिगड़ जाये, उससे धर्म नहीं होता है।

एकके घरमें जब पितृ-पक्ष आता है तो अपने रसोइया महाराजको कहते हैं कि महाराज, आज आप भोजन करो। वैसे रसोइया महाराज रोज भोजन करते हैं घरमें। बोले—आज भोजन करो। भोजन कराकर उनको एक रुपया, दो रुपया दक्षिणा भी दे दी। तो मनमें क्या आया? कि देखो, एक तो बाहरका ब्राह्मण आता, तो और बनाना पड़ता। घरमें जितना बनता है रोज, उसीमें काम बन गया; और दो रुपया ब्राह्मणको दे दिया। बोले—यह आखिर तो हमारा ही रसोइया है न! खुश होगा कि इसको दो रुपये मिले हैं, तो दूसरे से बढ़िया रसोई बनावेगा। अब वह

पितरको कहाँसे मिलेगा? धर्म कहाँसे होगा? इसमें धर्म नहीं होगा; धर्म तब होता है, जब धर्मके उद्देश्यसे, पवित्र उद्देश्यसे किया जाता है, और जिसको करके प्रसन्नता होती है।

एक सेठ आये वृन्दावन। यह हाथमें बहनें बाँधती हैं न राखी या ब्राह्मण बाँधते हैं भाई दूज वाले दिन, तो समझो भाई दूज होगी। एक बहनने जाकर उनके सिरमें टीका लगा दिया। माला पहना दी। सेठ बड़े प्रसन्न हुए कि देखो, वृन्दावनमें हमको बहन मिल गयी। बोले—बहन! तुमको क्या चाहिए? बहन बोली कि हमको तो कुछ नहीं चाहिए। स्कूलमें अध्यापिका हैं, पढ़ाती हैं। सेठने कहा आखिर कुछ तो चाहिए। आकर टीका किया है, कुछ तो माँगो। तो बोली—हमारा स्कूल गरीब है, स्कूलको पाँच हजार रुपया दे दो। सेठ ने कहा—बहुत खुशीसे वह तो मैं कर दूँगा। अब सेठजीका बड़ा नाम हुआ, कि देखो, एक टीका लगानेवाली स्त्रीको पाँच हजार देनेको कह दिया। सेठजी जब घरमें आये, तब महाराज, बड़े व्याकुल हुए, कि सभामें हमारी बुद्धि मारी गयी, कि पाँच हजार रुपया बोल आये। अब वे पैसेके लिए पछताने लगे। अब सोचो, उस स्कूलको मदद करनेका जो धर्म था न, वह धर्म उनको कैसे होगा? अब बादमें जब स्कूल वालोंने लिखा-पढ़ीकी, तो चार-पाँच वर्ष लिखा-पढ़ीमें लग गये महाराज! चिट्ठी जाये और आवे अब देते हैं, अब देते हैं। तो धर्म ऐसे नहीं होता है। चित्तमें भावकी उत्पत्ति नहीं होवे तो, उसमें धर्म कैसे?

एक दिन मैं एक सेठकी दुकानपर बैठा हुआ था। कोई ब्राह्मण आया कुछ माँगनेके लिए। सेठ उसे देखते ही बोला—हटो, हटो! तुम लोग जब चाहे तब आ जाते हो। परेशान करते हो। चार बात उसको सुनायी, उसके बाद अपने मुनीमसे कहा कि उसको कुछ दे दो। तो दिया भी। अब तिरस्कार भी किया, और दिया भी। तो क्या समझते हो? देनेसे, पैसेमें-से धर्म नहीं निकलता है। वह जो तिरस्कार किया न ब्राह्मण का, माँगनेवालेका, उसमें तो अधर्म हो गया। अब देनेके लिए जैसा भाव चित्तमें चाहिए, वैसा भाव उदय नहीं हुआ। धर्म होता है श्रद्धासे, विधिसे। शास्त्र-विधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक जब काम किया जाता है, तब उससे धर्म होता है—

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतं।

कहते हैं, एक मारवाड़ी सेठ थे। जब वे मरने लगे, तब उन्होंने अपने

बेटेसे कहा—'बेटे, मैंने जिन्दगी भर बहुत कमाया। अब कुछ दान-कर्म करो।' बेटेजी बोले—'पिताजी जैसे कहो, वैसे करें'। बोले—'बेटा, लाख रुपया तुम लाकर यहाँ जमा कर दो मेरे सामने।' चाँदीके रुपये उस जमानेमें होते थे। तो लाख रुपया लाकर ढेरी बना दी गयी। सेठजीने कहा कि इसका दान करो। ब्राह्मण बुलाया गया। अब संकल्प हाथमें लिया। लड़केने कहा कि पंडितजी, देखो! तुमको जिन्दगी भरमें ऐसा दाता नहीं मिला होगा, जो एक लाख रुपया इकट्ठे गिन-गिनकर ब्राह्मणको ढेर लगाकर ऐसे दे दे। तो ब्राह्मणने कहा, अच्छी बात है, दे दिया संकल्प लाख रुपयेका। उसके बाद बोला—सचमुच तुम्हारे सरीखा दाता तो हमको नहीं मिला था, लेकिन हमारे सरीखा लेनेवाला भी कोई नहीं मिला होगा। एक रुपया है हमारे पास अंटीमें। देखो, इस एक लाख रुपयेको एक लाख एक करके, मैं तुम्हे देता हूँ। अब तुम्हें जिस काममें लगाना हो, लगाओ।

श्री वल्लभाचार्यजी महाराजके जीवनमें अनेक ऐसे प्रसंग आये हैं। कोई दस हजार मोहर ले आया, कि श्रीनाथजी को अर्पण करेंगे। अब महाराज, वह अर्पण करते समय गिनने लगे, तो गिनते समय मोहरें खनक गयीं। वे तो महाप्रभुकी सेवामें थे; तो बोले—भाई, यह मोहरोंकी आवाज आगयी है। अब ये महाप्रभुको अर्पण नहीं होंगी, ले जाओ। ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं। तो धर्ममें भावकी प्रधानता है। अखबारमें छपवा देंगे कुछ, घोषणा करवा देंगे कुछ। आजकल तो मैंने सुना है, ऐसा होता है, कि भरी सभामें पाँच-सात आदमी झूठ-झूठ ही ऐसी घोषणा कर देते हैं, कि हम इतना देंगे, हम इतना देंगे। तो उनकी सुनके पीछे लोग घोषणा कर देते हैं। वह पीछेवालों का तो आ जाता है। और पहले वाले जो पाँच-सात होते हैं, उनका नहीं आता है। वे तो लोगोंको उत्साहित करनेके लिए बोलते हैं। वे कहते हैं—भाई, हमारी वजहसे तो सब आया, हम काहेको देंगे? तो—

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।

अब देखो! इसको ऐसे लगाओ-**अक्षरं ब्रह्म परमं।** जो अक्षर ब्रह्म है, वह कैसा है? यह समझो वैष्णवाचार्योंकी व्याख्या है; कभी नाम आवे, कभी नहीं आवे—ऐसा हो सकता है। अक्षर ब्रह्म जो है, वह तो परिपूर्ण, ठसाठस, एकरस, अद्वैत भरा हुआ है। उसमें न प्रकृति है, न परमाणु है, न संसार है, न माया है, न छाया है। एक अद्वैत ब्रह्म परिपूर्ण अक्षर ब्रह्म है। वह कैसा है? कि उस परब्रह्म

धाममें **यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।** उसमें **परः पुरुषोत्तमो मीयते अस्मिन् इति परमं।**

वह ब्रह्म कैसा है? कि उसीमें पुरुषोत्तम भगवान्‌का दर्शन होता है। यह तो जैसे चतुष्पाद बोलते हैं न, वैसे परमात्माको चतुर्बाहु बोलते हैं। दोनोंमें कोई ज्यादा फर्क नहीं है। फर्क मैं बता देता हूँ। सत्ताकी दृष्टिसे तो चतुष्पाद बोलते हैं। पद जो है न, वह सत्ता-सत्‌की दृष्टिसे है; और शक्तिकी दृष्टिसे चतुर्बाहु बोलते हैं। अब यह चतुष्पाद जो ब्रह्म है अथवा चतुर्बाहु जो ब्रह्म है—शक्तिशाली है न, सगुण—तो चतुर्बाहु हो गया, बाहुमें शक्ति रहती है। शक्तिशाली होनेके कारण उसको चतुर्बाहु बोलते हैं, और अविचल-अचल होनेके कारण उसको चतुष्पाद बोलते हैं। जाग्रत्में, स्वप्नमें, सुषुप्तिमें और तुरीयमें जो अचल है, सो चतुष्पाद, और जो जाग्रत्‌की क्रियामें, सृष्टिकी क्रियामें, प्रलयकी क्रियामें—और निष्क्रियतामें, ऐसा प्रभावशाली प्रभु है, उसका नाम चतुर्बाहु।

अब इसमें समझो, कि जो अपने ऐश्वर्यका परित्याग करके द्विभुज ही होकर रहे कि हमारे अन्दर कोई ऐश्वर्य नहीं है—यह परमेश्वरका द्विभुज होना है—माने ऐश्वर्यका तिरस्कार कर देना। नहीं चाहिए हमको ऐश्वर्य। पीताम्बरधारी, मुरली मनोहर, श्यामसुन्दर पुरुषोत्तम जो है उस परब्रह्म परमात्मामें—संसारमें नहीं, माया नहीं, छाया नहीं, राग नहीं, रोष नहीं, द्वेष नहीं। अखण्ड सच्चिदानन्दघन परब्रह्ममें जो नराकृति द्विभुज मुरली-मनोहर पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर है, वह कहाँ दिखता है? कि इसी ब्रह्ममें। **परमं ब्रह्म। परः पुरुषोत्तमो मीयते अस्मिन् इति।**

यह तो हुआ इष्टदेव। अब इसमें जीव क्या है? बोले—**स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।** स्वभावः स्वभावः। स्वयं परमात्मा ही पूज्य बना, आराध्य बना, पुरुषोत्तम बना। अब वही पुजारी-जीव बनकर भी प्रकट हुआ। स्वयं पूजा, स्वयं पूज्य और स्वयं पुजारी!

आपै अमृत आपु अमृतघट आपहि पीवनहारी।
आपै ढूँढै आपु ढुँढावे आपहि ढूँढनहारी॥

गिरिराज गोवर्धन-लीलामें देखते हैं न आप, एक रूपसे भगवान् गिरिराज बने हुये! वहाँ भी मुकुट, कुण्डल, पीताम्बरधारी और दूसरे रूपमें नन्दबाबाके साथ। नन्दबाबा कहते हैं—बेटा, चन्दन लगाओ, तो चन्दन लगा रहे हैं। बेटा, माला पहनाओ, तो माला पहना रहे हैं। बेटा, प्रणाम करो, तो प्रणाम कर रहे हैं। बेटा, भोग लगाओ....। भगवान् मुस्कुरा रहे हैं, बड़ी खुशी हो रही है। खानेवाले भी खुद

और खिलाने वाले भी खुद! **स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते**का अर्थ है, वही परब्रह्म-रूपसे, और वही जीवात्माके रूपसे।

अब बोले—यह सेवा-पूजा क्या हो रही है?

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥

भगवान्‌की सेवाके योग्य जो अपना सखीरूप है, सखारूप है, दासरूप है, मातृरूप है, पुत्र रूप है, पितृ रूप है—वह हुआ स्वभाव, और उसमें जो सेवा है—भूतभावोद्भवकरो-भूतोंके हृदयमें भगवद्‌भावका उदय जिससे होवे ऐसे, वह! और भगवान्‌का चंदन लगाना, भगवान्‌को माला पहनाना, भगवान्‌की आरती उतारना, भगवान्‌की सेवा-पूजा करना—यह जो भगवान्‌की सेवाके लिए त्याग है, इस त्यागको ही कर्म कहते हैं, माने, और कर्म तो बन्धनके हेतु हैं, और यह भगवत्सेवाका जो कर्म है, यह मुक्तिका हेतु है।

कर्मसंज्ञितः अब एक दूसरा भाव है; ऐसा मजेदार है न! आप टीकामें देखो। वेदमें इसका वर्णन आता है कि कर्म क्या है? वेदमें वर्णन है-**तस्य वीर्यं कर्म** भगवान्‌के वीर्यका नाम कर्म है—वीर्य माने उनका पराक्रम, जो दीख रहा है। आप जानते हैं न, अग्निमें क्या पराक्रम है? **तस्मै त्वयि किं वीर्यं**। अग्निदेवने कहा—हमारे अंदर यह वीर्य है कि हम सबको जला सकते हैं। एक तृण उसके सामने रख दिया गया, और उसे अग्नि नहीं जला सका। असलमें अग्निमें, तृणको जलानेका पराक्रम नहीं, वह भगवान्‌का पराक्रम है। यह जो भगवान्‌के पराक्रमसे अग्निमें जलानेकी शक्ति है, वायुमें उड़ानेकी शक्ति है, सूर्यमें प्रकाशनेकी शक्ति है, चन्द्रमामें रस-वर्षाकी शक्ति है, जलमें आप्यायनकी शक्ति है कि तर कर दें। पृथिवीमें धारणकी शक्ति है, आकाशमें अवकाशकी शक्ति है, मनमें संकल्पकी शक्ति है—यह क्या है? कि यह भगवान्‌का वीर्य है। इसी वीर्यसे प्राणियोंके शरीर बनते हैं। यदि क्रिया न होती, मिट्टी-पानी-आग-हवा-आकाशमें यदि कर्म न होता—भगवान्‌के पराक्रमसे ये संचालित न होते, भगवान् अगर इनको हिलाता-डुलाता नहीं, तो बिना हिलाये-डुलाये कोई कर्म नहीं होता। गीतामें इसका बड़ा बढ़िया वर्णन है। चौदहवें अध्यायके प्रारम्भमें दो श्लोक देखने योग्य हैं।

यह 'विसर्ग' शब्द असलमें संस्कृतमें—यह विसर्जन जिसको कहते हैं न-वीर्य-त्यागके अर्थमें आता है। जैसे पिताके वीर्य-त्यागसे माताके शरीरमें सन्तानकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार इस सृष्टिके जीवोंका शरीर उत्पन्न करनेके

लिए जो परमेश्वरका वीर्य-त्याग है, उसको विसर्ग बोलते हैं। वह क्या है?

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥ १४.३
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥ १४.४

भगवान्‌ने बताया कि महद् ब्रह्म जो है—समष्टि बुद्धि अथवा उससे उपलक्षित प्रकृति वह है माता, और मैं बीज देनेवाला हूँ, पिता। जीवोंको शरीर देनेवाला पिता मैं हूँ। यह गर्भाधान क्या है? **तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।** बोले—प्रकृति भी स्वस्थ होकर-महद् तत्त्व होकर बैठी है, निर्मल होकर, नीरजा होकर-रजोरहित होकर महद् ब्रह्म रूपा जो प्रकृति है, वह बैठी हुई है। और उसमें चिदाभास-रूप वीर्यका जो आधान है—माने उस स्वस्थ प्रकृतिमें परमात्माके संसर्ग से जो स्वच्छता-मूलक चेतनताका उदय है, भगवान्‌का जो आभास है, चित् वस्तुका जो आभास है, उसका महद् ब्रह्ममें पड़ना—इसीका नाम गर्भाधान है, इसीका नाम विसर्ग है। विसर्ग है—माने भगवान्‌ने अपनी सत्ता, अपनी चेतनता, अपना आनन्द आभासके रूपमें प्रकृतिके अन्दर आधान कर दिया। उसके पहले किसी जीवको कोई शरीर प्राप्त नहीं था।

तब क्या हुआ? **भूतभावोद्भवकरः**। जब चिदाभास प्रकृतिमें पड़ गया, तब जीवोंको अपने पूर्व-पूर्व संस्कारके अनुसार भिन्न-भिन्न शरीरोंकी प्राप्ति हुई। वीर्य एक पिता का है—परमात्माका, और माता है प्रकृति। जैसे कश्यप ही पशुओंके पिता हैं, पक्षियोंके पिता हैं; दैत्योंके पिता हैं, दानवोंके पिता हैं, स्त्रियोंके पिता हैं, पुरुषोंके पिता हैं। इसी प्रकार एक परमात्मा जो है, वह स्वयं **अहं वीर्यप्रदः पिताः अहं बीजप्रदः पिताः**—बीज देनेवाला, बीज बोनेवाला, गर्भाधान करनेवाला पिता मैं हूँ, और यह महद्ब्रह्म जो है-यह प्रकृति है।

तो **भूतभावोद्भवकरः**का अर्थ क्या है? कि अलग-अलग जो भूत हैं—मनुष्य, पशु, पक्षी—ये भिन्न-भिन्न आकृति वाले, उनका जो अलग-अलग भाव उत्पन्न होता है, अलग-अलग जातियाँ चलती है—चींटी तकके भी, सबके परमपिता परमात्मा ही हैं। उन्हींके द्वारा चिदाभाससे सम्पन्न होकर चींटीका शरीर बना, पशुका शरीर बना, पक्षीका शरीर बना, मनुष्यका शरीर बना। ये जगत्‌में जितने उद्भिज हैं—वृक्ष लतादि इनका भी तो बीज होता है न! इनको भी

प्रकृतिमें भिन्न-भिन्न शरीर मिलते हैं। अंगूर है, आम है, अनार है; ये अलग-अलग क्यों पैदा होते हैं? इनका मूल बीज कहाँसे आया? कि परमात्मासे। और कहाँ आया? कि प्रकृतिमें आया। वह बीज क्या है? कि चिदाभास-रूप बीजका जो विसर्ग है, वही भिन्न-भिन्न प्राणियोंके शरीरकी उत्पत्तिका हेतु है। इसलिए **भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः**। भगवान् ही पिता है, भगवान् ही पुत्र हैं, भगवान् ही वीर्य है और भगवान् ही माता है। वह माता कहाँसे आयी? इस बातको बताते हैं—

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥ ४॥

अब वे माताका भी पता बताते हैं। पिता तो स्वयं हैं ही।

एक कर्ममीमांसा नामक ग्रन्थ है। जैमिनीय दर्शनको तो पूर्वमीमांसा दर्शन बोलते हैं; एक भरद्वाजका है, उसको कर्ममीमांसा दर्शन बोलते हैं। अब यह कर्मसंज्ञितः, कर्म चाखिलम्-अखिल कर्म क्या है? इस प्रश्नको कर्ममीमांसा दर्शन, भारद्वाजियमें उठाया गया है। तो वहाँ बोले कि निर्गुण ब्रह्म तो अपनी जगहपर है; वह तो महाराज, अविचल है, अचल है, अटल है। वह तो **यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति**—उसको पानेके लिए तो दूसरे लोग भी ब्रह्मचर्य धारण करते हैं; यह आगे इसी अध्यायमें आया है। निर्गुण ब्रह्म तो महाराज, ब्रह्मचर्यं चरन्ति वालोंके लिए मिलता है-माने वानप्रस्थाश्रममें, संन्यास आश्रममें, ब्रह्मचर्याश्रममें संसारके भोग-रागका परित्यागकरके विरक्त होकर जो रहते हैं, उनको मिलता है। जैसे बड़े लोग कहते हैं न, कि हम मामूली आदमीसे नहीं मिलेंगे और बड़े आदमीसे मिलेंगे, वैसे ब्रह्म तो ब्रह्मसे ही मिलता है, कूटस्थसे ही कूटस्थ मिलता है, सत्से ही सत् मिलता है, चेतनसे ही चेतन मिलता है; आनन्दसे ही आनन्द मिलता है। रोने वालेको निर्गुण ब्रह्म नहीं मिलता है; मरने वालेको नहीं मिलता है, बेवकूफको नहीं मिलता है—चेतनको मिलता है, कूटस्थ को मिलता है। शुद्ध बुद्धिमें दुःख नहीं है। जो ज्ञाता है, उसको मिलता है।

अब सगुण ब्रह्म बड़ा कृपालु है। वह तो सबसे मिलनेको तैयार है। वह मरनेवाले को भी मिलता है, वह बेवकूफको भी मिलता है। कोई रोवे, तो रोने वालेको भी मिलता है। उसके अन्दर दया है, माया है। अगर कोई बिल्कुल भटक गया हो, तो कभी-कभी वह घोर जंगलमें आकर रास्ता अपने-आप बता

देता है। किसीको भोजन न मिलता हो, तो कभी-कभी आकर वह खिला देता है. निर्गुण ब्रह्म तो अचल है, वह न किसीको खिलाने आता, न राह बताने आता है। वह तो अपने सिंहासनपर ज्यों-का-त्यों विराजमान है। महाराज, सगुण ब्रह्मसे प्रकृतिका संसर्ग होता है सन्तानोत्पत्तिके लिए! यह बच्चा-कच्चा पैदा करनेका जो काम है, वह सगुण ब्रह्म ही करता है, निर्गुण ब्रह्म नहीं। इसीलिए जो लोग सद्गृहस्थीके प्रेमी होते है, वे लोग सगुण ब्रह्मसे ही ज्यादा प्रेम करते हैं। निर्गुनियाके लिए तो महाराज, लोग चोटी भी कटा देते हैं, जनेऊभी निकाल देते हैं। वे डरते हैं कि कहीं सगुण ब्रह्मने पीछेसे चोटी पकड़के खींच ली, तो हम निर्गुणपर नहीं पहुँचेंगे। कहीं जनेऊ हाथ लग गया, कहीं लंगोटी हाथ लग गयी, कहीं चोटी हाथ लग गयी, तो यह सगुण ब्रह्म खींचेगा; निर्गुण ब्रह्मसे एक नहीं होने देगा। निर्गुण होना पड़ता है न-निर्ग्रन्थ पोथी-पन्ना भी नहीं। क्यों? क्योंकि पोथी-पन्ना रहे तो कोई बात उसमें ऐसी लिखी निकल आये, कि फिर लौट आये।

पोथी पन्ना फेंकके विचरे हो निर्भार।

यह निर्गुण ब्रह्म जो है, उसमें गुण-संसर्ग नहीं है, ग्रन्थि-संसर्ग नहीं है, क्योंकि जहाँ-जहाँ गुण होता है, वहँ वहाँ ग्रन्थि भी होती है। जहाँ-जहाँ गुण माने सूत-होगा, रस्सी होगी, तो वहाँ-वहाँ गाँठ भी होगी, बन्धन भी होगा।

अब यह सगुण ब्रह्म जो है, यह प्रकृतिसे करता है संसर्ग। प्रकृति जो है, वह पहले तो जड़ावस्थामें रहती है, सुषुप्तावस्थामें रहती है, फिर जागती है। जागनेके बाद बुद्धि-रूप अवस्था अपना श्रेष्ठरूप जो है उसको प्राप्त करती है। अब उस बुद्धिके द्वारा जब सगुण ईश्वरका संसर्ग होता है, तब यह सृष्टि बनती है—माने अपने हृदयमें भी तुम्हें नयी सृष्टि बनानी हो, नया शरीर बनाना हो, नया निर्माण करना हो, तो अपने हृदयको ईश्वरके साथ जोड़ो। तब वह आकरके तुम्हारे हृदयको स्वच्छ बनाकर, सफाई करके फिर वह निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य बनाता है। यह जो प्रकृतिकी भूतभावोद्भव घनी अवस्था है। वह प्रकृतिका महद् ब्रह्माकार रूपमें परिणाम है। जब सृष्टि-कार्यके लिए किंचित् प्रकृति उन्मुख होती है, तब जो बुद्धिका उदय होता है, उस बुद्धिमें जो सगुण ब्रह्मका सम्बन्ध है—ईश्वर अपना दान, कर देता है, ईश्वर आकर मिल जाता है उसमें, उससे यह भिन्न-भिन्न प्राणियोंके शरीरकी उत्पत्ति होती है।

अब यह **अधिभूत** क्या है? बोले—**अधिभूतं क्षरो भावः**। पंद्रहवें अध्याय

क्षरोक्षर करके वर्णन है न; और तेरहवें अध्यायमें है क्षेत्र—**इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।** और **द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।**

तेरहवें अध्यायमें तो इसको बताया नपुंसक—'क्षेत्रम्' और पन्द्रहवें अध्यायमें बताया 'क्षर पुरुष'—'पुंल्लिंग, और सातवें अध्यायमें बताया 'अपरा प्रकृति'

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

यह जो क्षर भाव है—क्षरणशील, बदलनेवाला—यह मीठा नहीं है, खारा है, भला! इसी क्षरसे क्षार हो जाता है। यह गलता है। जैसे कोई चीज न गलती हो न—यह नारियलका पौधा जब लगाते हैं, तो थोड़ा उसके नीचे दस सेर-बीस सेर नमक रख देते है। क्योंकि नारियलके ऊपरके छिलके और भीतरकी खोली को नमक गला देते हैं। उसका जो बीज है, उसका पौधा बड़ा हो जाता है। तो गलानेके जो काम आता है, उसीको तो क्षार बोलते हैं। यह जो संसारमें क्षरण होता है, यह खारी चीज है। यह मीठी नहीं है, इसको मीठी समझके मत खाना। यह शक्कर नहीं है, यह नमक है। थोड़ा बहुत स्वाद बनानेके लिए नमक डाला जाता है चीजमें, और मीठा तो भरपेट भी खा लिया जाता है। कुएँका पानी भरपेट पी लो, लेकिन समुद्रका पानी भरपेट पीनेका नहीं होता है।

यह क्षर है—कहनेका अभिप्राय यह हुआ कि यह क्षरणशील है। यह खारा है, यह क्षरित हो जानेवाला है। इसका क्षरण होता है। देहातमें जो मिट्टी होती है, उसीकी दीवार होती है। उसमें लोना लग जाता है तो वह दीवार गल जाती है, धूल-धूल होकर गिर जाती है। इसी प्रकार जो क्षर भाव है, वह गिरनेवाला है। कहाँ रहता है यह? बोले—**अधिभूतं** यह भूतोंके शरीरमें रहता है। यह खारापन जो है, भूतेषु भूतेषु अधिभूतं सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें यह क्षारपना लगा हुआ है। अच्छा, इस प्रसंगको फिर सुनावेंगे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥ ४॥

भगवान् कृष्णने कहा था—**साधिभूताधिदैवं मां**—मुझे अधिभूत और अधिदैवके साथ जो जान लेता है, और अधियज्ञके साथ जान लेता है, वह मृत्युके समय भी मुझे जान लेता है, और मुझे प्राप्त होता है, क्योंकि फिर उसका मन मुझमें लग जाता है। तो अधिदैवके साथ जानना तो जब पहले यह जानें कि अधिभूत क्या होता है, अधियज्ञ क्या होता है—तब यह समझें कि भगवान्को साधिदैव, साधिभूत, साधियज्ञ कैसे जाना जाता है? इसलिए अर्जुनने ये प्रश्न किये कि अधिभूत क्या है, अधिदैव क्या है, अधियज्ञ क्या है। अब इसके उत्तरमें भगवान् यह बात कह रहे हैं कि **अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।**

गीताके श्लोक तो सब लोग पढ़ते हैं। इसका अर्थ भी जानते हैं। कभी-कभी हमारे पास भागवत पढ़नेके लिए लोग आते हैं, तो कहते हैं—महाराज, आप श्लोकका पदच्छेद करो, फिर अन्वय करो, फिर उसका पर्याय बताओ, फिर उसको समझाओ। हम कहते हैं, यह बात पढ़नेके लिए किसी पाठशालामें जाओ और पण्डितसे पहले उसका पदच्छेद और उसका पदार्थ ठीक-ठीक पढ़कर आओ, तब हमसे श्लोकका तात्पर्य-भाव सुनना हो तो सुनो। अब हम उसका पदच्छेद, अन्वय, पदार्थ अलग-अलग पढ़ावें, तो उसका नाम प्रवचन नहीं होता है, उसका नाम तो पाठ होता है। पाठ देना दूसरी चीज है और उसका प्रवचन करना दूसरी चीज है।

अधिभूतं च किं प्रोक्तम्। अक्षरो भावः अधिभूतं—जो संसारमें क्षर भाव दिखायी पड़ रहा है—क्षर माने क्षरणशील, स्रवित होनावाला, बहनेवाला, जो एक रूपमें सदा न रहे, बदल जाये-उसका नाम है क्षर भाव। क्षरणशील कोई भी वस्तु हो, उसका नाम है क्षर भाव।

बड़े प्रयत्नसे माटीको घड़ेके रूपमें गढ़ते हैं। घड़ेका आकार बनाया उसमें माटी भर दी। लेकिन थोड़े दिनोंके बाद धीरे-धीरे उसमें जो माटी है, वह घड़ेकी आकृतिको छोड़ देगी। अगर सृष्टिका कोई पुरुष चाहे कि हम घटकी आकृतिमें,

घड़ेकी शक्लसूरतमें माटीको बाँधकर रख लेंगे, तो वह नहीं रख सकता। न मिट्टीमें घड़ेका आकार सदा रह सकता है और न तो घड़ेमें मिट्टी सदा रह सकती है। वह तो धीरे-धीरे उस आकृतिका परित्याग कर ही देगी। संसारमें जैसे बचपन है, यह क्षरभाव है कि नहीं? आज उसकी याद करके पछताते हैं! जवानी है, बुढ़ापा है; मृत्यु है—कि यह क्षर भाव है। हमेशा जो मरा, सो मर ही गया—ऐसा नहीं है। फिर वह-**जातस्य ही ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**

जो पैदा होता है, वह मरता है और जो मरता है, वह पैदा होता है। इसमें न जन्म ध्रुव है और न मृत्यु ध्रुव है। यह क्षर भाव है। तो जिस-जिस आकृतिका, नामका, रूपका, कर्मका जन्म और मरण होता है, उसको क्षरभाव बोलते हैं। इसीका नाम **अधिभूत** है। पृथिवीसे लेकरके **भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।** अथवा **क्षेत्र** अथवा **अपरा प्रकृति** यह सब जो है, यह क्षर है—**क्षरः सर्वाणि भूतानि। भूतं प्राणिजातं अधिकृत्य भवति इति अधिभूतं।** जो सम्पूर्ण प्राणियोंमें रहता है, उसका नाम अधिभूत है।

अब वर्णन करते हैं कि भाई, यह अधिदैव कौन है? **पुरुषश्चाधिदैवतम्। दैवतेषु अधिकृत्य। दैवाणि अधिकृत्य तिष्ठति इति अधिदैवतम्।** सम्पूर्ण देवताओंको अपने काबूमें कर-करके जो रहता है, उसका नाम है अधिदैवं। वह क्या है? तो बोले कि सूर्यमण्डलमें रहनेवाला अधिदैवत पुरुष है। अथवा आदि पुरुष जो सृष्टिमें प्रारम्भ हुआ, उसीकी संतान यह सारी सृष्टि है, इसीलिए इसको 'आदमी' बोलते हैं—आदमी नहीं, आदम बाबाकी संतान नहीं, आदिम पुरुषकी आदिमी। आदिम माने सबसे पहला। यह 'आदिमी' संस्कृतका शब्द हुआ, यह फारसीका, उर्दूका नहीं है। आदिम पुरुषकी संतानका नाम है आदमी। उसी आदिम पुरुषको **पुरुषश्चाधिदैवतम्**—अधिदैव कहा।

एक तो यूँ समझो, कि हमारे एक शरीरमें बहुत देवता हैं, आँखमें एक देवता सूर्य हैं, कानमें दिग्देवता हैं, त्वचामें वायुदेवता हैं, जिह्वामें—स्वाद लेनेवालीमें वरुण देवता हैं, और बोलने वालीमें अग्नि देवता हैं, नाकमें अश्विनीकुमार देवता हैं, हाथमें इन्द्र देवता हैं, पाँवमें उपेन्द्र देवता हैं। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें अलग-अलग इन्द्रियमें देवता रहता है। अब इसी तरह मनमें चन्द्रमा भी होता है; बुद्धिमें ब्रह्मा देवता हैं। सारे शरीरमें नखसे लेकर शिखातक ऐसा कोई स्थान नहीं है, जिसमें कोई-न-कोई देवता न बैठा हो। एक महादेवता भी हैं। वह क्या है? कि जिसमें इन सब देवताओंका अलगाव नहीं रहता; जो इन सब देवताओंका पुंजीभूत रूप है।

उसीमें-से ये सब देवता निकलते हैं और उसीमें समा जाते हैं। उसका नाम ब्रह्मा देवता हुआ। बोले—ब्रह्मा तो एक ब्रह्माण्डमें होता है। ब्रह्माजी छोटे ही हैं। ये मिट्टी, पानी, आग, हवा, आकाश और अहंकार तत्त्व-महातत्त्व इस सबको दस गुणा करनेपर एक ब्रह्माण्ड अपने आवरणों सहित होता है, ये अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड प्रकृतिमें पैदा होते हैं और नष्ट होते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक-एक ब्रह्मा-विष्णु होते हैं; और ये ब्रह्माण्ड—ये गोल गोल ब्रह्माण्ड जिनके अण्डे हैं जैसे मुर्गी बहुत सारे अण्डे देती है वैसे समझो हिरण्यगर्भ नामका एक पुरुष है और उसने ब्रह्माण्ड रूपी अनन्त कोटि अण्डे दे रखे हैं। प्रत्येक अण्डेमें अलग-अलग ब्रह्मा, अलग-अलग विष्णु, अलग-अलग रुद्र हैं। ये सब ब्रह्माण्डोंमें अलग-अलग हैं। और एक वह पुरुष है, जिसका यह अण्डा है। तो वह जो पुरुष है, उसको बोलते हैं हिरण्यगर्भ।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

एक ब्रह्माण्डमें रहनेवाला जो ब्रह्मा है, उपासना करके यदि उसके लोकमें पहुँचोगे, तो जब उस ब्रह्माण्डका प्राकृत लय होगा, तब वह ब्रह्मा भी परमात्मामें लय हो जायेगा। फिर जब ब्रह्माण्ड बनेगा, तो फिर उसको सृष्टिमें आना पड़ेगा। तो इन सब-के-सब ब्रह्मा और ब्रह्माण्डोंका पुनरावर्तन होता है; और हिरण्यगर्भमें जब पहुँच जाते हैं, तो वहाँ हिरण्यगर्भका जब प्राकृत लय होता है—हिरण्यगर्भके साथ मुक्ति हो जाती है। जो हिरण्यगर्भके लोकमें जाता है, वह मुक्त हो जाता है। तो यह जो हिरण्यगर्भ नामका पुरुष है—**स वै शरीरी प्रथमा**-वह पहला शरीरी है। **स वै पुरुष उच्यते**—उसीको पुरुष कहते हैं और **आकर्ता स भूतानां**—वही सम्पूर्ण प्राणियोंका आप कर्ता है, आदिम है। वही सृष्टिकी पूर्वावस्थामें विद्यमान था। तोयह जो पुरुष है—हिरण्यगर्भ पुरुष, जो समष्टिरूप है स्वरूपसे, और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें स्थित जो व्यक्ति पुरुष हैं, इनकी इन्द्रियोंको अनुग्रह करनेवाले जो देवता हैं, उन सबको अनुगृहीत करनेवाला आदि पुरुष समूची सृष्टिमें भरपूर है। वेदान्ती लोग उसीको एक जीव बोलते हैं। तो वह जो पुरुष है, उसीका नाम है अधिदैवत।

अब यह अधिभूत क्या है? और यह अधिदैव क्या है? देखो, गीतामें ही जब पढ़ोगे, तो यह बात मालूम पड़ेगी—**क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।** सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मैं हूँ। तो क्षेत्रज्ञ मैं हूँ—इतना नहीं कहा, **क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि** क्षेत्रज्ञ विद्धि मुझे समझो। इसका अर्थ यह हुआ कि क्षेत्रमें भी मैं हूँ, क्षेत्रज्ञ भी मैं हूँ। वह तो कहो कि सोहन भी मेरा ही आदमी है, तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि मोहन तो मेरा आदमी है ही, सोहन भी मेरा ही आदमी है। इसलिए जब भगवान्

कहते हैं कि क्षेत्रज्ञ भी मैं ही हूँ, तो उसका अर्थ है कि क्षेत्र भी भगवान् और क्षेत्रज्ञ भी भगवान्। इसलिए अधिभूतके रूपमें यह जो सृष्टि दिखायी पड़ रही है, यह भी परमात्माका ही स्वरूप है, और जो देवताओंके रूपमें सृष्टि दिखायी पड़ रही है, उन देवताओंके रूपमें भी परमात्मा ही दिखायी पड़ रहा है, लेकिन लोग पहचानते नहीं हैं उसको—**न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातः च्यवन्ति ते**। देवताकी पूजा करते हैं, तो देवता समझकर उसकी पूजा करते हैं, उसको परमात्माके रूपमें पहचानकर उसकी पूजा नहीं करते।

पहले एक बार विवेक करो, इन्द्र देवता क्या है? इन्द्र देवताका विवेक करोगे, तो परमात्माके अतिरिक्त इन्द्रमें न सत्ता है, न ज्ञान है, न आनन्द है। इन्द्रका नाम-रूप मिथ्या है, केवल परमात्मा ही सत्य है। लेकिन इन्द्रकी पूजा करनेवाला परमात्माको नहीं जानता, इन्द्रकी पूजा करता है। इसी प्रकार समझो, एक आदमी मूर्ति लेकर पूजा करता है, तो वह अगर यह समझता है, कि यह लोहेकी मूर्ति है, यह पीतलकी मूर्ति है, यह सोनेकी, चाँदीकी मूर्ति है, और सोना चाँदी समझकर उसकी पूजा करता है, तो उसको ईश्वरकी पूजासे जो आनन्द आता है, वह आनन्द आवेगा क्या? वह आनन्द नहीं आवेगा। हमारे वृन्दावनमें कभी-कभी होता है, कि आज दो लाख रुपयेवाला झूला निकलनेवाला है। जो लोग कभी दर्शन करने नहीं जाते हैं, वे उस दिन जाते हैं, दर्शन करने। वे तो लाखका झूला देखने जाते हैं कि बिहारीजीको देखने जाते हैं? क्योंकि बिहारीजी तो रोज ही वाले रहते हैं।

अच्छा, गये! दर्शन किया। दर्शन करके लौटे। भाई, क्या देखा? बोले, बिहारीजी-का दर्शन कर आये। झूलेका दर्शन कर आये। आज बिहारीजीने कैसी पोशाक पहनी थी। उनकी पोशाक आज पीली थी, काली थी कि लाल थी? कि सफेद थी? कि यह तो मैंने नहीं देखा!

क्या देखा?

बोले—झूला बहुत बढ़िया बना था। वह देखा। वे झूला देखकर लौट आये। झूलेमें जो परमात्मा है, वह उन्हें नहीं दिखायी दिया। भाई, सोनेमें भी परमात्मा है। सोनेका तो बड़ा भारी दृष्टान्त आया है श्रुतियोंमें, कि स्वर्णरूप परमात्मा है। परन्तु उसमें परमात्माको पहचानते कहाँ हैं? उसको तो चाँदीसे अच्छी धातु समझकर लोग संग्रह करते हैं। उसमें परमात्माको कहाँ देखते हैं?

वह स्वर्ण तो वह क्षर भाव है, इसलिए अधिभूत है। अब उस रूपमें

अगर तुम उसका संग्रह करोगे, तो वह अधिभूतका संग्रह करोगे। वह परमात्माका संग्रह नहीं होगा। लेकिन यदि परमात्माको पहचान लोगे तो लोहेमें वही, चाँदीमें वही, सोनेमें वही, मिट्टीमें वही, जलमें वही! सोना और माटीपर नजर मत डालो, नजर इस बातपर डालो कि वह भगवान् है। यह पहचाननेकी बात है। यदि भगवान्पर नजर होगी, तो मूर्तिकी पूजा भगवान्की पूजा हो जायेगी। बोले—अरे, क्या समझते हो! तुम्हारे घरमें पीतलकी बनी मूर्ति है और मेरे घरमें सोनेकी बनी मूर्ति है। मेरे भगवान्का मुकाबला तुम्हारे भगवान् कर सकते हैं? बोले—भाई, तुम्हारे भगवान् सोनेके होंगे। हमारे भगवान् तो भगवान् हैं, न वे पीतलके हैं, न वे सोनेके हैं। नजर भगवान्पर होनी चाहिए। मूर्तिकी जो धातु है न, वह अधिभूत है, वह एक क्षर भाव है। और उसमें जो भगवान् है, वह क्षर भाव नहीं, अक्षर भाव है, अविनाशी भाव है।

तो **साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः**—उस अधिभूतमें भगवान्को देखो। अब तुम्हारे सामने देवता है, यह सूर्य है, आँखका देवता प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है, अग्नि जो है वाणीका देवता—प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है, चन्द्रमा मनका देवता प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है। बोले—अग्निकी पूजा करते हैं, चन्द्रमाकी पूजा करते हैं। स्त्रियाँ चन्द्रमाको अर्घ्य देती हैं चतुर्थीको! लोग चन्द्रमाकी पूजा करते हैं, सूर्य को अर्घ्य देते हैं। यह तत् तत् देवताकी पूजा हुई। रातमें चन्द्रमाकी पूजा कर ली, दिन में सूर्य की पूजा करली, होम करना हुआ, तो अग्निकी पूजा कर ली। भाई, तुम अग्निकी पूजा करते हो, चन्द्रमा देवताकी पूजा करते हो, सूर्य देवताकी पूजा करते हो कि भगवान्की पूजा करते हो? तो देखो, अगर भगवान्की पूजा करोगे उसको पहचान करके, तब तो **साधिभूताधिदैवं माम्**। अब अधिदैवमें भगवान् दीख रहा है, और अधिदैवके सहित भगवान्की पूजा करो—माने अधिदैव तो उनके परिकर हैं। मुख्यता जो है, वह परिकरमें नहीं आती। पूजा तो आवरण-देवताकी भी होती है। वृक्षकी पूजा करनी हो, तो आवरण देवता की भी कर लेते हैं। रामचन्द्रकी पूजा हो तो उसमें अंगद, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्—ये जो आवरण देवता हैं, उनकी भी पूजा होती है, लेकिन मुख्य कर्णिकापर, मुख्य केन्द्रपर रामकी पूजा होती है, अंगदकी, हनुमान्की पूजा नहीं होती। जो तुम्हारे घरमें सोने और पीतलकी मूर्ति है, वह अपने भीतर भगवान्को टिकाये हुए है। पूजा मुख्य रूपसे भगवान्की है, वह पीतल और सोनेकी मूर्तिकी नहीं। मूर्ति तो बोलती है, मूर्ति

तो खाती है, मूर्ति तो चलती है। तुम्हारे भगवान् तो अभी तुमसे रूठे हुए हैं, इसलिए बोलते नहीं। एक दिन जिद करो कि हे भगवान्, तुमको खाना पड़ेगा। ऐसे नहीं, कि थोड़ी देर जिद की और नहीं खाया तो बोले, कि छोड़ो, कुछ नहीं। जब अपनेको भूख लगी, तो बोले कि अब ये पत्थरके भगवान् कहीं खाते हैं ? छोड़ो इसको। ऐसे नहीं। वेदोंमें वर्णन आया है कि मूर्तियाँ हँसती हैं, मूर्तियाँ चलती हैं, मूर्तियाँ बोलती हैं। उनमें भी भगवान् बैठे हुए हैं।

अधिभूत और अधिदैवके सहित भगवान्को जाना। यह अधिदैव क्या है? हमारे शरीरमें, और ब्रह्माण्डमें देवता हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमें जितने शरीर हैं, उतने देवता हैं। और सबका मूल पुरुष जो है, यह प्राणियोंका वंश वृक्ष जहाँसे चला है, देवता लोग जहाँसे निकले हैं, पशु-पक्षी-मनुष्य जहाँसे निकले हैं—उस हिरण्यगर्भ पुरुषको ही अधिदैवत बोलते हैं।

पुरुषको पुरुष क्यों कहते हैं? बोले—परमात्मा पुरुषाकार ही है। एक बार मैंने किसी पुस्तकमें पढ़ा था, कि एक बार बानरोंकी सभा हुई। उसमें निश्चय हुआ कि ईश्वरकी शक्ल कैसी है। तो बोले-भाई, सारी सृष्टि ईश्वरसे हुई है। हम सब जितने बानर हैं, ईश्वरसे ही पैदा हुए है। तो अगर ईश्वरकी शक्ल बानर सरीखी न होती, तो हम कैसे पैदा होते? जो सब बानरोंका मूल पुरुष बानर है, वह ईश्वर है। फिर भालुओंकी सभा हुई, पंचायत हुई। तो बोले—अगर ईश्वर भालू न होता, तो हम सब भालू कैसे होते? जो सबसे पहला पुरुष है, वह भालू है। इसी प्रकार सिंहोंकी सभा हुई। सिंहोंने कहा, हम सबका जो मूल पुरुष है, वह ईश्वर है। तो नृसिंह भगवान्ने सिंहका वंश चलाया है। हयग्रीव भगवान्ने घोड़ोंका वंश चलाया है। कूर्म भगवान्ने कछुओंका वंश चलाया है। मत्स्य भगवान्ने मछलियोंका वंश चलाया है। वाराह भगवान्ने वाराहोंका वंश चलाया है। तो तत्-तद् रूपमें होकरके भगवान् ही सबका वंश चलाते हैं।

अब अखिरी जो भगवान्का रूप है, वह क्या है? वह सिंह है, वाराह है, कूर्म है, कि मत्स्य है? बोले—एक ऐसा रूप है, जिसमें ये सब मिले हुए हैं, वाराह देखो तो वाराह, सिंह देखो तो सिंह, मछली देखो तो मछली, बानर देखो तो बानर! बोले अच्छा, यह तो दृष्टि लग गयी न इसमें। सबकी सम्मिलित दृष्टिवाला जो रूप है, उसका नाम हिरण्यगर्भ है। इन सबमें रह कर जो सबसे न्यारा है, उसका नाम ईश्वर होता है। हिरण्यगर्भ क्या है? कि यह समष्टि बीजात्मा है, और ईश्वर जो है, वह समष्टिसे उपहित चेतन है, और वेदान्ती जिसको ब्रह्म कहते हैं, वह शुद्ध चेतन,

अखण्ड चेतन, उपाधिरहित निरुपाधिक चेतन है। निरुपाधिक चेतनका नाम ब्रह्म है, और समष्टिसे उपहित चेतनका नाम अविच्छिन्न चेतनका नाम ईश्वर है। और समष्टि आत्मा समष्टिमें आभास रूपसे आकर, घुलमिल जो आदि पुरुष बने हुए हैं, उनका नाम हिरण्यगर्भ है। तो—

यत् पूर्वो अस्मात् सर्वस्मात् सर्वान् पाप्मनाः एतत् तस्मात् पुरुषः।

पुरुषको पुरुष क्यों कहते हैं? सबसे पहले वह था, और उसमें पाप और पुण्यका कोई विभाग नहीं था। सृष्टिके प्रारम्भमें जो सब पाप-ताप मिटाकर बैठा हुआ था—उसका नाम पुरुष है। सब शरीर-रूप पुरियोंमें जो निवास करता है, उसका नाम पुरुष है। सब शरीरोंमें सोता है, इसलिए उसका नाम पुरुष है। **पूर्णत्वात् पुरुषः** पूर्ण होनेके कारण उसका नाम पुरुष है। उसको अधिदैवत बोलते हैं।

अब लो, **पुरुषश्चाधिदैवतम्। अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर।**

अर्जुनके लिए सम्बोधन है भगवान्‌का। वे तो भगवान्‌को सुरक्षा ही देते हैं- **देहभृतां वर**। भगवान्‌को कहो, कि हे प्रभु! तुम पुरुषोत्तम हो। भगवान् भी बोलते हैं कि तुम पुरुषोत्तम हो। बिलकुल वही आवाज लौटती है। गीतामें, भागवतमें कई जगह ऐसा प्रसंग आया है कि जो संबोधन संबोधन करनेवालेने भगवान्‌को दिया, भगवान्‌ने उससे मिलता-जुलता ही सम्बोधन सम्बोधन करने वालेको दिया।

लोग पहले ऋषिकेशके नीचे उधर गंगा किनारे जाते थे। मद्रासी लोग आते थे स्नान-दर्शनके लिए शेष धाराके पास। वे लोग हिन्दी जानते नहीं थे। उनको पंडित लोग जो थोड़ी दक्षिणकी भाषा जानते थे—समझाते कि वहाँ एक देवता रहता है पहाड़में। उसको पूछ लो, कि तुम आज क्या पसन्द करोगे खाना तो वह बता देता है, तो उसको उसी चीजका भोग लगाया जाता है। बड़े जोरसे चिल्लाते- लड्डू लोगे कि पेड़ा? तो उधरसे आवाज आती पेड़ा। फिर दूसरा कहता महाराज, हमारे लिए भी पूछो; हमसे भगवान् क्या लेना चाहते हैं आज? तो बोले—पेड़ा लोगे कि लड्डू? तो आवाज आती उधरसे—कि लड्डू। कि भाई, इनसे पेड़ा लेंगे, तुमसे लड्डू लेंगे। तो ईश्वरके प्रति हम लोग जो बोलते हैं न—भागवतमें सिद्धान्त रूपसे इसका प्रतिपादन है—कि उसीका प्रतिबिम्ब अपनेमें दिखता है—

यद् यद् जनो भगवते विदधीत मानं
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः।

एक आदमी शीशेमें अपनेको देख रहा था। उसके मनमें आया कि यह शीशेमें जो हमारी तस्वीर दिख रही है, उसके गलेमें माला होनी चाहिए। अब वह

शीशेमें माला डालने लगा, कि वह गलेमें पड़ जाये; तो न पड़े। किसी समझदारसे पूछा कि हम चाहते हैं, कि तस्वीर जो हमारी शीशेमें दिख रही है, उसमें माला पड़े। उसने कहा—अपने गलेमें माला डाल लो, तो तस्वीरके गलेमें जो छाया दिख रही है, प्रतिबिम्ब दिख रहा है शीशेमें, उसके गलेमें माला पड़ी दिखेगी। बोले—कि जीव जितने हैं, ये सब-के-सब भगवान्‌के प्रतिबिम्ब हैं-**विश्वं दर्पणदृश्यमान-नगरीतुल्यं निजान्तर्गतं**—यह दर्पणमें दृश्यमान नगरीके समान सम्पूर्ण विश्वसृष्टि दिख रही है। मायाके दर्पणमें किसकी तस्वीर दिख रही है? किसका प्रतिबिम्ब दिख रहा है? बोले—परमात्माका प्रतिबिम्ब दीख रहा है। अपने गलेमें तुमको जो देखना हो, उसको भगवान्‌के गलेमें डाल दो। वह माला जो भगवान्‌के गलेमें पड़ेगी, तो दिखेगी तुम्हारे गलेमें, क्योंकि तुम तो भगवान्‌के प्रतिबिम्ब हो। प्रह्लादके प्रसंगमें सातवें स्कन्धमें यह बात आयी है—

यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रति मुखस्य यथा मुखश्रीः।

मनुष्य भगवान्‌की जैसी पूजा करता है, वह पूजा अपने लिए हो जाती है-**प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः।** जैसे अपने मुँहको अगर चिकना करके देखोगे, तो शीशेमें तुम्हारा मुँह चिकना दिखेगा, और अपने मुँहको गन्दा रखो और शीशेमें चिकना देखना चाहो, तो शीशा चिकना करनेसे तुम्हारा मुँह चिकना नहीं दिखेगा। अपना मुँह चिकना होना चाहिए। तुम कहो—हे प्रभु, तुम पुरुषोत्तम हो, तो भगवान् कहेंगे कि भाई, तुम भी पुरुषोत्तम हो।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिस्वजाते—हम लोग तो एक वृक्षमें रहने-वाले दोनों ही सखा हैं। **हम तुम एक पिण्डके सखा, रूठे नाहिन बने।** रूठनेसे तो नहीं बनेगी न बात! इसलिए आओ, मिल जायें। अच्छा महाराज, तुम तो पुरुषोत्तम हो, कैसे मिलें? कि तुम **देहभृतां वर** हो, माने **देहान्विभ्रतीति देहभृतः सर्वे प्राणिनस्तेषामेव वरः श्रेष्ठः।** जितने देहधारी हैं जीव, उनमें तुम श्रेष्ठ हो—वर माने वरणीय। वरणीय कहनेका अभिप्राय क्या है? कि जैसे कोई कहे कि हमारे बेटा होवे, तो अर्जुन सरीखा बेटा होवे—ऐसे! अर्जुनकी दो प्रतिज्ञा हैं जीवनमें। क्या? कि किसीके सामने दीन होकर हाथ नहीं फैलाना, और किसीके डरसे भागना नहीं—**अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनं।**

बाप चाहे कि हमारा बेटा हो, तो अर्जुन सरीखा, और कोई कहे कि हमारा जीवन खूब बढ़िया बन जावे, आदर्श हो जावे, तो बोले—हमारा जीवन बने, तो अर्जुन सरीखा बने, जिसके जीवन-रथके सारथि स्वयं नारायण हों।

माने हम अपनी वासनाके अनुसार न चलें, भगवान्‌की प्रेरणा, भगवान्‌के निर्देश, भगवान्‌के संकेतके अनुसार चलें—**देहेभृतां वर**। लड़की कहे कि हमारा ब्याह होना चाहिए; बोले-कैसा वर चाहिए तुमको? कि वर हो, तो अर्जुन सरीखा, श्रीकृष्णका मित्र, श्रीकृष्णका भक्त! यहाँ तो 'वर' शब्द ही है भाई-देहभृतां वर जिसको सब अपना वर बनानेके लिए तैयार! अर्जुन जहाँ जाये, वहीं गड़बड़ी हो। अमेरिकामें गया महाराज ऐसा वर्णन आता है—तो वहाँ उर्वशी मिल गयी, बभ्रुवाहन पैदा हुआ। द्वारकामें गया, तो सुभद्राको ले आया; श्रीकृष्णकी बहनने कहा, कि मैं ब्याह करूँगी, तो अर्जुनसे। श्रीकृष्ण कहते हैं, बाबा, हमारी बहनतकने तो तुम्हींको पसन्द किया। अब संसारमें कौन ऐसी अभिमानी लड़की होगी, जो तुमको अपना वरणीय वर न बनावे।

अब देहभृतांको दोनों तरफ कर लो। दोनों तरफ कैसे? कि **देहे देहेभृतां वर**—देहरी दीपक न्यायसे **देहभृतां देहे-हे वर देहभृतां देहे**—यह जो देहधारियोंका शरीर है, इसमें। बोले-महाराज, एक बात इसमें छूटी हुई है। पाँच प्रश्न हमारे हैं। आखिरीका तो जवाब पीछे देना, पर अभी छह बातोंमें-से एक तो छूटी हुई है। वह क्या है?

कि अधियज्ञ कौन है? **अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहे देहभृतां वर।**

भगवान्‌ने अर्जुनकी छातीपर हाथ रख दिया **अधियज्ञोऽहमेवात्र देह**—यह जो तुम्हारा शरीर है न अर्जुन, इसमें! अरे, तुम्हारे दिलमें, अर्जुन! मित्र मित्र हैं, कोई संकोच थोड़े ही है। जब अर्जुनने पूछा न—'**देहेऽस्मिन् पुरुषोत्तम**'। इशारा भी तो होता है न! देखो, कोई-कोई बोलते हैं न तमिलमें, तेलगूमें! मद्रासी लोग बात करते हैं, हम लोग तो हाथ हिलाकर या सिर हिलाकर, या मुँह हिलाकर रह जाते हैं, वे हाथ-पाँव-गर्दन पर्यन्त समूचा शरीर हिलाते हैं। और जब कोई मौनी हो जाते हैं न, तो दो तोलेकी जीभ तो नहीं हिलाते हैं, और दो मनका शरीर हिला-हिलाकर बात करते हैं! पाँच सेरका सिर हिल रहा है! बोले—क्या है? बोले मौन हैं! दो तोलेकी जीभ रोकी हुई है।

अब अर्जुन ने इशारा करके पूछा था कि **अधियज्ञ कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्पुरुषोत्तम।**

हे पुरुषोत्तम! इस शरीरमें अधियज्ञ कौन है! कैसे है?

भगवान्‌ने उसकी छातीपर हाथ रख दिया—अरे तुम्हारे दिलमें अर्जुन! प्राणप्रतिष्ठा जैसे कर दे न! अर्जुनके हृदयपर हाथ रखकर भगवान्‌ने! हाथ रखनेकी

अपनी पद्धति पुरानी है। विवाहमें वर जो है, वह वधूके हृदयपर हाथ रखकर मंत्र पढ़े—ऐसा विधान है। यज्ञोपवीत संस्कारमें जब आचार्य यज्ञोपवीत संस्कार करता है, तो वहाँ स्पष्ट वर्णन है, कि ब्रह्मचारीके हृदय पर हाथ रखकर गुरु अभिमंत्रित करे, मंत्र पढ़े—

मम व्रते ते हृदयं दधामि। मम चित्तं अनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचं ऐष मनाऽधिसत्त्वं प्रजापति त्वां ऐनऽस्तु मह्यम्।

गृह्यसूत्रमें यह मंत्र है-मैं तुम्हारे हृदयको अपने व्रतमें रखता हूँ—माने हे ब्रह्मचारीजी, तुम्हारा कोई व्रत नहीं होगा, मेरा व्रत ही तुम्हारा व्रत होगा। तुम्हारे हृदयको मैं उठाकर अपने व्रतमें रखता हूँ। तुम्हारा चित्त मेरे चित्तके पीछे चले। एक मन होकर मेरी आज्ञाका पालन करना। प्रजापति ईश्वर तुम्हें मेरे लिए नियुक्त करे—माने तुम्हारा जीवन मेरे लिए होवे।

भगवान् श्रीकृष्ण गुरु रूपसे अर्जुनको बताते हैं-इशारा करते हैं—**अहमेवात्र देहे** अर्जुन, तुम्हारे हृदयमें मैं ही बैठा हुआ हूँ।

कि महाराज, मेरे हृदयमें आप कैसे हुए? आप किस रूपमें बैठे हुए हैं?

बोले-अधियज्ञ, **सर्वयज्ञाधिष्ठाता सर्वयज्ञफलदायकः**। मैं ही सम्पूर्ण यज्ञोंका स्वामी हूँ, और मैं ही सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देने वाला हूँ। **यज्ञो वै विष्णुः**—यज्ञ कौन है? कि स्वयं विष्णु है। **सर्वयज्ञाभिमानी विष्णवाख्या देवता**—सम्पूर्ण यज्ञोंको अपना यज्ञ माननेवाला विष्णु जो है वह यज्ञाभिमानी देवता है। देखो, कोई भी जो यज्ञ करेगा, तो उसमें कुछ सम्प्रदाय होगा। बिना दानके यज्ञ नहीं होगा। **अदक्षिणो हतो यज्ञः**—जिस यज्ञकी दक्षिणा नहीं है, उस यज्ञका फल नहीं मिलता है। यज्ञमें दक्षिणा जरूर होनी चाहिए-नियम है।

अच्छा! तो एक बात हुई देना पड़ेगा यज्ञमें। कुछ लेना भी पड़ेगा। लेना क्या पड़ेगा? कि उसमें प्रसाद लेना पड़ेगा, आशीर्वाद लेना पड़ेगा; उसमें भस्म लगवाना पड़ेगा। देना और लेना दोनों ही होता है यज्ञमें, और कुछ नियम रखने पड़ते हैं। ब्रह्मचर्यसे रहेंगे-उत्सर्ग है। कोई कितनी भी गाली दे, क्रोध नहीं करेंगे। अगर यज्ञ करते समय क्रोध आजाये, तो यज्ञ भ्रष्ट हो जाता है। और कभी क्रोध आजाये, तो आजाये, लेकिन यज्ञमें दीक्षित होनेके बाद क्रोध नहीं आना चाहिए—इसको उत्सर्ग बोलते हैं। कुछ नियम लेकर रहना पड़ता है।

अच्छा, कुछ तपस्या होती है। तपस्या क्या होती है? कि जबतक यज्ञ पूरा न हो, रोज-रोज तबतक भोजन मत करो, आगके सामने बैठो। तो व्रत भी होता है,

और आगकी आँच भी सहनी पड़ती है। अच्छा! मनसे देवताका ध्यान करना पड़ता है। वाणीसे मंत्रका उच्चारण करना पड़ता है-तब यज्ञ होता है।

अब इस यज्ञको उलट-पलटकर देखो, तो विष्णु भगवान् सब जगह बैठे हुए हैं। यह लेना-देना, नियम तपस्या, जो कुछ यज्ञमें हो रहा है। इतना बढ़िया काम, इतना उत्तम काम-भगवान्को छोड़कर दूसरा कौन करानेवाला है? बात यह है, कि जब यह मनुष्यकी सृष्टि हुई, उस समय यज्ञ उसके साथ कर दिया गया- **सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।** यज्ञमें कुछ देना पड़ेगा, यज्ञमें कुछ लेना पड़ेगा। अच्छा-अच्छा जो तुम्हारे पास हो, सो दो। सड़ी सुपारी देवता को—ऐसा नहीं करना। हम गाँवकी बात जानते हैं; गाँवमें दुकानपर जाते थे कि भाई, सुपारी खरीदनी है। कि क्या काम है? खानेके लिए चाहिए, कि देवतापर चढ़ानेके लिए चाहिए? चढ़ानेवाली सुपारी दो आनेमें जितनी मिलती थी, खाने वाली सुपारी चार-छह आनेमें उतनी मिलती थी। खानेके लिए अच्छी-अच्छी, और देवताके लिए सड़ी! कि नहीं, ऐसे नहीं करना चाहिए।

बोले—यह कपड़ा हमारे कामका नहीं। तब? ब्राह्मणको दे दो। अब उसमें-से पुण्य कहाँसे निकलेगा?

जो यज्ञका संकल्प है-अधियज्ञ, यह होता कैसे है? यह वस्त्र देना भी यज्ञ है। खिलाना भी यज्ञ है। मीठी आवाजसे बोलना भी यज्ञ है, प्रेमभरी आँखसे देखना भी यज्ञ है; किसीको प्रेमसे छूना भी यज्ञ है। धरतीमें हम चलते हैं न— यह पाद-विन्यास, धमाधम न बोले, किसीके कानमें न खटके ऐसे चलना भी यज्ञ है। ऐसी जगह लघु शंका करना, जहाँ देखकर किसीके मनमें ग्लानि न हो जाये, पाँव पड़नेसे बेचारा व्याकुलता न हो जाये, दुर्गंधसे व्याकुल न हो जाये— वह भी यज्ञ है। ऐसी वेश-भूषा धारण करना, कि किसीकी आँखमें खटके नहीं, किसीके मनको व्याकुल न कर दे—सबकी आँख शान्त रहे, सबका मन शान्त रहे—इसका नाम भी यज्ञ है। प्रत्येक क्रियाके द्वारा लोगोंको सुख मिले, शान्ति मिले, यह दृष्टि रखना—इसका नाम यज्ञ होता है। पंचामृत बाँटो न! अपने हृदयमें शहदका कुण्ड बना लो मन ही मन, और जब कोई तुम्हारे पास आवे, उसको थोड़ा शहद, थोड़ा मधु देकर भेजो।

देवपूजा, संगतिकरण और दान—तीन अर्थमें यज्ञ शब्दका साधारण रूपमें प्रयोग होता है। देवता तो सबके शरीरमें है, और सब जगह है, इसलिए सबकी पूजा करो। और सत्संग करो; सत्संग करना भी यज्ञ है। और दान करना भी यज्ञ है।

उस यज्ञमें भगवान् कैसे विराजमान रहते हैं? एक यजमानके मनमें आया, कि पाँच रुपयेका दान करें। अब श्रद्धासे जो दान होता है, उसका धर्म दूसरा है, और दयासे जो दान होता है, उसका धर्म दूसरा है। एक गरीब आदमी है—कोढ़ी आया, अपाहिज आया, लँगड़ा आया, लूला आया, भूखा आया, गरीब आया उसको देख करके दया आयी, और उसको दे दिया। तो दयापूर्वक जो दान हुआ, उसका स्वरूप दूसरा है, और एक विद्वान् है, ब्राह्मण है, सदाचारी है, पात्र है, श्रेष्ठ पुरुष है—उसको देनेके लिए जो हृदयमें संकल्प आया, वह दयासे नहीं आया वह दानके बिना मरता थोड़े ही है—वह श्रद्धासे आया। तो हृदयमें जिसने श्रद्धा उत्पन्नकी दान देनेके लिए, वह कौन है?

कि वह ईश्वर बैठा हुआ है तुम्हारे हृदयमें अधियज्ञ रूपसे, जिसने तुम्हें श्रद्धा दी; जिसने तुम्हें द्रव्य दिया है—तुम्हारे कर्मके फलस्वरूप; जिसने तुम्हें हाथ दिया है—तुम्हारे कर्मके फलस्वरूप, जिसने तुम्हें ऐसा अन्तःकरण दिया है—तुम्हारे कर्मके फलस्वरूप, उसने तुमको और ऊपर उठानेके लिए तुमको श्रद्धा दी। भीतरसे उसने श्रद्धाको धकेल दिया। श्रद्धाके अनुसार हाथ काम करे और इसमें पाँच रुपया लेकर किसीको दे। तो किसको देना?

वह महाराज, पंडित बनकर, इन्द्र बनकर, **अधियज्ञोऽहमेव अत्र**-ब्राह्मण बन-कर वह आया। तुम्हारे हृदयमें भीतरसे प्रेरणा दी कि आज इधरसे चलो, आज तो गंगास्नान करो, आज तो भजन करो। उधर तो पंडितजीको, सदाचारी ब्राह्मणको बुलाकर स्थानपर बिठाया, और इधर तुम्हारे हृदयमें प्रेरणा देकर लेगया। यहाँ दिलानेवाला कौन? कि वही। और वहाँ लिवानेवाला कौन? कि वही। वही देनेवाला, और वही लेनेवाला। यह हो क्या रहा है? बोले, यह भगवान्‌की लीला हो रही है; यज्ञ-लीला भगवान् कर रहा है। इस यज्ञमें कर्ताको कर्ता बनाने वाला श्रद्धा पूर्वक, और लेनेवालेको लेनेवाला बनानेवाला-पात्रतापूर्वक! द्रव्य भी वही बना और देनेकी क्रिया भी वही बना, हाथ भी वह बना। और देनेकी क्रिया भी वही बना, हाथ भी वही बना। और उसके बाद? बोले—जिसको मिला, उसके हृदयमें सुख बन करके वही प्रगट हुआ, और जिसने दिया, उसके हृदयमें सुख बन करके वही प्रगट हुआ।

अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर। और वह कहाँ रहता है? बोले—इन हमारे शरीरोंमें ही रहता है, कहीं अलग, जुदा नहीं रहता है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

६

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥५॥

अर्जुनके सातवें प्रश्नके सम्बन्धमें भगवान् उत्तर देते हैं। भगवान्ने ही यह प्रेरणाकी थी, कि मृत्युकालमें जीव यह जान लेते हैं—**प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः**, और अर्जुनने पूछा कि मृत्युकालमें जानते कैसे हैं? इसका उत्तर देते हैं भगवान् **मामेव स्मरन्**—मेरा स्मरण करते रहो, तो मुझे जान जाओगे। माने भगवत्तत्वके ज्ञानका उपाय है भगवान्का स्मरण, और **मुक्त्वा कलेवरं प्रयाति। यः कलेवरं मुक्त्वा प्रयाति,** भगवान्का स्मरण करते-करते देहाभिमानसे मुक्त हो गया, तो **मद्भावं याति**—उसको भगवद्भावकी प्राप्ति होती है। तो भगवान्का स्मरण, भगवत्तत्वका ज्ञान, देहाभिमानके मूल अज्ञानकी निवृत्ति, और अन्तमें भगवत्प्राप्ति; **मद्भावं याति** माने भगवान्के स्वरूपको ही प्राप्त हो जाता है।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्—अन्तकालमें भी मेरा ही अनुस्मरण करता हुआ—इसका अर्थ हुआ कि जीवनकालमें भगवान्का स्मरण अवश्य करना चाहिए; यह इसमें-से अर्थ निकला। **जीवन्काले मामेव स्मरन् अन्तकाले च मामेव स्मरन्। तस्मात्सर्वेषु कालेषु माम् अनुस्मर युध्य च।** भगवान्का स्मरण करो। **हरेः स्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्**—भगवान्का स्मरण सब विपत्तियोंसे छुड़ानेवाला है। बल्कि छुड़ानेवाला है—ऐसा नहीं, भगवान्का स्मरण और विपत्ति—ये दोनों एक कालमें होते ही नहीं हैं। दुःखका स्मरण और भगवान्का स्मरण—यह एक क्षणावच्छेदेन नहीं होते हैं। ठीक एक क्षणमें ही दुःखाकार वृत्ति भी होवे और भगवदाकार वृत्ति भी होवे—वृत्तिमें दो आकार नहीं आते हैं। स्त्रीका स्मरण, पुत्रका स्मरण, धनका स्मरण, मृत्युका स्मरण, वियोगका स्मरण और भगवान्का स्मरण—तो स्मरणका विषय एक कालमें एक होता है। एक कालमें अनेक पदार्थ स्मरणके विषय नहीं होते। वह तो मन इतना चंचल है, इतनी तेजीसे एक चीजसे दूसरी चीजपर जाता है, कि पता नहीं चलता।

आप देखो ज्ञानका एक तरीका! हम किसीका मुँह देखते हैं, तो मालूम पड़ता है कि हम समूचा मुँह देख रहे हैं। अब मुँहमें आँख है, नाक है, मुख है, भौंह है, ललाट है, बाल है, कपोल है, चिबुक है—इतने अवयव क्या एक आँखसे

दिखते हैं? नहीं, आँखमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि मुँहके इतने हिस्सोंको एक साथ देख सके। इतनी तेजीसे नेत्र ज्योति घूमती है, कि जैसे पंखा तेज घूमता है। तो पंखा और छतके बीचमें जो व्यवधान है, उसका पता नहीं चलता है—कौन पत्ती कब आँखके सामने आयी, और चली गयी। कब आयी और चली गयी। पंखेकी तेज गतिमें इसका पता नहीं चलता है। हमारी आँख और छतके बीचमें पंखेकी पत्ती घूमती रहेगी, और छत बराबर दिखायी पड़ती रहेगी; यह नहीं पता चलेगा कि कोई चीज आकर हमारी आँखको ढकती है। तो यह क्या हुआ? गतिकी तीव्रताके कारण व्यवधानका पता नहीं चलता है, माने हमारी आँख इस व्यवधानको ग्रहण नहीं कर सकती है। इसी प्रकार हमारे नेत्रकी ज्योति इतनी तीव्रतम गतिसे मनुष्यके मुखको देख रही है; हमारा मन इतनी तेजीसे एक चीजसे दूसरीपर, दूसरीसे तीसरीपर, तीसरीसे चौथीपर ऐसे घूम रहा है; मालूम पड़ता है कि हम कानसे इसकी बात सुन रहे हैं, और आँखसे इसको देख रहे हैं और त्वचासे इसको छू रहे हैं। लेकिन मन एक बार आँखमें आकर देखता है, एक बार कानमें जाकर सुनता है, एक बार हाथमें आकर छूता है। कहते हैं न, कि एक सैकेण्डमें ही सारे शरीरमें खून घूम जाता है। तो खूनकी अपेक्षा मनकी, और इन्द्रियोंकी जो गति है, वह इतनी तीक्ष्ण है, कि पता नहीं चलता है। यह जो मालूम होता है कि एक ही साथ हमको कई चीजें याद आ रही हैं—ऐसा नहीं होता है। एक-एक बार एक-एक चीज याद आती है; एक बार बेटा याद आया, तो एक बार बेटी याद आयी, एक बार धन याद आया, तो एक बार स्त्री याद आयी; एक बार मकान याद आया, एक बार पड़ोसी याद आया। यह सब कैसे होता है? कि अलग-अलग होता है। स्मरणका विषय एक साथ दो पदार्थ नहीं होते हैं।

अब देखो, यह इतनी भूमिका किसलिए बनायी? इसलिये बनायी, कि जिस समय चित्तवृत्ति भगवदाकार होती है, उस समय दुःखाकार नहीं होती; और जिस समय दुःखाकार होती है, उस समय भगवदाकार नहीं होती है। आपको सुनाया था न, कि एक सेठने एक महात्मासे पूछा, कि महात्माजी, आपको हमारी याद कभी आती है कि नहीं? महात्माने कहा कि सेठ, तुम्हारी याद तो आती है, परन्तु तब आती है, जब भगवान् भूल जाते हैं। इसका अभिप्राय है कि विपत्ति और भगवान्‌की स्मृति-विपत्तिका स्मरण और भगवान्‌का स्मरण ये दोनों एक साथ नहीं है। तब मनमें उत्तम अभ्यास डालना चाहिए—कुछ लोग इसको अभ्यास योग भी बताते हैं—महापुरुष योग, अभ्यास योग, अक्षर ब्रह्म योग—

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।

अभ्यास करो! अभ्यास करो। अभ्यास शब्दका अर्थ संस्कृतमें है—दोहराना। एक कामको बार-बार करोगे, तो उसका ऐसा अभ्यास हो जायेगा, कि फिर बिना किये भी वह काम होता रहेगा। हमारे मित्र थे, वे भगवान्‌का नाम लिया करते थे, तो हर समय उनके हाथका अंगूठा उंगलियोंपर चलता ही रहता था-राम, राम, राम राम। एक हमारे मारवाड़ी मित्र थे—यहीं मुम्बईके ही। बीस-पच्चीस वर्ष पहले उनसे परिचय हुआ। तो उनकी जीभ ऐसे नाचती रहती थी, जैसे कोई मुँहमें फिरकी लगाई हुई हो—कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण—बोलते जा रहे, बोलते जा रहे। बस, भगवान्‌का नाम, बस राम-राम-राम अभ्यास पड़ गया।

जीवनमें उत्तम अभ्यास डालना चाहिए। इसको इस बातपर मत छोड़ देना, कि जब प्रारब्ध होगा- तब अभ्यास होगा। देखो, तुम धनकी प्राप्ति प्रारब्धपर कहाँ छोड़ते हो? जब प्रारब्ध होगा, तब धन मिलेगा; बैठे रहो। बोले—अरे नहीं, कुछ तो हाथपाँव पीटना चाहिए न! बाजार तो जाना ही चाहिए। भले ही धन प्रारब्धसे मिले, लेकिन हम इसके लिए उद्योग करते हैं। यह नहीं समझना, कि जब संत कृपा करेंगे, तब अभ्यास हो जायेगा। संतकी कृपापर बेटा नहीं छोड़ा, बेटी नहीं छोड़ी, धन नहीं छोड़ा, शरीर नहीं छोड़ा भजनको संतकी कृपापर छोड़ दिया। इसका मतलब है, भजनमें तुम्हारी रुचि नहीं है; यह अरुचिका द्योतक है। भजनको भगवान्‌की कृपापर भी नहीं छोड़ना, कि जब वे करायेंगे, तब होगा। भगवान् और सब कराते हैं, लेकिन अपनेसे प्रेम करनेकी बात कैसे कहे? कैसे कहें, कि मुझसे प्रेम करो! आओ, जरा पाँव दबाओ। यह कहनेमें भगवान्‌को शर्म, शर्म आती है, संकोच होता है। कहते हैं—भाई, इसको मजा तो दूसरे काममें आरहा है, इसको मजेवाला काम छुड़ाकर कहना कि आओ, हमसे प्रेम करो-क्या हुक्म दें। जिससे प्रेम करनेमें मजा आता है, उसीसे प्रेम करो। हमसे प्रेम करनेमें मजा नहीं आता है। हमारी सेवा करनेमें मजा नहीं आता है! भगवान्‌को क्या पड़ी है! तुम उनकी सेवा नहीं करोगे, तो उनका क्या बिगड़ता है? भगवान् और सब काम करा लेते हैं, लेकिन अपनी सेवा करनेके लिए नहीं कहते। यह शास्त्रमें आया है, कि गुरुकी और सब आज्ञा मानना, लेकिन जब वह अपनी सेवा छोड़नेको कहे, तो उसकी आज्ञा नहीं मानना! कोई भी भलेभानुष अपनी सेवाके लिए नहीं पुकारेगा। वह तो यही कहेगा, कि नहीं, नहीं, पाँव दबानेकी जरूरत नहीं है, तेल लगानेकी जरूरत नहीं है, कपड़े धोनेकी जरूरत नहीं है। और जब वह कहने लगेगा, कि हमारी सेवा

करो—तो करनेवालेकी ही अरुचि हो जायेगी, कि यह तो बड़ा स्वार्थी है, अपनी सेवा कराना चाहता है।

भगवान्का भजन उसकी कृपापर नहीं छोड़ना, कि जब उनकी कृपा होगी, तब भजन करेंगे। संत कृपा होगी, तब भजन करेंगे। प्रारब्धसे भजन आवेगा, तब करेंगे। नहीं-नहीं और सब तो प्रारब्ध हो, हम तो भजन करेंगे। स्मरणके लिए भी रीति होती है न-**मामेव स्मरन्**।

ऐसा नहीं समझना, कि स्मृति अपने आप ही आजाती है। स्मृतिका यह नियम है कि किसी भी इन्द्रियके द्वारा बाहरी इन्द्रियके द्वारा या भीतरी इन्द्रियके द्वारा जब एक बार अनुभव हो ले, तब स्मरणकी उत्पत्ति होती है। देखो, तुमको स्मरण किसका आता है? जिसको कभी देखा है उसका स्मरण आता है; सुनी हुई बातका स्मरण होता है। कभी कोमल कठोर किया है, तो उसका स्मरण होता है। खाया है तो स्मरण होता है, सूँघा है तो स्मरण होता है—गुलाबका इत्र ऐसा, तो खसका इत्र ऐसा!

अच्छा भाई, चीज अगर इन्द्रिय-ग्राह्य न हो, तब क्या होगा? शब्द न हो, स्पर्श न हो, रूप न हो, रस न हो, गन्ध न हो, तब कैसे स्मरण करोगे? जो चीज कभी बुद्धिमें नहीं आयी-कभी बौद्ध नहीं बनी; जो चीज कभी मनमें नहीं आयी—मानस नहीं बनी, जो चीज कभी इन्द्रियमें नहीं आयी-ऐन्द्रियक नहीं बनी, उसकी स्मृति कैसे होगी? जिसका ज्ञान ही नहीं हुआ, जिसका अनुभव ही नहीं हुआ, उसकी स्मृति कैसे? बोले—अच्छा भाई, महापुरुषके वचनसे उसका स्मरण करो। अब किसीकी सुन्दरताका वर्णन करना होता है, तो बोले—नाक उसकी बड़ी सुन्दर है। बोले—सुन्दर नाक किसको बोलते हैं?

बोले—तोतेकी-सी नाक हो। कोई बेवकूफ होवे, तो उसको बिलकुल टेढ़ी खीर हो जावे। वह टेढ़ी खीरकी बात आपने सुनी हैं न!

कोई जन्मके अन्धे थे। उनसे किसीने कहा कि आज तो मैं खीर खाकर आया हूँ; बड़ी बढ़िया बनी थी। उसने पूछा कि खीर कैसी होती है? बोले—दूधसे बनती है, बिलकुल सफेद-सफेद होती है। अन्धेने पूछा, सफेद क्या होता है? बोला—बगुले जैसा। उसने पूछा बगुला कैसा होता है? उसने अपना हाथ टेढ़ा करके बताया कि ऐसा होता है। बोला—राम-राम! खीर तो टेढ़ी होती होगी, गलेमें फँस जायेगी। अब वह सफेद रंग अंधेकी समझमें कैसे आवेगा? वे तो समझाने चले सफेदी, और दिमागमें आगया टेढ़ापन।

ईश्वरका स्मरण करना कैसे बनेगा? बोले—महापुरुष दुनियाकी अच्छी-अच्छी चीजोंकी याद दिलाकर एक जगह कर देते हैं। भगवान्‌के शरीरकी कोमलता कैसी? कि गुलाबकी पंखुड़ी जैसी। उनकी आँख कैसी? बोले कमलके समान खिली हुई? उनके दाँत कैसे? बोले—अनारके दानेके समान। भागवतमें इसका वर्णन है—

विभ्रद् वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशम्।

संसारमें जितने सुन्दर-सुन्दर पदार्थ हैं, सब भगवान्‌के शरीरमें समाये हुए है। कंधा कैसा? बोले-सिंह सरीखा। आँख कैसी? बोले—हरिण सरीखी। फिर ये महापुरुष लोग भी तो तरह-तरहसे बताते हैं। कोई कुछ बतावे, कोई कुछ बतावे। सब अपनेको सिद्ध ही बताते हैं; कहते हैं—हमको भगवान् मिल गया; जैसे हम कहें, वैसे ही करो। भला इन सिद्धोंका भी नियामक होना चाहिए कोई, कि ये ठीक हैं कि गलत हैं, क्योंकि किसीकी तपस्या कम होती है, किसी की ज्यादा होती है; किसीका ध्यान कम होता है, किसीका ज्यादा होता है। सब महाराज, अभिनव गुरु ही बन जाते हैं। बोले—नहीं, सिद्धोंका नियामक भी वेद-शास्त्र है। वेद-शास्त्र जो बताता है, उसीके अनुसार जो सिद्ध संत बताते हैं; वेदका जो परम तात्पर्य है-परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके लिए उपाय रूपसे जो सन्त बताते हैं—उसी मार्गसे चलना चाहिए। तब **मामेव स्मरन्।**

एकने बताया—**अशब्दं अस्पर्शं अरूपं अरसं अगन्धवत्।** उसमें शब्द नहीं, स्पर्श नहीं, रूप नहीं, रस नहीं, गन्ध नहीं—इनका निषेध करो। यह जो शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध तुम्हारी स्मृतिका विषय बन रहा है, इसको स्मृतिमें-से निकाल दो। बोले—महाराज, स्मृतिमें-से तो निकाल दिया, पर अब तो स्मृतिका पता नहीं चलता है। अरे भाई, वही जिसमें पहले स्मृति हो रही थी, और अब स्मृतिका पता नहीं चलता है—वह जो ज्ञान है—**मामेव सत्यस्मृतिः तत्र दृढैव निष्ठा**—इस स्मृति और विस्मृतिके साक्षीरूपमें, स्मृति और विस्मृतिके अधिष्ठानके रूपमें स्वयं तुम विद्यमान हो, और इसमें स्वनिष्ठा होना ही इसमें स्मरण है। **मामेव स्मरन्।**

यह ईश्वर क्या है? बोले—भाई, ईश्वरका वर्णन वेदमें है—

यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञान अयं ततः।

जो सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान है, परम दयालु है, विष्णु है। ऋग्वेदमें दसियों जगह विष्णुका वर्णन है। यह, कि भाई, विष्णु भगवान्‌का ध्यान करो। वैकुण्ठमें

बैठा हुआ विष्णु और हमारे मनमें समाया हुआ राम-कृष्ण—हमारे जीवनके साथ बिल्कुल मिल जाये! ग्वालोंके साथ मिल गया, वानरोंके साथ मिल गया—दूर नहीं रहा! आप जानते हैं न, नारायणके दोनों पाँव कैद हैं। कैसे? कि लक्ष्मीजी दोनोंको अपनी गोदमें लेकर बैठती हैं। वे बिना उनकी इजाजतके उठ नहीं सकते। देवीने कहा, कि कहीं चले नहीं जाये। वैष्णव सम्प्रदायोंमें ऐसी मान्यता है कि जब लक्ष्मीजी गुरुकृपासे कृपा करती हैं, भगवान्से कहती हैं कि प्रभु, इससे मिलो, यह आपका भक्त है—तब उनके इशारेसे भगवान् मिलते हैं। वैकुण्ठलोकमें भी देवीकी प्रधानता है। बिना उनकी इजाजतके नारायण किसीसे मिल ही नहीं सकते।

ब्रजमें एक कथा है—एक बार श्रीराधारानी कोई चित्र बना रही थीं। बड़ा सुन्दर चित्र बनाया, बड़े सुन्दर बाल, ललाट, कान, कपोल, नासिका, घुटने, पिण्डलियोंतक बना दिया; लेकिन नीचेका जो हिस्सा था—टखना और पंजा-तलवा, यह सब बनाया ही नहीं। अब सखीने आकर पूछा कि श्रीमती जी, यह जो आपने चित्र बनाया है ठीक है; मुँह भी ठीक है, हाथ भी ठीक है, छाती भी ठीक है, गाल भी ठीक है! पाँव क्यों नहीं हैं? तो बोलीं—कि बनाते-बनाते डर लगा। क्या डर लगा? कि पाँव बना देंगे, तो भाग जायेंगे। इसीलिए चित्रमें पाँव नहीं बनाया। वैकुण्ठके भगवान् तो समझो कि भागने वाला नहीं है। उनके पाँव तो दोनों लक्ष्मीजीके हाथमें है। यह भगवान्का सगुण स्वरूप समझो, साकार स्वरूप समझो; जैसा वेद-शास्त्र, पुराणमें वर्णन है, और जैसा महापुरुष लोग बताते हैं—वैसा। वेद शास्त्र-पुराणके अनुसार जो महापुरुष लोग बताते हैं, उनकी बात इनके सम्बन्धमें माननी चाहिए, और जो वेद-शास्त्र-पांचरात्र-भागवत आदिका परित्याग करके अपनी कल्पनामें स्मरण करने लगें तो?

पांचरात्रविधिना ऐकान्तिकी हरेर्भक्ति उत्पातैव केवलम्

बोले—कृष्ण-कृष्ण नहीं बोलते हैं, राम-राम नहीं बोलते हैं, ये क्या बोलते हैं, कि खटर-पटर बोलते हैं? खटर-पटर क्या है? कि भगवान्का नाम है। अरे भाई, यह खटर-पटर भगवान्का नाम कहाँ लिखा है? बोले—अरे, सब नाम कल्पित ही तो है न! जैसे वे कल्पित हैं, वैसे हमने यह कर लिया। बोले ठीक है, कर लो खटर-पटर; लेकिन इसमें भगवान् नहीं मिलेंगे; इसमें भगवान्का स्मरण नहीं होगा जो शास्त्रोक्त भगवान्का रूप है और शास्त्रोक्त भगवान्का नाम है—उसका सहारा लेकर भगवान्का स्मरण करो। यह कामी लोग जो हैं, वे अपनी

कामनाके उद्रेकमें अपनी स्त्रीसे बोलते हैं—प्राणेश्वरी, हृदयेश्वरी; क्या वह स्त्री प्राणेश्वरी होती है? हृदयेश्वरी होती है? न वह प्राणेश्वरी होती है, न हृदयेश्वरी होती है। वह एक कामका आवेश होता है, जिसमें पुरुष वैसा बोलता है और वह एक कामजन्य मोह होता है, जिसमें वह बेवकूफ औरत समझ लेती है कि सचमुच मुझे यह प्राणेश्वरी और हृदयेश्वरी जानते हैं! वह तो एक क्षणिक आवेश है। अपनी वासनाकी पूर्तिके लिए वह हृदयेश्वरीपना और प्राणेश्वरीपना आरोपित किया जाता है, लेकिन ईश्वरमें जो प्राणरूपता है, हृदयेश्वररूपता है—वह वास्तविक है, वहाँ फँसाववाली बात नहीं है।

'एव'पर ध्यान दो, तब हमारी बात श्लोकारूढ़ हो जायेगी, क्योंकि श्लोक-गीताका श्लोक तो अपना खाया-पीया हुआ है, अपनी खुराक है। **मामेव स्मरन् न तु अन्यम्**—भगवान् कहते हैं—केवल मुझे स्मरण करो, दूसरेको नहीं। केवल भगवान्‌को स्मृतिका विषय बनाओ—**स्मर्तव्यः सततं विष्णुः। विस्मर्तव्यो न कर्हिचित्। सर्वे विधिनिषेधा स्युः। एकएवहि किंकरः।** शास्त्रमें जितनी विधि है, और जितने निषेध हैं, सब इस बातके किंकर हैं कि सर्वदा विष्णु भगवान्‌का स्मरण करो, और उन्हें क्षणभरके लिए भी भुलाओ मत—मामेव स्मरन्। और-**मां स्मरन् एव**—दूसरा अर्थ उसका देखो-माने मुझे ही स्मरण करते हुए और मुझे स्मरण करते हुए ही भगवान्‌का स्मरण करेंगे, तो क्या होगा? भगवान्‌का सब पदार्थरूप जो है—वह ध्यानमें आवेगा। और त्वं पदार्थ कैसा होगा? यह प्रकट होगा, कि **मुक्त्वा कलेवरम्** का अर्थ यह है कि हड्डी-मांस-चामका बना हुआ जो शरीर है, यह जो कलेवर है माने खोली है—यह देह कोई 'मैं'नहीं है। तुम्हारा देह कोई 'मैं'नहीं है, और मेरा देह 'मैं' नहीं है, यह तो ऊपर से ओढ़ाई हुई खोली है। एक खोलिया है, एक घोड़िया है—घोड़ा है। लकड़ीका जैसे घोड़ा होता है, ऐसे हड्डी-मांस-चामका बना हुआ हुआ यह घोड़ा है। इसमें जो आत्मदेव हैं, वे बिलकुल जुदा हैं। मरनेका नाम कलेवर-त्याग नहीं है, इस कलेवरमें से 'मैं' का जुदा हो जाना ही कलेवर त्याग है—माने अपने आपको विवेक करके देहसे जुदा कर लेना—भावान्तरकी प्राप्ति—इसका नाम कलेवर त्याग है। पहले समझते थे हम हड्डी-मांस-चाम-विष्ठा मूत्रकी पुड़िया यह जो है—शरीर, यह 'मैं' हूँ, और अब इसको छोड़ दिया।

तो **मुक्त्वा कलेवरम्।** भगवद्भावमें ऐसे मगन हो गये कि देहभाव बिल्कुल विस्मृत हो गया। यह जगन्नाथजीका जो श्रीविग्रह है, यह हर बारहवें बरस-नहीं, कोई पैंतीसवें बरस समझो, जब आषाढ़ मासमें अधिक मास होता है—माने रथ-

यात्राका दिन बढ़े हुए आषाढ़में जब पड़ता है—तो उस समय जगन्नाथजी महाराजका कलेवर बदला जाता है। माने, जगन्नाथजीका जो परम्परागत रूप है, उसको एक मूर्तिमें-से निकालकर दूसरी मूर्त्तिमें रख दिया जाता है, और वह पुरानी मूर्त्ति बदल दी जाती है, क्योंकि वहाँ लकड़ीकी मूर्ति बनती है—ऐसी परंम्परा है। उसको कलेवर बोलते हैं। यह तुम्हारे ऊपर भी एक कलेवर है। यह कलई है! तुम दूसरी चीज हो, और तुम्हारे ऊपर यह कलई है; यह ऊपरसे थोप दी है। जैसे मुरादाबादमें पीतलकी थालीपर राँगेकी कलई ऐसी पक्की करते हैं महाराज, कि जल्दी बदले नहीं। यह शरीरपर हड्डी-मांस-चाम जो है, यह ऊपरसे कलई की हुई है। यह इसमें छिपी हुई एक ऐसी कला है, कि आदमी मोहित हो जाता है, कि यह मैं ही हूँ।

जब भगवान्‌का स्मरण करते हैं, अपनी चित्त-वृत्ति इससे ऊपर उठती है, तब आत्माके स्वरूपका प्रकाश होता है। असलमें मृत्युके समय देशसे देशान्तरकी प्राप्ति, एक लोकसे दूसरे लोककी प्राप्ति नहीं होती। क्या होता है? अभी अन्तःकरणमें यह ख्याल है, कि मैं पुरुष हूँ, और मृत्युके समय स्त्रीके प्रेममें मग्न हो गये। तो यह ख्याल हो जाता है, कि मैं स्त्री हूँ। तब पुरुषाकार चोला छूट जाता है. और स्त्री-आकार चोला प्रकट हो जाता है। मृत्यु माने इतना ही होता है—भाव बदलता है। यहीं बैठे हैं, कहीं आना-जाना नहीं हुआ, क्या मालूम पड़ा? बोले—नरकमें हैं। बड़े पाप किये हैं, तो नरकमें हैं। अच्छा! अरे हमने तो अच्छे काम किये हैं, तो स्वर्गमें हैं, गोदान किया है, व्रत किया है, कोई पाप नहीं किया है। देखो तो, देवदूत आ रहे हैं हमको लेनेके लिए। एक हमारे पारसी मित्र थे यहाँ। उनको चार महीना अस्पतालमें रहना पड़ा। बोले—जब मैं आँख बन्द करता हूँ, तो ऐसा लगता है कि देवदूत आकर मेरे शरीरपर हाथ फेर रहे हैं। हमारे सिरपर देवदूत आकर तेल लगाते हैं, और मैं तो बड़े आनन्दमें रहता हूँ महाराज! न स्त्री है, न पुत्र है। धन है, उसका ट्रस्ट बना दिया। कोई पापी होता तो उसको लगता—हाय, घर छूटा, स्त्री नहीं, पुत्र नहीं अब धन किस काम आवेगा? कौन लेगा? हाय रे, मरा रे! यह दुःखकी कल्पना जिसके मनमें ज्यादा आवे, तो समझना कि पूर्व जन्मका वह बड़ा पापी है, और जिसके मनमें बात-बातमें सुखकी कल्पना आवे-यह भी मजा है, यह भी मजा है—ऐसा पुण्यात्मा जो है, वह विपत्तिको सुख बना लेता है, सम्पत्ति बना लेता है। यही पाप और पुण्यकी मनोवृत्तिमें फर्क पड़ता है।

मुक्त्वा कलेवरं भगवान्के स्मरणमें ऐसे तन्मय हो जाओ, कि यह कलेवर जहाँका तहाँ रह जावे—

दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्योंकी त्यों धरि दीनी चदरिया।
मोको ओढ़ावे चुनरिया चलती बिरियाँ।
प्राणराम जब निकसन लागे, उलट गइ दोउ नैन पुतरियाँ।

छोड़ दो कलेवरको जहाँका तहाँ यह छूटा, और

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ ५॥

भगवान् बोले—फिर भावमय शरीरसे भगवान्का स्मरण करते हुए **मद्भावं याति** जो मैं हूँ, सो ही वह हो जाता है; क्योंकि अन्तिम स्मरणकी महिमा बड़ी विलक्षण है। भाई, स्मरणमें इतनी शक्ति कहाँसे आयी, कि मद्भावकी प्राप्ति हो जाती है? असलमें सबकी आत्मा तो भगवद्रूपा ही है। ज्ञानी लोग तो ऐसा मानते हैं, कि है तो परमात्मा अज्ञानके कारण, वह अपनेको जीव मान रहा है, और जब तत्त्वज्ञान हो जाये तो अज्ञानकी निवृत्ति होती है। अब कोई बोले—अज्ञानकी निवृत्ति होकर तत्त्वज्ञान होता है। देखो, हम दो तरहसे उलटकर बोलते हैं—ध्यान दो; तत्त्वज्ञान होकर अज्ञानकी निवृत्ति होती है, और अज्ञानकी निवृत्ति होकर तत्त्वज्ञान होता है। अब कोई बोले कि अज्ञानकी निवृत्ति होकर तत्त्वज्ञान हुआ, तो अज्ञानको निवृत्त किसने किया? पहले तत्त्वज्ञान-माने ब्रह्माकार निवृत्ति, ब्रह्मज्ञान उदय होकर अविद्याको निवृत्त करता है, और दोनों एक ही कालमें होते हैं। यह ठीक है कि जिस क्षणमें ब्रह्मज्ञानका उदय हुआ, विद्या तो तब भी थी, लेकिन यह कहो कि पहले अविद्या मिट गयी, पीछे ब्रह्मज्ञान हुआ तो यह बात नहीं हो सकती। अविद्याको मिटानेवाला तो ब्रह्मज्ञानके सिवाय कोई है ही नहीं, इसलिए तत्त्वज्ञान-जन्य महावाक्यमें जो चरमावृत्ति है, वह वृत्ति पहले अविद्याको निवृत्त करती है। फिर तो ज्यों-के-त्यों।

भक्त लोगोंका सिद्धान्त इसके सम्बन्धमें यह है कि असलमें आवरण नहीं है, अविद्या भी नहीं है, केवल विक्षेप है; विक्षेप है माने हमारी चित्तवृत्ति भगवान्की ओरसे हट गयी है, हमारा ध्यान हट गया है। ज्ञान नष्ट नहीं हुआ है, ध्यान बदल गया है। है तो सब भगवान्—अखण्ड, एकरस, परिपूर्ण परमात्मा, पर विस्मृति हो गयी है। इस विस्मृतिके कारण हम जिस-जिस रूपको पसन्द करते हैं, वहीं-वहीं हमको जाना पड़ता है। भगवान् पूछते हैं कि तुमको कैसा रूप चाहिए, भाई? एकने कहा—हमारे कुत्तेकी शक्ल हमको बहुत पसन्द है। भगवान्ने कहा

कि भाई, वैसे तो कुत्ता भी मैं ही हूँ, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, अगर मेरे कुत्ता रूपको तुम प्यार करते हो। तो जाओ, कुतिया बनाकर उसके साथ कर देते हैं तुमको! यह बात दूसरी हुई। लेकिन भगवान्‌के असली स्वरूपको जानना, असली स्वरूपको चाहना, असली स्वरूपका स्मरण करना तो देखो, स्मरणकी एक-दो बातें ध्यानमें रखें; एक तो अगर बारम्बार भगवान्‌का नाम दुहराया जाये, तो उससे भगवान्‌का स्मरण होता है। यह काम बहुत बढ़िया है, *हर्रे लगे न फिटकरी, रंग चोखा आवे।* इसमें ज्यादा परिश्रम भी नहीं है, ज्यादा सामग्री भी नहीं चाहिए। इसमे यज्ञ-याग करनेकी कोई बात नहीं, ब्राह्मण द्वारा मन्त्र पढ़नेकी कोई जरूरत नहीं। भगवान्‌का नाम लेते जाओ और याद करते जाओ। स्मृतिको जगाओ भगवान्‌के नामसे। अब यदि यह कहो कि नहीं, हम ध्यान करने लगेंगे, तब स्मरण आवेगा, बोले—राम-राम, ध्यानका साधन तो स्मरण है। स्मरण करनेपर तब ध्यान आता है; ध्यान करनेपर स्मरण नहीं आता है। इसलिए पहले स्मरण चाहिए, पहले ध्यान नहीं। भगवान्‌का स्मरण करनेके लिए एक नामवाली जो बात है, वह सर्वदेशमें, सर्वकालमें, सर्वजातिमें, सर्व व्यक्तिके लिए बिना किसी विधि-निषेधके चलती है। दूसरे, आप पाँवसे तो चलते ही हो-डाक्टर सलाह देगा कि चला करो, तो टहलनेके लिए इधर-उधर मत जाओ; ऐसा भाव बनावो कि वहाँ भगवान्‌का मन्दिर है, वहाँ गंगाजी हैं, वहाँ पीपलका वृक्ष है—अश्वत्थ है, वहाँ गाय है, चलो गायका दर्शन कर आवें; गोपाल भगवान् हैं, वासुदेव भगवान् हैं, दर्शन कर आवें। पाँवसे चलते हैं, कहाँ? कि भगवान्‌की ओर! महात्माका दर्शन करने जाते हैं, देवताका दर्शन करने जाते हैं, वासुदेवका दर्शन करने जाते हैं—ऐसा जोड़ दो, तो उसमें भगवान्‌की स्मृति जुड़ जायेगी।

बोले—प्रात:काल उठकर स्नान करना है; संध्या-वन्दन करना है न! जल्दी उठो। अब क्यों जल्दी उठ रहे हो? अरे भगवान्‌का ध्यान करना है, स्मरण करना है। ऐसा सोच लो कि हाथसे इतनी माला फेरनी है, भगवान्‌का स्मरण आने लगेगा। आँखसे यह दर्शन करना है, कानसे यह कथा सुननी है। किसकी कथा सुननी है? किसका दर्शन करना है? भगवान्‌के चरणोंकी रज लेकरके अपने शरीरमें लगानी है; चन्दन लगाना है। आगया न स्मरण!

बोले—भाई, यह नहीं कि एक दिन दस रुपया निकालकर रख दिया, गरीबको दे दिया। ऐसा नहीं; ऐसा करो न, कि दिन भरमें दस बार दस नये पैसे निकालो! एक बारमें एक नया पैसा निकाला और भगवान्‌को निछावर करके

अलग कर दिया, फिर दूसरी बार नया दस पैसा निकाला, फिर नया दस पैसा निकाला, ऐसा! तब वह निछावर करनेके बहाने दस बार तुम्हें भगवान्का स्मरण आ जायेगा। बोले—नहीं भाई, दस रुपया महीने भरमें देना है, तो चलो, जिस दिन महीना पूरा होगा, उस दिन निकालकर रख देंगे। दे देंगे। तो उसका अर्थ हुआ, कि तुम महीने भरमें एक बार भगवान्का स्मरण करना चाहते हो। स्मृतिकी विशेषता है, कि पैसेकी विशेषता है? पैसेकी विशेषता नहीं है, स्मृतिकी विशेषता है। बोले-एक लाख तुलसीके पत्ते खरीद कर ले आये, और भगवान्के चरणोंमें एक बार डाल दिये; बोले—हमने एक लाख पत्ते चढ़ा दिये! तो पुण्य तो तुमको हो गया एक लाख पत्ते चढ़ानेका, लेकिन अगर एक-एक पत्तेको आप साफ करो, उस पर भगवान्का नाम लिखो और वह भगवान्को चढ़ाओ, तो देखो, इतनी बार तुमको भगवान्का स्मरण आता है। बोले तीन बार जल छोड़ना है। तो जलकी धारकी, और एक बार ही ज्यादा जल गिरा दिया, भगवान् तीन बार कर लेंगे! आरती घुमानी है, बोले—सात दफा यहाँ घुमानी है, चौदह दफा यहाँ घुमानी है! सीखते तो हैं नहीं, अपने मनसे ही तो करते हैं न! बोले—यह सब क्या है? दस बार जल्दी-जल्दी घुमाओ, हो गया पूरा। भगवान् गिन लेंगे कि कहाँ कितनी करनी चाहिए। कि भगवान् तो गिन लेंगे, तुम किसको गिनोगे? तुमने तो भगवान्को की जानेवाली आरतीको गिना नहीं, अब तुम पैसा गिनोगे घर में बैठकर। ऐसा होगा!

स्मृतिके जो हेतु हैं, उनको जीवनमें जगाना चाहिए, और अपनी चित्तवृत्तिके सुख-दुःखसे अलग करना चाहिए। अब यदि तत्त्वज्ञानी होता है, तो उसको कहीं जाना नहीं पड़ता है, और तत्त्वज्ञानी नहीं होता है, तो देवयान गतिसे उसको जाना पड़ता है, और अन्तमें परमात्माके एकतारूप फलकी प्राप्ति होती है। बोले—भाई, स्मरण करेंगे, ज्ञान होगा, देहाभिमान छूटेगा, तो परमात्मा मिल ही जायेंगे, उनसे एकता कैसे हो जायेगी? बोले—**नास्त्यत्र संशयः**। भगवान् कहते हैं—इसमें संशय नहीं है, क्योंकि असलमें परमात्मा और आत्माका जो स्वरूप है, वह एक ही है।

अच्छा भाई, अब समय हो गया पूरा। आगे कल बोलेंगे।

★

७

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ ६॥

स्मरणकी बहुत बड़ी महिमा बतायी है। शास्त्रमें ऐसा कहा है कि मनुष्यका रूप यह नहीं है, जो हम देखते हैं। मनुष्यका रूप वह है, जिसका वह स्मरण करता है। मनमें जो उसका रूप है, वही उसका रूप है।

यच्चित्तं तन्मयो मर्त्या गुह्यमेतत् सनातनम्।

मनुष्यका मन जहाँ लगा रहता है, वही उसका स्वरूप है, माने जब हम किसीको याद करते हैं, तो हमारे मनमें एक शक्ल आती है। जो शक्ल आती है, उससे हम एक हो जाते हैं। कोई स्त्रीकी याद दिन रात करे तो उसका रूप स्त्री हो जायेगा।

भागवतमें पुरंजनका उपाख्यान है। पुरंजन स्त्रीकी याद करते-करते अन्तमें स्त्रीकी याद करता हुआ मरा और स्त्री हो गया। राजा भरत हरिणके बच्चेकी याद करते-करते अन्तमें उसीकी यादमें मरे, तो वे हरिणके बच्चे बन गये। मनुष्य अपने मनमें जो शक्ल भरता है, वही गति उसको प्राप्त होती है। एक प्रसंग आता है; श्री जानकीजीसे किसीने पूछा कि तुम दिन-रात भगवान् रामचन्द्रका ध्यान करती रहती हो। तुम राम बन जाओगी, तो तुम्हारा दाम्पत्य सुख कैसा रहेगा? वह बोलीं—मैं रामका ध्यान करते-करते राम हो जाऊँगी, तो राम भी मेरा ध्यान करते-करते सीता हो जायेंगे। हमारी जोड़ी ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी।

असलमें, मनुष्यके जीवनका निर्माण जो है, वह चिन्तनके, स्मरणके अनुसार ही होता है। अब यह देखो, कि तुम्हारा मन, तुम्हारा चित्त कहाँ रहता है।

तन्मयो मर्त्याः गुह्यमेतत् सनातनम्—एक सनातन रहस्य है यह, एक गोपनीयसे गोपनीय बात है यह, कि मनुष्यके मनकी जो रूपरेखा है, वही रूपरेखा उस व्यक्तिकी है।

अब, जिनको भक्ति न हो भगवान्‌की उनका क्या होता है? भक्तिका अर्थ होता है भाग, हिस्सा। यह भगवान् है और यह संसार है—यह विभक्ति करनी पड़ती है, बँटवारा करना पड़ता है। जिसने संसारका और ईश्वरका विवेक करके अपना मन ईश्वरमें लगाया, वह तो संसारसे मुक्त होता है, और जो संसार और ईश्वरका विवेक न करके हाड़-मांस-चामके पुतलेमें ही अपना मन लगाये रहा, और यही स्रक्-चन्दन-वनितादि-जन्य जो सुख है, यही जो चुम्बनालिंगन जन्य

सुख है—इसी सुखमें जो फँसा रहा, वह ईश्वरकी ओर जन्म-जन्म भी नहीं बढ़ सकता। इसलिए मनुष्यको भगवान्‌के स्मरणमें अपना मन लगाना चाहिए।

यो यच्छ्रद्धः स एव सः—गीतामें यह बात कही गयी है कि जिसकी श्रद्धा जहाँ है, वह वहीं है। माने—मनुष्यका जीवन श्रद्धा है। एक गुरु अपने शिष्यसे कहते थे, कि तुम मुझको जैसा देखते हो, वैसा मैं नहीं हूँ। तुम अपनी आँखसे, अपनी बुद्धिसे जैसा मुझे देखते हो, जितना जानते हो, उतना मैं नहीं हूँ। तब महाराज, आपका स्वरूप क्या है?

मेरे दो स्वरूप हैं। एक तो जैसा अपना स्वरूप मैंने तुमको बताया है, वैसा है; मैंने बताया कि मैं ब्रह्म हूँ—ब्रह्म मेरा स्वरूप है। तुम अपनी आँखसे जितना देखते हो, वह तो तुम्हारी आँख, तुम्हारी वासना, तुम्हारा मन, तुम्हारी श्रद्धा, तुम्हारा सद्भाव, तुम्हारा दुर्भाव है।

दूसरा स्वरूप कैसा है?

भजन-पूजनके समय गुरु रूपसे स्मरण करके जैसा रूप तुमने अपने हृदयमें मेरा बैठाया है—वैसा मेरा रूप है; माने एक तो जो मैंने बताया है कि मेरा स्वरूप यह है, वह मेरा स्वरूप है, और दूसरा तुमने ध्यान-चिन्तन करके जैसा अपने हृदयमें बैठाया है—वैसा मेरा स्वरूप है। मेरा असली स्वरूप तो मैं जानता हूँ, और तुम्हारी भलाई करनेवाला मेरा स्वरूप वह है, जो तुम्हारे हृदयमें, तुम्हारे ध्यान-भजन-श्रद्धासे, प्रेमसे बन करके बैठा हुआ है। बस, दो रूप हैं, जो—**यो यच्छ्रद्धः स एव सः**—जिसकी जिसपर श्रद्धा है, वह वैसा ही है।

एक तो स्मरण, और दूसरे देहाभिमानका परित्याग, और तीसरे भगवद्-भावापत्ति, और चौथी बात यह कि इसमें संशय नहीं करना; क्योंकि यह नियम है—यह मर्यादा है सब विषयोंमें। क्या? कि—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

जैसे कोई सपना देखने लगता है, तो सपनेमें इतना डूब जाता है कि मेरा शरीर इस कमरेमें चारपाईपर पड़ा है—इसका ख्याल नहीं रहता। कभी जागनेमें भी मनोराज्य करने लगता है, तो इस ढंगसे मनोराज्यमें डूब जाता है, कि मैं कहाँ बैठा हूँ—इसका पता नहीं चलता है। कभी-कभी नींद टूट जानेपर भी एक मिनटतक यह नहीं पता चलता, कि मैं इस समय कहाँ हूँ? तो यह क्या बात है? बोले—चित्त ऐसी जगह रह गया है कि वर्तमानके साथ सम्बन्ध टूट गया है। इसी प्रकार मरते

समय जब मनुष्यका मन तन्मय होता है, तो एक ऐसे भावमें डूब जाता है, कि वर्तमान भाव छूट जाता है। इसलिए मृत्युके समय हमारा चित्त ठीक रहे—इसकी विधि बैठानी चाहिए।

कहते हैं, अयोध्यामें एक महापुरुष थे। बहुत भजन करते थे। निर्गुण उपासक जो होते हैं या निर्गुण ज्ञानी जो होते हैं, उनका निर्गुण ब्रह्म तो सर्वरूप है, सर्वकाल में है। उनको ब्रह्मसे मिलनेके लिए न कहीं जाना पड़ता, न आना पड़ता है। जहाँ-का-तहाँ उनका शरीर बिखर गया; मिट्टी मिट्टीमें मिल गयी, हवा हवामें मिल गयी, मन मनमें मिल गया। आत्मा तो आत्मा ही है—नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप—उनके लिए तो आने-जानेका प्रश्न ही नहीं उठता, लेकिन जहाँतक उपासना रहती है, वहाँतक आने-जानेका सवाल होता है। बड़े सिद्ध पुरुष थे; उनका स्थान भी है, लोग नाम भी बताते हैं। उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा कि अमुक दिन, अमुक समयपर मेरी मृत्यु होनेवाली है। और जब मेरी मृत्यु होगी, तो घण्टे बजेंगे और विमान आवेगा, और वह हमको भगवान्‌के पास ले जायेगा। अब महाराज, क्या हुआ कि उनकी मृत्यु तो हो गयी ठीक समयपर—जैसा उन्होंने बताया था, वैसे ही लेकिन न घंटे बजे, न विमान आया। अब तो उनके शिष्य लोगोंको बड़ी शंका हुई, कि हमारे गुरुजी महाराजकी बात झूठी नहीं होनी चाहिए। यह क्या हुआ, कि न तो घंटिया बजीं, और न तो विमान आया? क्या हुआ उनका?

एक दूसरे सिद्ध महापुरुष थे अवधमें, शिष्य लोग उनके पास गये। वे भी आये—भाई, क्या हुआ, कि इनके लिए विमान नहीं आया? तो उन्होंने कहा—कहाँ मृत्यु हुई उनकी? कहाँ शरीर छोड़ा? जाकर देखा, जहाँ वे तख्तेपर लेटे हुए थे, वहाँ सामने एक बहुत बढ़िया बेरका पेड़ था, और उसमें एक बहुत बढ़िया बेर सामने, जिसको देखकर मुँहमें पानी आजाय—ऐसा बेरका फल लगा हुआ था। महात्मा बोले—भाई, बेरका जो फल है न, इसको तोड़ो। तोड़ा, तो एक कीड़ा निकाला। बोले—अब मार ही डालो इसको, छोड़ो मत। जो वह कीड़ा मरा, तो घंटे बजने लगे और विमानके दर्शन हुए। बोले—भाई, यह पाँच मिनटमें, आधे घंटे, घंटे भरमें क्या हो गया? बोले—हमेशा तो वे भगवान्‌का भजन करते थे। और उनका जो लिंग शरीर है, सूक्ष्म शरीर है, वह भजन रूपी स्पर्श-मणिकी प्राप्तिसे बिल्कुल वैकुण्ठमें जाने योग्य बन गया था। वे तो भगवान्‌के पार्षद सरीखे बन गये थे. लेकिन अन्तमें महाराज, वह जो बेरके फलपर दृष्टि पड़ी, तो उनके मनमें यह इच्छा हो गयी कि बेर खा लेते, तब मरते तो अच्छा था। अब उनका सूक्ष्म शरीर

निकलकर बेरके फलमें गया, और उन्हें कीड़ा बनना पड़ा। आध घंटे, घंटे भरमें यह सारी प्रक्रिया समाप्त हो गयी। जबतक अयोध्यासे वे महात्माजी आये और आके उन्होंने वह फल तुड़वाया, तबतक उनकी वासना पूरी हो गयी थी, और फिर वही पहलेका भाव आगया। जीवन भर किया हुआ भजन कभी व्यर्थ नहीं जाता है। परन्तु बीचमें थोड़ी रुकावट तो पड़ ही जाती है।

देखो, राजा भरत जड़भरत हुए—माने राजर्षि भरत जीवन्मुक्त महापुरुष हुए, लेकिन थोड़े दिनों तक हरिण शरीरमें जाना पड़ा, तो रुकावट तो आ ही गयी। एक योगिराज थे; खूब प्राणायाम करते, आसनसे बैठते, कि हम तो सूर्यमण्डलका भेदन करेंगे। महाराज, एक दिन क्या हुआ, कि महाराज लोग उनके पास आये, और उनके मनमें यह इच्छा हो गयी, कि हम भी राजकुमार होते, तो कैसा था! इसी इच्छाको लिए मर गये। मरकर राजाके घरमें पैदा हुए। अब राजकुमार थे बड़े सुन्दर, बड़े स्वस्थ। थोड़े दिनोंके बाद उनकी मृत्यु हो गयी। अब उस राजकुमारके माँ-बाप रोवें, सारा कुटुम्ब-परिवार रोवे। तब महात्माने आकर समझाया कि देखो भाई, यह पूर्व जन्मका योगी था। किसी वासनाके कारण योगभ्रष्ट होकर तुम्हारे घरमें आ गया था। उसकी वासना पूरी हो गयी। अब यह अपनी पूर्व गतिको चल गया। तो अन्तमें थोड़ा सावधान रहे मनुष्य। वह जो जिन्दगी भर भजन करेगा, तो उसको भजनका फल मिलेगा जरूर, लेकिन भजनमें कुछ ऐसा ढंग जोड़ना चाहिए, कि अंतिम जो क्षण है अपना, वह न बिगड़े।

कहते हैं, कि जैसे कोई गोदाम होवे, और उसमें बोरे-पर-बोरा भरते चले जाओ। तो दस बोरे भरे, बीस भरे, पचास भरे, सौ भरे! अब एक दिन हुआ, कि निकालो। तो कौन-सा निकलेगा पहले? जो पहले रखा था, सो नहीं निकलेगा; जो पीछे रखा था न, ताजा-ताजा, पहले वह निकलेगा। यह जो संसारमें हम कर्म करते हैं, उनका संस्कार, उनकी छाप, उनकी मोहर, उनकी वासना चित्तपर लगती ही जाती है। जब उनको उभाड़नेका समय आता है, तो जो आखिरमें रखा रहता है, सो उमड़ता है। इसीसे कहते हैं—भाई, किसीका जीवन अगर बचपनमें बुरा बीता, जवानीमें बुरा बीता, तो भी यदि अन्तमें अच्छा बीते, तो अन्त भला सो भला। **अन्ते या मतिः सा गतिः।** अन्तमें जैसी मति होती है, वैसी गति प्राप्त होती है। इसलिए—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरम्।

अन्त समयमें जिस भावका स्मरण करता हुआ यह मनुष्य अपनी शरीरका त्याग करता है, **तं तमेवैति कौन्तेय**—हे कौन्तेय! उसी भावको वह प्राप्त होता है। क्यों

प्राप्त होता है? **सदा तद्भावभावितः। तद्भावो भावितो येन भाविताः तद्भावाः।** हमेशा उसने उसी भावकी भावनाकी है, इसलिए उसकी दृढ़ शक्ल, दृढ़ संस्कार बन गये हैं। इसीलिए जो अपनेको देवता रूपमें निश्चय करता है, वह देवता हो जाता है; और जो अपनेको कामी-क्रोधी-लोभी-मोही रूपमें निश्चय करता है, उसके मनमें काम-क्रोध-लोभ आकर बस जाते हैं। कभी दुर्भाव अपने हृदयमें नहीं आना चाहिए—**तद्भावेन भावितः तद्भावभावितः** और **तद्भावभावितो येन।** आहिताग्नि आदि शब्द आकृतिजन्य हैं, इसलिए **भाविततद्भावः** रूप भी बनता है, और **तद्भाव-भावित** रूप भी बनता है। अथवा **तद्भावेन तच्चिन्तनेन भावितः वार्पितचित्तः तद्भावभावितः**—जिस-जिस भावकी भावना करेगा, उसी-उसी भावकी प्राप्ति होगी। इसलिए भावना अपनी अच्छी बनानी चाहिए।

हमारे एक महात्मा थे। वे कहते थे कि प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें-से एक प्रकारकी तन्मात्रा निकलती है। जैसा उसका मन होता है, वैसा एक वातावरण उसके साथ बना रहता है। जैसे कोई आदमी क्रोधसे भरा हो, और तुम उसके पास जाओ। थोड़ी देर बैठो। अब वह बातचीत करने लगेगा—उसने हमको ऐसे सताया, इसलिए क्रोध कर रहे हैं—तो जो उसके पास बैठेगा न, उसके मनमें भी थोड़ा क्रोध फुरफुराने लगेगा। उसकी आँखोंमें भी थोड़ी लाली आ जायेगी; उसकी भौंह भी फड़कने लगेगी। और नहीं, तो कहेगा—हाँ भाई, जिसको तुम कहते हो, वह सचमुच बड़ा दुष्ट है। उसको दुष्ट तो कह ही दोगे न। तो क्रोधी के पास बैठनेसे मनुष्यके चित्तमें क्रोध आता है। कामीके पास बैठनेसे मनुष्यके मनमें कामका संचार होता है। लोभियोंके पास बैठो, तो वे बता ही देंगे आज यह भाव बढ़नेवाला है, आज यह घटनेवाला है, आज इसमें बड़ा भारी फायदा होनेवाला है! ऐसी कोई बात महाराज, अपनी वे बतावेंगे, कि फँसा लेंगे। इसीलिए बताया है कि जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, उसको सत्संग करना चाहिए, साधुओंके संगमें बैठना चाहिए। अच्छा काम करना, अच्छा बोलना और अच्छा सोचना चाहिए। शारीरिक, मानसिक और वाचिक-तीनों प्रकारका जो व्यवहार है, उसको यदि शुद्ध कर लिया जाये, तो अन्तमें हृदय शुद्ध हो जाता है, और भगवान्‌से मिलनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है।

इसलिए अपने स्मरणको ठीक बनाओ। स्मरणमें जो 'स' है न, वह भगवान्‌का वाचक है। 'स' शब्द जुड़ जानेसे ही 'स्मरण' शब्द महत्त्वपूर्ण बन जाता है, क्योंकि उसमें भगवान् आ जाते हैं। और यदि 'स' नहीं होवे, तो क्या रहेगा? 'मरण' ही रहेगा। यदि परमात्मा स्मरणके पेटमें न हो, तो स्मरण 'मरण' हो जाता

है, और 'स्मृति' 'मृति' हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है, कि भगवान्‌का स्मरण अपने जीवनमें किया जाये। तो—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैश्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

तस्मात्—इसलिए माने स्मरणके अनुसार ही मनुष्यकी गति प्राप्त होती है। अगले जन्ममें जो तुम्हारी उन्नति होगी, गति होगी—वह भी स्मरणके अनुसार होगी और इस जन्ममें भी तुम्हारी जो उन्नति होगी, गति होगी—वह स्मरणके अनुसार होगी। तो सत्संगसे स्मरण शुद्ध करो, क्योंकि—

मति कीरति गति भूति भलाई जो जेहि जतन जहाँ जब पाई।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ लोकहुँ वेद न आन उपाऊ॥

लोकमें, वेदमें दूसरा कोई उपाय नहीं है, मति, कीर्ति, गति, हित जिस किसी अधिकारीको, जिस किसी उपायसे, जिस किसी देशमें और जिस किसी कालमें, जो भी मिला है, वह सत्संगका प्रभाव है। लोकमें, वेदमें, सत्संगके सिवाय अपने कल्याणका दूसरा कोई उपाय नहीं है। मनुष्यका अगर भला हो सकता है, तो केवल सत्संगसे हो सकता है। संसारके जो सम्बन्ध होते हैं, वे पहले बड़े पवित्र बनकर आते हैं-हम बड़े पवित्र हैं, हम बड़े पवित्र हैं-लेकिन अन्तमें चामसे चाम मिले बिना, जीभसे जीभ मिले बिना संसारके सम्बन्धकी समाप्ति नहीं होती है। सारे सांसारिक सम्बन्धोंका अन्त इसीमें है कि अन्तमें वे भोगके रूपमें परिणत हो जाये, क्योंकि संसारकी प्रत्येक वस्तु भोगके रूपमें प्राप्त होती है। जब उसकी ओर हम आकृष्ट होंगे, तो पहले पवित्रता मालूम पड़ेगी, लेकिन बादमें उसमें गन्दगी आये बिना रह नहीं सकती यही संसारका स्वभाव है, और यही संसारका स्वरूप है, यही इसकी अंतिम गति है। जैसे प्रत्येक जन्मवाले पदार्थकी अंतिम गति क्या है? मृत्यु। जो पैदा होगा, वह मरेगा। ***जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना।*** जो फल लगता है, वह एक दिन झड़ता है, और जो दीया जलता है, वह एक दिन बुझता है। इसी प्रकार प्रत्येक संसारी सम्बन्धकी अन्तिम गति भोग है। संसारका सम्बन्ध जो है, वह परिणामको प्राप्त होकर, बदलकर-भोगकी ओर जो रहा है। इसलिए काल तुम्हारे सिरपर खड़ा है। कालसे तुम्हारा युद्ध हो रहा है। काल कहता है-बदलो। काल कहता है-गिरो। काल कहता है-मरो। अब ऐसी परिस्थिति आगयी भाई-अब तो तुम्हारे देखे बिना आँख नहीं मानती, अब तो तुम्हारे छुए बिना चाम नहीं मानता, अब तो तुम्हारे भोगे बिना मैं जी नहीं सकता! यह काल है। काल तुम्हारे सिरपर सवार होकर बोल रहा है।

सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर—कालसे लड़ाई करो। आत्मा अमर है, परमात्मा तुम्हारा स्वरूप है। कालको ललकार दो; चुनौती दे दो कालको हम नहीं मानते कालको। कालमें धर्म अधर्म आते हैं—कोई सायंकाल आता है, कोई प्रातःकाल आता है, कोई आधी रात आता है, कोई दोपहर आता है। कालमें इतने पदार्थ आते हैं—बचपन आता है, जवानी आती है, बुढ़ापा आता है। कालमें ही चावल पकता है, कालमें ही गेहूँ पैदा होता है, कालमें ही वह पकता है, खाया जाता है। यह जो कालका खेल लगा हुआ है हर वस्तुमें, हर क्रियामें, हर जगहमें यहाँ—बस, अपनी दृष्टिको कालिक पदार्थोंसे हटा करके परमात्मामें लगाओ। भगवान् कहते हैं—**सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर।**

यह युद्धके साथ इसका सम्बन्ध नहीं है, नहीं तो बड़ा उलटा अर्थ इसका हो जायेगा। पूरा-का-पूरा अगर युद्धके साथ लगावें, तो ऐसा अभीष्ट नहीं है। **युध्य** माने है **युध्यस्व,** लड़ो, युद्ध करो। यह युध्यस्वकी जगह युध्य पदका प्रयोग है। बोले—**सर्वेषु कालेषु युध्य**—सब कालमें लड़ो। लेकिन किसके साथ लड़ें? बोले **मां युध्यस्व**—मेरे साथ लड़ो। भगवान् कभी ऐसा नहीं कहते हैं कि मेरे साथ लड़ो। अगर **सर्वेषु कालेषु**को कोई **युध्यस्व**के साथ ले जायेगा तो **माम्** भी चला जायेगा उधर। **माम्** उधर नहीं जाये, भगवान्के साथ कहीं तुम्हारी लड़ाई न छिड़ जाये, इसके लिए क्या करना है? कि—

सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर, और **प्राप्तेषु कालेषु च, युध्यस्व।**

लड़ना भी कहाँ? यह नहीं, कि सबसे लड़ाई करते फिरो। हम अपने गाँवसे जाते थे स्कूलमें पढ़नेको; मील-डेढ़ मील पर था गाँव। रोज सबेरे जाते थे, दोपहरको जाकर खाते थे, फिर शामको लौट आते थे। बीचमें एक पाकड़का पेड़ पड़ता था—बहुत बढ़िया। वहाँ दोनों ओर बहेलियोंकी बस्ती थी। वहाँ महाराज, कभी मैंने ऐसा नहीं देखा, कि उस रास्तेसे निकला होऊँ, और स्त्रियोंमें दो पक्ष होकर, और खूब हाथ नचाकर, और अंगूठा दिखाकर, दोनों ओरसे लड़ाई न होती हो। वहाँ **सर्वेषु कालेषु युध्यस्व** था। मनुष्यकी स्थिति असलमें विवादमें नहीं है, कलहमें नहीं है, मनुष्यकी स्थिति शांतिमें है। यही सद्गुण और दुर्गुणकी पहचान है।

अच्छा, कोई कहे कि हम क्रोध करेंगे। करो भाई! चौबीसों घंटे करना पड़ेगा। है कोई ऐसा, जो चौबीसों घंटे क्रोधमें रहे? देखो, क्रोध आवेश है, अपना स्वरूप नहीं है; आता है, जाता है। यह मेहमान है, घरका आदमी नहीं है। जो इसको अपने घरकी चीज समझ कर सोचता है, कि हम जिन्दगी भर इस क्रोधको,

इस आवेशको रखेंगे, वह बेवकूफ है। यह जिन्दगी भर रहने-वाला नहीं है, थोड़ी देरके लिए आया है। फिर तुम्हारा सत्यानाश करके चला जायेगा। यह क्रोध जो है, यह शत्रु है, मित्र नहीं है।

सद्‌गुण और दुर्गुणकी पहचान क्या है? कि जब क्रोध आता है न मनमें, तो उसके साथ एक साढ़े तीन हाथका आदमी भी अपने मनमें आता है, जिसके ऊपर क्रोध आता है। जबतक दुश्मन अपने मनकी आँखसे नहीं दिखेगा, तबतक क्रोध किस पर होगा? आसमानपर क्रोध कोई करता है? कोई गाली देता है? यह नीलिमा जो आकाशमें दिखती है, इसको कोई गाली देता है? कोई तलवार चलाता है इस पर? कि नहीं। जब क्रोध आता है, तो मनमें उसका एक विषय होकर आता है। वैसे महाराज, कई लोग ऐसे होते हैं, जो बेमतलबके भी क्रोध बना लेते हैं, लेकिन वे भी अपना एक कल्पित दुश्मन बनाकर दिलमें रखते हैं। क्रोध कभी निर्विषय नहीं होता है।

ऐसे ही काम भी होता है। काम आता है, तो निर्विषय नहीं होता है। कामके पेटमें एक स्त्री, कामके पेटमें एक पुरुष—कामके पेटमें कोई-न-कोई मौजूद रहता है। वही तो हमारे कलेजेको फाड़ता है। अगर इस बातकी दुहाई देते हो कि हमारे चित्तमें काम नहीं है, तो यह तुम्हारे कलेजेको फाड़नेवाला जो बाहर बैठा है, यह कैसे तुम्हारे दिलमें घुसा है? है कि नहीं है? काम किसके प्रति है? कामका विषय कोई-न-कोई कलेजेमें घुसकर रहता है। यह पहले मालूम नहीं पड़ता, निकल आता है बादमें।

लोभ होता है मनमें, तो किस चीजका लोभ होता है? सोना चाहिए, चाँदी चाहिए, खेत चाहिए, कुर्सी चाहिए? विषय होता है लोभका, वह निर्विषय नहीं होता है।

यह क्या होता है? कि भगवान्‌की जगहपर कामिनी, भगवान्‌की जगहपर कामी, भगवान्‌की जगहपर कंचन; कंचन, कनक, कामिनी, कंचन, कीर्ति ये आकर उस सिंहासन-दिल पर आकर बैठते हैं, जिस सिंहासनपर भगवान् बैठने चाहिए। बस, यही सावधानी रखनेकी जरूरत है, यह देखो, कि तुम्हारे दिलके सिंहासनपर एक क्षणके लिए भी भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई न बैठे। रूप गोस्वामीने 'भक्ति रसामृतसिन्धु'में मथुराके लोगोंको बड़ी गाली दी है; एक कटाक्ष किया है। ये वृन्दावनी थे न। बोले—कि क्या कहना मथुरावासियोंके प्रेमका! कैसा था—कि जब हमारे गोरे-गोरे बलराम और साँवरे-साँवरे कृष्ण दोनों मथुराकी सड़क पर निकलते

थे ना, तो मंडल बनाके नाचते चलते थे, कभी कृष्ण दिखते तो कभी राम दिखते। तो झरोखोंमें खड़ी थी न स्त्रियाँ मथुराकी, और देखती थीं राम और कृष्णको नाचते-गाते-बजाते-चलते। जब बलरामको देखतीं, तो कहतीं-यह हमारा पति होने लायक है। इसके साथ हम ब्याह करेंगे। और जब बलरामका दीखना बन्द हो जाता, तो कृष्णको देखतीं, तो कहतीं—हम तो कृष्णके साथ ब्याह करेंगी, यह बहुत बढ़िया है। बोले—धन्य है मथुरा वासियों, तुम्हारे प्रेमको!

अपने दिलके सिंहासनपर कभी रामको बैठाना, कभी उनको हटाकर कामको बैठाना, कभी अपने हृदयमें भोगको बिठाना, कभी लोभको बैठा लेना—कभी भोगको बैठाना, और कभी क्षोभ को! बोले—नहीं, ऐसा नहीं। अपने चित्त को शुद्ध रखकर परमात्माका चिन्तन करना, परमात्माका स्मरण करना। और **युध्यस्व** का अर्थ यहाँ यह है कि अर्जुन के सामने **प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवा:**। दोनों ओरसे हथियार चलनेवाले हैं, कर्त्तव्यके रूपमें युद्ध उनके सामने उपस्थित है। बोले—कर्तव्य मत छोड़ो।

कर्तव्य छोड़ता क्यों है? भयसे छोड़ता है, लोभसे छोड़ता है, क्रोधसे छोड़ता है, कामसे छोड़ता है। बिना कोई दोष आये मनुष्य अपने कर्तव्यको छोड़ता नहीं है। जब मनुष्य अपने कर्तव्यसे च्युत हो जाता है, जब भगवान्‌का नाम छूट गया, भगवान्‌का स्मरण छूट गया, भगवान्‌की पूजा छूट गयी, भगवान्‌की सेवा छूट गयी—तो बिना रागके, बिना द्वेषके, बिना लोभके, बिना मोहके, बिना चित्तमें कोई विकार आये मनुष्य अपने कर्तव्यसे भ्रष्ट कैसे हुआ? तो वे कहते हैं—भाई, चित्तके दोषको निकालनेके लिए तो करो भगवान्‌का स्मरण, और बाहरसे यह जो युद्ध-रूप कर्तव्य तुम्हें प्राप्त हुआ है, इसको करते रहो। यहाँ युद्ध करनेमें तात्पर्य नहीं है, तात्पर्य है अपने कर्तव्यके प्रति निष्ठावान् होनेमें। मनुष्यको अपने कर्तव्यके प्रति बेईमान नहीं होना चाहिए कभी।

बोले—महाराज, जब बाजारमें जाते हैं पैसा कमानेके लिए—यह भी कर्तव्य है। घर-गृहस्थीकी पालन करना भी कर्तव्य है। कि जरूर है। जब जाते हैं बाजार पैसा कमानेके लिए, तो भगवान् भूल जाते हैं। कर्तव्यका पालन करनेमें भगवान्‌का विस्मरण हो गया। और जब आँख बन्द करके बैठते हैं भगवान्‌का स्मरण करनेके लिए, तो कर्तव्य छूट जाता है। यह तो कर्तव्यमें, और भगवान्‌के स्मरणमें विरोध है। बोले—तुमने कर्तव्य दूसरेका बना दिया, और स्मरण दूसरेका करने लगे। विस्मरण क्यों हुआ, इसको समझो। पैसा तो कमाते हैं घरवालीके लिए, बेटेके लिए, भोगके

लिए, मकानके लिए, अपने लिए और स्मरण करना चाहते हैं भगवान्‌के लिए—दोनों अलग-अलग हो गये। ऐसा करो, कि पैसा भी भगवान्‌के लिए बनाओ। तब देखो, कैसा स्मरण मिलता है। बच्चेके लिए जब रोटी बनाते हैं न, तब भगवान् भूलेगा, पतिके लिए रोटी बनाते हैं, तब भगवान् भूलेगा, अपने लिए रोटी बनाते हैं तो भगवान् भूलेगा, और भगवान्‌को भोग लगानेके लिए रोटी बनाओ, तो रोटी बनाते समय बारम्बर भगवान्‌की याद आवेगी, भूलेगा नहीं।

कर्तव्यका पालन किसके लिए? कर्त्तव्यका पालन उसी प्रभुको प्रसन्न करनेके लिए। तुम्हारे कर्तव्य पालनका उद्देश्य क्या है? तुम जो काम कर रहे हो, वह जिसका काम है—उसके लिए कर रहे हो, कि दूसरे के लिए कर रहे हो? दूसरे के लिए कर रहे हो, तो उसकी याद आवेगी जिसके लिए कर रहे हो, और जिसका काम करोगे, उसे भूल जाओगे। सेठ याद नहीं रहेगा, घरवाली याद आवेगी, और सेठके लिए काम करोगे, तो सेठका काम भी होगा, और सेठकी याद भी आवेगी। जब कर्म भगवान्‌के लिए होता है, तब कर्म करते समय भी भगवान्‌का स्मरण बना रहता है, और जब कर्म संसारके लिए होता है, तब उसमें भगवान्‌की विस्मृति हो जाती है। इसलिए—

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः।

अंतिम बात यह रही, कि **मयि अर्पितमनोबुद्धिः**। भगवान् चाहते हैं—माँगते हैं; क्या? हाथ नहीं माँगते हैं भगवान्; पैसा नहीं चाहिए भगवान्‌को। कल एक माता आयी थीं; वह कहती थीं—महाराज, जहाँ-जहाँ साधुओंके पास जाती हूँ, तो मन लेकर जाती हूँ, कि गुरु बनाऊँ। वे कहती थीं कि मैं बड़े धनी घरकी स्त्री हूँ, और जब मैं जाती हूँ उनके पास, तो वे पैसा माँगते हैं। तो मेरा मन बिगड़ा जाता है, क्योंकि मैं तो खुद पैसेसे ऊबी हुई हूँ, लेकिन वे तो पैसेसे ऊबे हुए नहीं हैं, वे तो चाहते हैं। भगवान्‌को पैसा नहीं चाहिए, भगवान्‌को हाथ नहीं चाहिए। भगवान्‌को पाँव नहीं चाहिए। भगवान्‌को मुर्देका अर्पण नहीं होता है—ठाकुरी नहीं चाहिए भगवान्‌को। भगवान्‌को चाहिए दिल—मय्यर्पित मनोबुद्धि।

अपना मन मुझे अर्पित करो, अपनी बुद्धि मुझे अर्पित करो। बोले—लो महाराज, ब्राह्मण बुलाओ, हाथमें जल लें, अक्षत लें, एकाध पैसा—ताँबा भी उसपर रख लें—पवित्र हो जायेगा—और कहो, लो, हम अपनी बुद्धि, अपना मन अर्पित करते हैं। हो गया! ऐसे अर्पण नहीं होता है। कि तब कैसे मन, बुद्धिका अर्पण होता है? बोले—देखो, सत्यभामाके पिताने स्यमन्तक मणि भगवान् कृष्णको अर्पित की। श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि भाई, तुम स्यमन्तक मणि तो अपने पास रखो, वह

हमको नहीं चाहिए। कि तब महाराज, हमने तो आपको अर्पण कर दिया। यह हमारी नहीं, यह तो आपकी है। आप ले जाइये।

कि नहीं ले जायेंगे। बोले—कि इसमें-से कुछ निकलता है? कोई दो मनके करीब सोना इसमें रोज निकलता है।

बोले—वह रोज हमारे घर भेज दिया करो। श्रीकृष्णने कहा, यह स्यमन्तक मणि तुम अपने घर रखो। अपने घरसे इसपर चन्दन लगाना, इसपर फूल-पत्ते भी चढ़ाना, धूप-दीप भी दिखाना। पूजा तुम करना रोज, अपने घरका पैसा लगाकर करना। इससे जो मिलता है, वह हमारे पास भेज देना।

आप जानते हैं न, मैसूरमें अगर चन्दनका पेड़ किसीके घरमें पैदा हो जाये, तो सरकारी कर्मचारी आकर उसपर मोहर लगा जाते हैं, उसको नोट कर लेते हैं। उसमें-से एक डाली आप तोड़ नहीं सकते, लेकिन आपका यह कर्तव्य है, कि आप रोज उसको सींचे, और वह सूखने न पावे। तो—

तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः।

मन-बुद्धि अर्पित करनेका अर्थ यह है, कि मन तो तुम्हारे ही कलेजेमें रहे। यह नहीं कहते कि अपने दिलको निकालकर अपने कलेजेमें-से हमारे कलेजेमें रख दो। तब क्या चाहिए? कि तुम्हारे मनमें जितने संकल्प उठे, वे मेरे लिए उठे। मनमें यह ख्याल होवे, कि भगवान् मिलेंगे, तो उनको ऐसे दण्डवत् करेंगे, ऐसे चन्दन लगावेंगे, ऐसे बाल सँवारेंगे, माला पहनावेंगे, उनको ऐसे खिलावेंगे, उनके सामने ऐसे नाचेंगे, ऐसे गावेंगे। मन तुम्हारा रहे भला! लेकिन मनमें जितने संकल्प हैं, जितने राग हैं, मनकी जितनी वृत्तियाँ हैं-वे सब भगवान्‌के लिए होवें, दूसरोंके लिए नहीं, अपने लिए नहीं। बुद्धिका अर्पण ऐसे होता है, कि बुद्धि तुम्हारे ही कलेजेमें रहे। यह तलवारसे बुद्धि नहीं चढ़ाई जाती भगवान्‌के चरणोंमें। बुद्धिमें जो विवेक है, जो विचार है, जो युक्ति है, जो मनन है-वह किसके बारेमें हो? भगवान्‌के बारेमें हो, जितने विचार हों, वे भगवान्‌के प्रति हों। इसका नाम भगवान्‌के प्रति मन-बुद्धिका अर्पण है। सारे संशय तुम्हारे मिट जायेंगे। **असंशय**। संशय माने संशयका कारण अज्ञान। किसी चीजको ठीक न समझनेसे संशय होता है। संशयका कारण अज्ञान है। कारण सहित संशयकी निवृत्ति हो जायेगी तुम्हारी। तुम अज्ञान-रहित-असंशय-होकरके **मामेवैष्यसि**-मुझे ही प्राप्त हो जाओगे। मैं मिल जाऊँगा तुमको, लेकिन अपना मन और बुद्धि मुझे तो अर्पित करो। ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

★

ॐ मंगलमूर्तये नमः।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मयि अर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः॥ ८॥

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—तस्मात् इसलिए **सर्वेषु कालेषु**—सभी कालोंकी उपस्थितिमें मामनुस्मर—मेरा अनुस्मरण करो, और **युध्य च-युध्यस्व च**—युद्ध ही करो।

सर्वेषु कालेषुका एक सीधा अर्थ तो यह है कि प्रातःकाल—प्रथम प्रहर, मध्याह्नकाल—द्वितीय प्रहर, अपराह्न काल—तृतीय प्रहर, सायंकाल—चतुर्थ प्रहर, फिर दिन-रात्रि, सप्ताह, पक्ष, मास, संवत्सर—कोई भी काल होवे, उसमें भगवान्का स्मरण करो। अर्थात् जैसे यज्ञ-यागादि करनेमें कालका प्रतिबन्ध है—अमुक कालमें यज्ञ करना और अमुक कालमें यज्ञ नहीं करना, ज्योतिषीसे मुहूर्त दिखाना पड़ता है कि आजकल यज्ञ करनेका मुहूर्त है कि नहीं, होवे तो करें, न होवे तो न करें—वैसे भगवान्का स्मरण करनेमें किसीसे मुहूर्त पूछनेकी आवश्यकता नहीं है, सभी समय भगवान्का स्मरण करना चाहिए। जो समय सामने होवे, उसमें भगवान्का स्मरण करना। यह पछताना भी नहीं, कि हाय-हाय, पिछले समयमें भगवान्का स्मरण नहीं हुआ, क्योंकि जो समय भगवान्के स्मरण बिना बीता, वह तो बीत गया, अब तुम पछताकर यह समय भी व्यर्थ बिता रहे हो। पछताओ मत, समयका सदुपयोग करो। रोनेमें ज्यादा समय नहीं बिताना चाहिए।

एक आदमी कहीं अनजान जगहमें पानीमें उतर गया। देखा, तो बहुत कीचड़, दलदल था। पानीमें फँसने लगा। अब उसको चाहिए था, कि लेट जाये या कोशिश करके जल्दीसे निकल आवे। वह पछताने लगा—हाय, हाय, मैं दलदलमें क्यों आया? मैं पानीमें क्यों घुसा? तो वह कीचड़में धँसता ही जाये। इतनेमें आगया मगर; तो मगरने उसको पकड़ लिया। यदि वह पछतानेमें अपना समय न गँवाता, तो जितने समयमें पछताया, उतने ही समयमें वह निकल जाता। इसलिए पछतानेमें समय नहीं गँवाना चाहिए। जो काम न करनेके कारण पछतावा आ रहा है, उस कामको करना चाहिए।

अब दूसरी बात देखो। बोले—भाई, सन्ध्या वन्दन सूर्योदयके समय करना चाहिए, सूर्यास्तके समय करना चाहिए, मध्यान्ह कालमें करना चाहिए। बोले—आज तो गलती हो गयी-नींद आ गयी, किसी काममें लग गये, छूट गयी सन्ध्या। सन्ध्या पूजा नहीं छूटी, समय छूटा है न! सन्ध्या कहाँ छूटी? सन्ध्या तो अभी तुम कर सकते हो! कालका लोप हो गया। माने जिस कालमें सन्ध्या करनी चाहिए थी, उस कालमें तुमने सन्ध्या नहीं की। तो काल-लोप तो हुआ, अब तुम कर्मलोप क्यों करते हो? है न! जैसे किसी आदमीका नियम है रोज ग्यारह बजे दिनमें भोजन करना। कोई ऐसा काम आगया, कि ग्यारह बजे भोजन नहीं कर सका, बारह बज गये। अब वह बोले—हाय हाय, ग्यारह बजेका समय तो बीत गया, मैं भोजन ही नहीं करूँगा। तो वह बेवकूफ है न! अरे भाई, समय गया तो गया, भोजन तो मत जाने दो! इसी प्रकार समय बीत जानेके कारण कर्मका लोप नहीं होना चाहिए। सन्ध्या-वन्दन करना चाहिए। मुख्यता कर्म की है कालकी नहीं है। इसलिए भले प्रायश्चित्तकी एक अंजलि, एक अर्घ्य और दे दो। यह नियम है, कि यदि सन्ध्यामें समय टल जाये, तो सूर्य को जो अर्घ्य देते हैं, वह तीनकी जगह चार देना चाहिए। ठीक है; चलो, प्रायश्चित्त तो कर लो, पर सन्ध्या-वन्दन तो करो। कर्मका लोप नहीं होना चाहिए। इसलिए **सर्वेषु कालेषु**।

अब दूसरी बात देखो। सच पूछो, तो सब रूपोंमें काल ही सामने खड़ा है। आप रेलगाड़ीमें चलते हैं, तो क्या समझते हैं, कि कालने आपको छोड़ दिया है? अरे, ये तो चूहे ही हैं, जो सब जगह पहुँच जाते हैं, हवाई जहाजमें भी चलते हैं। हमको यहाँके एक परिवार ने बताया, कि जब हमारे घरके सब लोगोंको विलायतसे आना-जाना होता है, तो सब लोग एक हवाई जहाजमें नहीं आते हैं! दो जने उसमें, दो जने उसमें अलग-अलग आते हैं। क्यों? कि एकमें गये, और एक्सीडेंट हो गया तो? उनको डर है न! यह काल लगा हुआ है, विमानमें काल लगा हुआ है। मोटरमें? कितने लोग मोटरसे चलते हैं—नहीं पहुँचते हैं। सड़कपर चलते हैं भूकम्प आता है, सड़क फट जाती है। तो **सर्वेषु कालेषु** का अर्थ यह है, कि संसारमें काल मनुष्यको घेरे हुए है सब ओर से। सब रूपोंमें काल तुम्हारे सामने खड़ा है स्त्री बनकर, पुरुष बनकर, पिता बनकर, माँ बनकर, भोजन बनकर सगा-सम्बन्धी बनकर, मकान बनकर ये कालके सारे रूप हमारे सामने हैं। भगवान्ने कालके रूप इसलिए प्रकट किये हैं कि मनुष्य इनमें भूले नहीं।

अन्तर्बहिश्च पुरुषः कालरूपैः प्रयच्छतो मृत्युमुदामृतञ्च—भीतर बैठकर परमात्मा अमृतका दान कर रहा है, और बाहर बैठकर परमात्मा मृत्युका दान कर रहा है, इसलिए बाहरी रूपोंमें ज्यादा आसक्त मत होओ। अपनेको अन्तर्मुख करो। परमात्माको जो अपने हृदयका वासी है, अपना प्रियतम है, अपना सर्वस्व है—उसको छोड़कर प्रपंच जितना है, वह सब-का-सब काल है। इसलिए कालकी ओर दृष्टि मत डालो, परमात्माकी ओर दृष्टि डालो। **सर्वेषु कालेषु** सबको काल समझो। संसारकी जब कोई चीज तुम्हारे सामने आवे, तो समझो, कि यह काल आया हमारे सामने। काल आया, पहचानो। काल तुमको परमात्मासे विमुख कर रहा है, कालिक पदार्थोंमें लगा रहा है, मरने-जीनेवाले पदार्थोंमें लगा रहा है, मकान-स्त्री-पुत्र आदिमें आसक्ति उत्पन्न कर रहा है। इसीका नाम काल है-मृत्यु। काल माने जो निगल जाये। संस्कृतमें काल शब्दका अर्थ है जो निगले। यह किसको नहीं निगल गया? हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपुको निगल गया; अज, रघु, दिलीपको निगल गया, रावण, कंसको निगल गया। धर्मात्माओंको भी निगल गया, और पापियोंको भी निगल गया। सूर्य-चन्द्रमाको निगल जाता है, ब्रह्मा-रुद्र-इन्द्रको निगल जाता है। निगलना माने चट्ट कर जाना, सबको चट्ट करता जा रहा है। कौन है ऐसा जो हमेशा रहा? तो बोले—कि ये सब कालके रूप हैं, जो तुमको निगलनेके लिए तुम्हारे सामने आते हैं। इसमें **मामनुस्मर** मेरी याद करो। मेरा स्मरण करो।

अच्छा बोले—अनुस्मर क्यों बोलते हैं? स्मर क्यों नहीं बोलते? स्मर माने स्मरण करो, और अनुस्मर माने—अनुस्मरण करो। देखो, इसका भी भाव है। क्या भाव है इसका? कि भाई, तुम तो बहुत याद करते हो; भगवान् तुमको कभी याद करते हैं कि नहीं? असलमें भगवान् तुमको बहुत याद करते हैं। इतनी याद करते हैं भगवान् तुम्हारी, कि अपनी याद ही नहीं करते हैं। वे तो तुम्हारी यादमें ही मुब्तिला हैं। मगन हैं। असलमें उनकी यादमें ही तुम्हारा स्वरूप है। यह प्रपंच कहाँ है? भगवान्‌के स्मरणमें है। बुद्धि दी, मन दिया, दिल दिया, आँख दी, कान दिया, हाथ दिया, पाँव दिया, तुमको ऐसा सुन्दर-अपने स्मरणके योग्य बना करके संसारमें रखा। स्मरण कर-करके एक-एक चीज बनायी।

जब ईश्वर सृष्टि बनाता है न, तब अनादि कालसे अब तकके तुम्हारे कामोंका स्मरण करके, तुम्हारे योग्य तुम्हें शरीर देता है, और बढ़िया-से-बढ़िया देता है। यह ईश्वरकी बड़ी भारी कृपा है—**दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर, देत जो**

फल चारि को। अच्छे वंशमें जन्म दिया, सुन्दर शरीर दिया। इससे तुम धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त कर सकते हो। उसने तो तुम्हारा बहुत स्मरण किया। और बैठाया कहाँ? अपने दिलमें, अपने संकल्पमें बैठाया। संकल्पमें पैदा किया, संकल्पमें बैठाया। तुम ईश्वरके भीतर बैठ हुए हो। जैसे सपनेमें तुमने किसी सोहनको, मोहनको देखा; वह कहाँ बैठा था? वह तुम्हारे दिलमें बैठा था। ऐसे ईश्वर तुमको अपने अन्दर देख रहा है। कहाँ बैठे हो? कि ईश्वरके दिलमें बैठे हो। उसीमें साँस लेते हो, उसीमें सोते हो, उसीमें जागते हो, उसीमें खाते हो, उसीमें पीते हो, उसीमें विराजमान हो। ईश्वरने तुमको अपनी आँखोंसे कभी ओझल नहीं किया, लेकिन एक तुम हो, कि जिसने ईश्वरकी याद ही नहीं की। उसकी याद नहीं कि, जिसने तुमको अपने दिलमें बैठाया, जिसके भीतर तुम साँस लेते हो, जिसके बिना तुम्हारा कोई अस्तित्व ही नहीं है।

भगवान् कहते हैं—मैं तुम्हारी बहुत याद करता हूँ, और तुम्हारे सामने ये कालके भेड़िये बैठा दिये हैं। इनकी ओर मत देखो, मेरी ओर देखो-**मामनुस्मर।** मेरा स्मरण करो। मेरा अनुस्मरण करो।

अच्छा, अनुस्मरणका दूसरा भाव क्या है? बोले—महाराज, हम आपकी कैसी याद करें? ईश्वरसे कभी-कभी बातचीत कर लिया करो। उनसे पूछो कि याद तो उस चीजकी आती है, जो देखी हुई हो, सुनी हुई हो, खाई हुई हो। अब आप तो ऐसे खिंचकर बैठे हो सातवें आसमानमें कि न देखा, न छुआ, न सूँघा, न चाटा। क्या याद करें तुम्हारा? स्वाद याद करें तुम्हारा, कि गन्ध याद करें तुम्हारी, कि रूप याद करें तुम्हारा, कि स्पर्श याद करें? क्या याद करें तुम्हारा? भगवान्‌ने कहा-**अनुस्मर**। यह बात तो ठीक है कि स्मरण देखे हुएका, सुने हुएका, खाए हुएका होता है—लेकिन तुम तो स्मरण मत करो, अनुस्मरण करो, माने महात्मा लोग जिस ढंगसे अब तक स्मरण करते आये हैं, उनके अनु-उनके पीछे चलकर मेरा स्मरण करो। **महात्मा अनुस्मर** महात्माओंके पीछे हो जाओ।

मुनिन प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि माई।

उन्होंने कहा कैसे भगवान्‌की याद करें? बोले जैसे-जैसे महात्माओंने याद किया है। गोलीके रूपमें याद करो न! गोली कैसी? बोले-सालिग्रामकी। काले पत्थरकी गोली भी तुमको याद नहीं आती है? उसी रूपमें याद करो। तुलसीका पत्ता चढ़ाओ।

आठों पहर चौंसठ घड़ी, ठाकुर पर ठकुराइन चढ़ी।

सालिगराम पर तुलसीका पत्ता रखा हुआ है, करो याद। शंकरजीकी एक मूर्ति ले लो-क्या बढ़िया गोल मटोल नर्मदाका एक पत्थर, नर्मदा चक्र, उस पर बेल पत्र रखा, अक्षत रखा, मनन कर रहे हैं—**अनुस्मर**। बोले—भाई, कैसे मालूम, कि यह नर्मदा-चक्र ईश्वर है? कैसे मालूम कि यह सालिगराम ईश्वर है? महात्माओंने इस रूपमें स्मरण किया है। इसलिए इनका स्मरण भगवान्‌का स्मरण है। इसी रूपमें महात्माओंने स्मरण किया है—मुरली मनोहर, पीताम्बरधारी, श्याम सुन्दर, वह यमुना पुलिन-विहारी भगवान्-उसका स्मरण करो। **मानुस्मर**।

बोले-महाराज, हम तो आपका स्मरण करने बहुत बैठते हैं। हे भगवान्, कभी समय मिलता है, तो स्मरण करने बैठ जाते हैं। लेकिन ये जो कालके रूप हैं, ये आकर सताते हैं, और कहते हैं—ऐ! उधर मत देखो। मेरी ओर देखो। जब मनुष्य भगवान्‌का अपराधी होता है, गुरुका अपराधी होता है, भक्ति-प्रेमका अपराधी होता है, तब कालके जो बाहरी रूप हैं, वे उसके मनको खींच लेते हैं। तब उसकी आसक्ति ईश्वरके माने हुए रूपमें नहीं होती, तब उसकी आसक्ति अपने मन-गढ़न्त रूपमें होती है। मन-गढ़ंत रूप जो है, वह मायासे छुड़ा नहीं सकता, और महात्माओंका माना हुआ रूप जो है, वह मायाके चक्करसे छुड़ा सकता है। ये जो मायाके गढ़े हुए कालिक रूप हैं—यह जो कालकी सेना है—इसके साथ युद्ध करो—**युध्यस्व च**-लड़ते ही जाओ। दो काम करो एक तो भगवान्‌का स्मरण, और दूसरा जो बाहर कालके रूप तुम्हारे भीतर आवें, उनके साथ युद्ध करके, संघर्ष करके, लड़ाई करके उनको अपने दिलसे बाहर लिकाल दो—**युध्यस्व च**।

यह अर्जुनके युद्ध वाली बात दूसरी है। देखो ऐसा समझो हम ही अर्जुन हैं, और हमारे भगवान् हमको उपदेश कर रहे हैं। क्या उपदेश कर रहे हैं? कि देखो, अगर बाहरकी कोई चीज तुम्हारे दिलमें बैठनेकी कोशिश करे, तो **युध्यस्व च**, लड़ाई करके उसको बाहर निकाल दो। मेरे सिवाय कोई दूसरी चीज तुम्हारे दिलमें नहीं रहनी चाहिए।

यह महाराज बाहरकी चीजोंसे लड़ना, और अपना स्मरण करना—इन दो बातोंपर आप ज्यादा जोर क्यों देते हैं? देखो, भगवान्‌की करुणा हेतु पूर्वक बताते हैं। बोले—देखो, मैं चाहता हूँ प्यारे, कि **मामेवैष्यसि** तुम मेरे पास आओ। मेरे सिवाय किसी दूसरेके पास मत जाओ। यह भगवान्‌की लालसा है, कि कोई जीव मुझे छोड़कर दूसरेसे प्यार न करे।

माँने बच्चेको हौआ बताया। बोली-बेटा, घरमें जाना नहीं। अंधेरा है न! घरमें हौआ है। वहाँ भूत रहता है, प्रेत रहता है, आ जायेगा, पकड़ लेगा। क्यों बताया? इसलिए बताया कि यह बच्चा अबोध है, अनजान है। मुझे छोड़कर अंधकारमें चला जायेगा। वहाँ साँप हो, बिच्छू हो! क्या पता क्या कर बैठे? तो डराया। डरानेका अभिप्राय क्या है? कि बच्चा मुझे छोड़कर अन्यत्र कहीं न जाये। यह जो बच्चेके प्रति वात्सल्य है न, यह वात्सल्य ही तो भगवान्‌से यह कहला रहा है, कि मेरे पास बने रहनेका उपाय तुम्हें मैं बताता हूँ। **मामेवैष्यसि** मेरे पास आओगे, मेरे पास रहोगे। कैसे आओ, कैसे रहोगे? कि **मय्यर्पितमनोबुद्धिः** सारे कर्म मुझे अर्पित कर दो। और वस्तुएँ भी माँगते हैं **पत्रं पुष्पं फलं तोयं।** पत्ता, पुष्प—कुछ भी हमें दो। यह तो वस्तु हुई न! और सम्पूर्ण कर्म मुझमें अर्पित कर दो—**ब्रह्मण्याधाय कर्माणि।**

और भी अनेक प्रसंग गीतामें ऐसे हैं—कि सब कर्म मुझे अर्पित कर दो। फल माँगते हैं कि मुझे दे दो। कर्म माँगते हैं, द्रव्य माँगते हैं और मन-बुद्धि माँगते हैं-कि मुझे दे दो। बस शरीर नहीं माँगते हैं। वे जानते हैं कि यह मांस-चामका पुतला इसमें जो विष्ठा-मूत्र भरा हुआ है न—यह माँगने योग्य नहीं है। छोड़ो इसे। यह तो जहाँ-का-तहाँ रख देने योग्य है। पर इससे जो काम होता है, वह काम तो मेरे लिए करो।

असलमें शरीरका होना—माने काम करना। निकम्मेका नाम तो शरीर नहीं है न! भगवान् माँगते हैं कि शरीर नहीं, शरीरका कर्म हमको दो। कर्मसे जो वस्तुएँ मिलती हैं, सो हमको दो। कर्मसे जो फल होता है—सुख-दुःख सो हमको दो। ऐसे ही है यह, जैसे अक्रूरसे कह दिया—**त्वास्तां देवभक्तस्य**—यह स्यमन्तक मणि अक्रूरजी, तुम्हारे पास रहे। तुम रोज पूजा करते रहना। तो महाराज, फिर आपने लिया क्या? कि हम लेते हैं न! तुम रोज अपने घरसे अक्षत लेकर, शक्कर-चन्दन लेकर, धूप-दीप लेकर खूब मणिकी पूजा करना, और इससे जो सोना मिलता है, सो वह रोज मेरे पास भेज दिया करना। वही नहीं रखना अपने पास। यह शरीर तो है मणिके समान, लेकिन तुम इसे अपने पास रखो। इससे जो रोज-रोज कर्म होता है—इससे जो वस्तुएँ रोज-रोज मिलती हैं-वे भगवान्‌को अर्पण करदो।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः अपने कर्मके द्वारा भगवान्‌की पूजा करो।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यह तो वस्तु हो गयी, और **स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य**—यह कर्म हो गया। अब रह गया मन; रह गयी बुद्धि; यह भगवान्‌को बहुत प्यारा है। क्योंकि जब कोई किसी चीजको बारम्बार माँगे, तो समझ लेना कि यह बहुत प्यारा है। गीतामें भगवान् मन-बुद्धिको बारम्बार माँगते हैं—

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्‌भक्तः स मे प्रियः।

अब जरा मन-बुद्धिके अर्पणपर एक दृष्टि डालें।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

मय्यर्पितमनोबुद्धिः मामेवैष्यस्यसंशयः—मन और बुद्धि भगवान्‌को अर्पण करना। आप जानते तो होंगे न, मनकी लम्बाई कितनी, मनकी चौड़ाई कितनी? असलमें इसका पता किसीको नहीं है। जैसे भूतकी लम्बाई-चौड़ाई नापना मुश्किल है—कभी लम्बा, कभी नाटा; कभी दुबला, कभी चौड़ा—यह मनका ऐसा स्वरूप ही है। मनको महात्मा लोग पहचानते हैं।

असलमें अपने मनको, अपनी बुद्धिको पहचान लेना—यह साधारण लोगोंका काम नहीं है। वे तो चाँदको पहचानते हैं। एक हमारे महात्मा थे परिचित, काशीसे कोई पाँच-सात मील दूर एक मधईपुर गाँव है—वहाँ रहते थे। नूरपुर तक तो हम इक्केसे भी चले जाते थे; लेकिन तीन-चार मील पैदल चलना पड़ता था उनके पास जानके लिए। वे एकबार एक राजाके बगीचेमें गये। राजा साहब घूमने आये, तो उनके मुसाहिब गये—कि ओ भिखारी, हट जा। क्यों बैठा है? राजा साहब आ रहे हैं। वे बैठे हुए थे, भिखारीके रूपमें ही थे। बोले—राजा साहब कौन होते हैं? नहीं हटूँगा। अब दो-दो बात हो गयी; लड़ाई हो गयी। अब आजकल तो लोग राजा साहबको इतना बड़ा मानते हैं, कि जनता ही हटाती है—कि भाई, कै पीढ़ीके राजा साहब हैं? पाँच बरसके राजा हैं। इन लोगोंका कुल राजत्व काल जो है न, पाँच बरसका है। उसमें भी शंका ही लगी रहती है कि हटो, हटो-हटो। बोले—कौन राजा हैं भाई तुम्हारे? राजा साहबने देखा कि कुछ कहा-सुनी हो रही है, तो टहलते हुए आगये, बोले—भाई, तुम कौन हो? महात्माजी बोले, कि तुमको मैं क्या दिखता हूँ? आँख नहीं है तुम्हारी? बोले—हमको तो तुम मनुष्य दिखते हो। वे बोले कि तुम चमार हो। अब तो राजाको बड़ा क्रोध आया, सिपाहियोंसे बोले पकड़ो इसको। पकड़कर जब ले जाने लगे, तो धीरेसे उन्होंने एक सिपाहीको धकेल दिया। वह गिर पड़ा,

तो एक दाँत ही टूट गया उसका, और मुँहमें चोट लगी। पुलिस वालेने चालान कर दिया। ले गये डिप्टी साहबके पास। डिप्टी साहबने कहा कि भाई, तुम कौन हो? चाहते क्या हो? चाहते यह हैं कि तुम्हारी जेलमें हमारा एक मित्र महात्मा रो रहा है, तो उससे मिल आवें, जेल जाना चाहते हैं। हमारे राजाको चमार क्यों कहा?

बोले—जो चामकी परीक्षा करे, वह चमार ही है न। और तुम्हारे राजा साहब तो बस, चामकी ही परीक्षा करते हैं—यह मनुष्य है और यह पशु है। क्या? अरे, सब के भीतर आत्मा है, सबके भीतर परमात्मा है। उसपर तो दृष्टि है नहीं। चमार तो है ही है। वह एक जायसीकी बात आती है न—***मटिहहिं हंसत कि कोहरहिं?*** तुम माटीको हँस रहे हो, कि कुम्हारको हँस रहे हो? घड़ेको देखकर किसीको हँसी आ जाये, तो पूछना कि घड़ेमें जो माटी है, उसमें कोई त्रुटि है कि बनानेकी कारीगरीमें कोई कमी है? कारीगरी में अगर कम ही है, तो ईश्वरमें कोई कमी है, और माटीमें कमी है, तो घड़ेको क्यों हँसना? माटी काली है, तो घड़ेका क्या दोष? और बनानेमें कोई कमी है, तो भी घड़ेका क्या दोष?

लोगों की दृष्टि चामपर जाती है। ईश्वरको क्या चाहिए? बोले—ईश्वरको चाहिए मन, और ईश्वरको चाहिए बुद्धि। महात्मा लोग यह नहीं देखते, कि हमारा पाँव दबा रहा है, कि चंदन फूल माला चढ़ा रहा है। वे देखते हैं कि हमारे मनको क्या दे रहा है। हमारे मनको प्रेम दे रहा है, हमारे मनको आनन्दित कर रहा है, हमारा ध्यान लगनेमें मदद कर रहा है, समाधि लगनेमें मदद कर रहा है, हमारे जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखमें सहायक है। यह देखते हैं। उनके दिलको तुम क्या दे रहे हो? बोले—उनके दिलको देनेके लिए तो महारजा, हमारे पास क्या है? तो भगवान् भी भिखारी। अर्पण करो! क्या अर्पण करें? कि मन-बुद्धि तो मनकी लम्बाई आपको मालूम नहीं, चौड़ाई आपको मालूम नहीं। अच्छा, रंग-रूप मालूम है इसका? कि लाल है कि काला? पीला होता है कि नीला? अच्छा, उसके रहनेकी जगह मालूम है—नखसे शिखतक कहाँ रहता है? अच्छा, उसकी आकृति मालूम है—कि टेढ़ा है कि सीधा है? उसका वजन मालूम है? मनका वजन नहीं मालूम, लम्बाई-चौड़ाई नहीं मालूम, रंग-रूप नहीं मालूम। मन भगवान्‌को कैसे अर्पित करोगे? और बुद्धि—बुद्धिकी तो पूछो मत। मन कहता है कि हमको यह चीज चाहिए, तो बुद्धि बताती है—यह बेईमानी करोगे, तो तुमको यह चीज मिल

जायेगी। यह बुद्धि मनकी चेरी हो गयी, मनकी दासी हो गयी। असलमें मन बुद्धिका दास है। संस्कृतमें बुद्धि स्त्री है। उसका सेवक कौन? बोले—नपुंसक मन। बुद्धिका सेवक होना चाहिए मन, मनका सेवक बुद्धि नहीं होनी चाहिए, नहीं तो मन तो न जाने कहाँ ले जायेगा।

यह मन बुद्धि दोनों भगवान्‌को अर्पण करना। अभी तो रंग-रूप, वजन, लम्बाई-चौड़ाई नहीं देखा, रहनेकी जगहतक नहीं मालूम। कैसे अर्पण करोगे भगवान्‌को। मनपर कामका, भोगका, लोभका कब्जा है। दुश्मन के हाथमें जो चीज है, वह किसीको देने गये, तो कैसे दोगे?

बोले—हम तुमको एक गाँव देते हैं।

गाँव कहाँ है?

गाँव तो महाराज, पाकिस्तानमें छोड़ आये।

अब वह पाकिस्तानमें छोड़ा हुआ गाँव यहाँ जिसको दोगे, उसको क्या मिलेगा?

बोले—हम आपको एक जमीन देते हैं।

कि वह जमीन कहाँ है?

कि मैकमोहन रेखाके उस पार है।

नारायण कहो! जब हवाई जहाज मंगल ग्रहमें जाने लगेंगे, तो वहाँके लिए एक जमीन हम आपके लिए रिजर्व कर देते हैं! अरे भाई, तुम्हारे हाथमें जो चीज नहीं है, वह कैसे दोगे? तुम्हारे मनपर जो कामका विकार, क्रोधका विकार, लोभका विकार है—मन तो तुम्हारा किसीके रागमें रँगा हुआ मारा-मारा फिरा रहा है, किसीके द्वेषमें काला पड़ रहा है। किसी चीजके लोभमें बाजार-बाजार भटक रहा है, कैसे दोगे भगवान्‌को?

यह मन-बुद्धि भगवान्‌को अर्पण करनेका अर्थ क्या है? यह प्रसंग अद्‌भुत है; जो लोग साधना करते हैं, उनकी समझमें आता है। इसके सम्बन्धमें पहली बात यह है, कि मनका संकल्प ही मनका स्वरूप है; और विचार ही बुद्धिका स्वरूप है। मन और बुद्धि पकड़में नहीं आते हैं, लेकिन उनका जो कार्य है न, वह पकड़ में आता है, देखो, आगको आँखसे देखो, कि इसमें जलानेकी ताकत कहाँ है। आँखसे नहीं मालूम पड़ेगी, लेकिन हाथ उसके पास जायेगा तो जलेगा न! अग्निमें जो शक्ति है, वह कार्यगम्य है। कार्यगम्य है—माने उसका कार्य देखकर पता चलता है। मनका कार्य क्या है? संकल्प करना। बुद्धिका कार्य क्या है? विचार करना।

भगवान्‌को मन बुद्धि अर्पित करनेका अर्थ क्या है? माने भगवान्‌के बारेमें विचार करो, और भगवान्‌के बारेमें संकल्प करो, तो मन और बुद्धिका भगवान्‌के प्रति अर्पण हो गया।

अब समझो—एक गोपी घरमें झाड़ू लगा रही है। सोच क्या रही है? कि झाड़ू लगाकर मार्गको स्वच्छ कर दें। हमारे श्यामसुन्दर माखन चोरी करनेके लिए हमारे घरमें आवेंगे, तो उनके पाँवमें कोई कंकड़ी न गड़ जाये। उसके मनमें यह संकल्प हो रहा है। आप सोचो—कि उसका मन भगवान्‌में अर्पित है कि नहीं? यही भगवान्‌में अपने मनका अर्पण हुआ; क्योंकि हम मनसे जो सोच रहे हैं, वह भगवान्‌के लिए सोच रहे हैं।

बोले—भाई, श्यामसुन्दर तो छोटे हैं, और यह हमारा छींका ऊँचाईपर है। अब वे मक्खन निकालने आवेंगे, तो उनका हाथ कैसे पहुँचेगा? तब तो कोई दूसरा उपाय करें; नीचा करें तो घरवाले डाँटेंगे। क्या उपाय करना चाहिए? तब तो भाई, पहलेसे ही ऊखल ऐसी जगह रखना चाहिए, कि वे आवें, और ऊखलपर चढ़ जावें। उनके हाथसे छींका छू जावे। बुद्धिमानीका काम हुआ न! पहलेसे ही उसने बुद्धिमानी की भगवान्‌के बारेमें, कि श्यामसुन्दर आवेंगे—कृष्ण-कन्हैया आवेंगे, ऊखल नीचे रहेगा, उसपर चढ़ेंगे, झट उनके हाथसे छींका छू जावेगा।

अब यह देखो, बुद्धिसे जो पहले उनके विषयमें चिन्तन किया, तब उसके अनुरूप चिन्तन किया, यह मन बुद्धिका अर्पण है। बुद्धि द्वारा निरन्तर उनका चिन्तन होवे, उसका तरीका क्या है? कि

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥ ८॥

अभ्यास द्वारा परम पुरुषको प्राप्त किया जा सकता है। अब बाकी कल सुनावेंगे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

★

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥ ८॥

यह अभ्यास क्या है? एक ही वस्तुका बार-बार चिन्तन करना अभ्यास है। संसारकी वस्तुओंमें, संसारके रिश्तों-नातोंमें यही अभ्यास ही तो काम करता है न! यह अमुक मेम साहबके पति हैं, या अमुक पिताके पुत्र हैं—बाहरी वस्तुओंके साथ ही मिलाकर, बाह्यार्थके साथ अपने रिश्ते-नाते जोड़कर-बाह्यार्थ हिन्दीमें बोलें, तो 'वाहयात' ही होगा—हम अपनेको सिद्ध मानते हैं। हमारे पास यह-यह संचय होवे! क्या संग्रह हो? कि हमारे पास धन रुक जावे। अरे बाबा! उसको तो तुम्हारे पिताजी भी अपना मानते थे, और तुम भी मानते हो; और बेटा भी अपना मानेगा। वह है किसका? तुम्हारे पिताजीके पास नहीं था; अब तुम्हारे पास आया! बेटेके पास रहेगा कि नहीं, इसका कुछ ठीक नहीं। इतनी जमीन, इतना मकान और इतने कारखाने—ये जो आश्रय बननेवाली चीजें हैं, उनके कारण अपनेमें बड़प्पनका आरोप, फिर विषय-भोग प्राप्त होते हैं हमको।

हम अभिमान करके सुखी होते हैं, कि हमारे पास इतना है। यह झूठी बात नहीं है! हम बुद्धिमानीका इतना अभिमान करते हैं, और एक चोट सिरपर लग जाय और बुद्धि महारानी छोड़कर बिलकुल भाग जायेंगी। विद्याका अभिमान ऐसा है, हम इतने विद्वान् हैं, और जब वृद्धावस्था आती है, तो विस्मरण होने लगता है; सब पढ़ी हुई विद्या भूल जाती है! एक सज्जन थे हमारे—कई लोग जानते हैं उनको—गीताको वे सीधे भी पढ़ते थे, उलटे भी पढ़ते थे। एक शब्द किन-किन श्लोकोंमें आया है, किस शब्दका प्रयोग किस श्लोकमें किस अर्थमें हुआ है—हमारे सामने पाठ करते थे। पर जब वृद्धावस्था आयी, तो एक श्लोक शुद्ध नहीं बोल सकते थे। बुलाया उन्होंने अपने मित्रको और कहा—कि अब तो भाई, तुम महावाक्यका श्रवण कराओ—

अयमात्मा ब्रह्म।

यह हम विद्या, बुद्धि, धनका अभिमान करके जो सुखी होते हैं, वह स्थिति कितनी अल्प है! तो—

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥ भा.१.८.२६

अपनी कुलीनताका अभिमान, अपने ऐश्वर्यका अभिमान, अपनी विद्याका अभिमान! कैसे-कैसे नशेमें आ जाता है मनुष्य। नशा माने जिसमें शान्ति न हो—न शं यस्य=नशा। ऐसा नशेमें आजाता है, कि उसका मन भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेका होता ही नहीं है! मनोराज्यका सुख—आज ऐसा भोजन करेंगे, ऐसा करेंगे! लेकिन सोचते ही रह जाते हैं—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचारयति कोषगते द्विरेके हा हन्त! हन्त!! नालिनीं गज उज्जहार॥

प्रातः होगा, सूर्योदय होगा, कमल खिलेगा—कमलकी कलीमें बन्द भौंरा इस तरह सोच रहा था कि हाथी आया और कमलको खा गया और भौंरेको भी खा गया! **आशा पिशाची!**

यह होगा, वह होगा! यह करेंगे, वह करेंगे! एकने एक घड़ा तेल खरीदा, एक शेख चिल्लीके सिरपर रख दिया। उसने सोचा—आज इतनी मजदूरी मिलेगी। उससे मुर्गी खरीदेंगे। फिर बकरी खरीदेंगे, गाय खरीदेंगे। मकान बनावेंगे, ब्याह करेंगे, बेटे होंगे। हम बुड्ढे होकर मसनद लगाकर खाटपर बैठे होंगे। बेटा आकर कहेगा—पिताजी, भोजन करने चलो। हम कहेंगे—ओह, अभी नहीं—और घड़ा सिरपरसे गिर पड़ा। मालिकने कहा—ऐ, तुमने हमारा एक घड़ा तेल गिरा दिया। उसने कहा—तुम्हारा तो एक घड़ा तेल लुढ़का, हमारी तो सारी गृहस्थी खराब हो गयी है!

इस प्रकार मनोराज्यमें खुश होते हैं। यह दृष्टान्त देकर बताया कि अभ्यास जगा लेते हैं अपने जीवनमें, और वह आदत पड़ जाती है। जिसको आसन करनेकी आदत है, सूर्य-नमस्कार करनेकी आदत है, कुछ खाने-पीनेकी आदत है—वह जब पूरी होती है, तब तो बहुत सुखी होते हैं और वह अभ्यास पूरा न हो, तो दुःखी हो लेते हैं। इस प्रकार संसारमें जितने भी सुख हैं, उनको चार प्रकारके सुखोंमें बाँट दिया है—अभिमानका सुख, विषय-भोगका सुख, कुछ मनोराज्यका सुख, और कुछ जैसी आदत पड़ गयी है।

अभ्यास शब्दका अर्थ हमारे बाबाने बताया था—दुहरौनी। बार-बार जिस चीजको दुहराते हैं, उसकी आदत पड़ जाती है। संस्कृतमें भी अभ्यास शब्दका ऐसा ही अर्थ है—दुहराना। वही खाते-खाते, वही करते-करते, वही देखते-देखते आदत पड़ जाती है। इसीसे फिर जातिका सुख होता है, मजहबका सुख

होता है, भाषाका सुख होता है—ये सब सुख जीवनमें आ जाते हैं। यदि इन बनावटी सम्बन्धोंसे अपनेको मुक्त करना है, तो अपनी आसक्तिका मुँह मोड़ना पड़ता है, भगवान्‌की ओर चलना पड़ता है। क्यों? कि सब अभिमानोंमें जो-जो, जितनी-जितनी आसक्ति है, संसारके कोटि-कोटि मनुष्य जिन-जिन वस्तुओंका अभिमान कर सकते हैं—वह सब एक भगवान्‌में समाहित है। भगवान् मिल गये, तो सारी वस्तुएँ मिल गयीं। और छोटी-छोटी वस्तुका जो अभिमान है, वह छूट जायेगा। वह महाराज, अलग-अलग संगीत सीखने जाते हैं, अलग-अलग स्पर्श करने जाते हैं, अलग-अलग सौन्दर्य निहारने जाते हैं, अलग-अलग माधुर्य, अलग-अलग रस लेनेके लिए जाते हैं, अलग-अलग सुगन्ध लेनेके लिए जाते हैं—**सर्वरसाः सर्वगंधाः**—सम्पूर्ण विषय-भोगमें जो आनन्द है, वह तभी प्राप्त हो सकता है। सब आनन्द परमात्मामें निवास करते हैं। और अभ्यास करके जो बनाओगे, वह छूट जायेगा।

हमारे एक बड़े-बूढ़े थे, उन्हें दण्ड-कसरत करनेका अभ्यास था। जब बुड्ढे हो गये, तो एक-एक हड्डी-पसलीमें उनको दर्द होता था। लेट जाते थे, और हम बच्चे थे—कहते थे, हमारे ऊपर चढ़ो, और एड़ीसे हमको पीटो; शरीरमें दर्द हो रहा है। ये संसारके जो सुख हैं महाराज, वे सब बन्धनमें डालनेवाले हैं। विषय कहते ही उसे हैं, जो हमको अपने साथ बाँध ले—**विषिण्वन्ति; विषयन् जना एभिः**। विषय शब्दकी पाँच प्रकारकी व्युत्पत्ति व्याख्याकारने दी है। संसारमें जिस-जिसका अभिमान करोगे, वह तुम्हें बाँधेगा, जिसका भोग करोगे, वह तुम्हें बाँधेगा, जिसका मनोराज्य करोगे, वह तुमको खींचकर ले जायेगा। जिसकी आदत डालोगे, वह तुम्हें अन्तमें दुःखी छोड़कर चला जायेगा। इसलिए बाबा, सब अभिमानोंकी जहाँपर निवृत्ति हो जाती है, सब भोग-वासनाएँ जहाँपर मिट जाती हैं, सारे मनोराज्य जहाँपर समाप्त हो जाते हैं, और जहाँ आभ्यासिक प्रयोग नहीं होते हैं, तब हमारी आत्मा भगवान्‌से एक हो जाती है। आभ्यासिक प्रयोगका क्या अर्थ है? यह आत्मासे प्रेम होता है स्वाभाविक और जब अन्यसे प्रेम करते हैं, तब वह होता है आभ्यासिक! बनाये रखना पड़ेगा तो तनाव होगा। लेकिन जब भगवान् हमारी आत्मासे एक हो जाते हैं, तो हमारा जो स्वाभाविक प्रेम है, वह भगवान्‌से हो जाता है, और भगवान्‌की जो पूर्णता है, वह हमारी हो जाती है। तब हमारे प्रेममें, हमारी भक्तिमें किसी प्रकारका तनाव नहीं रहता है। नहीं तो जो साक्षी इष्टदेव देख रहा है, उसे आगे लाकर देखनेका प्रयास करो—तनाव बढ़ जायेगा। जो वैकुण्ठमें रह रहा है, उसको कहीं खींचके

लाकर अपने सामने देखनेका प्रयास करो—पकड़े रहोगे, नहीं तो भाग जायेगा। साक्षीको आगे बैठानेका प्रायस करोगे, वह कभी बैठेगा ही नहीं।

यहाँ 'अभ्यासयोगयुक्तेन' क्या है? यहाँ इसका अर्थ है कि मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर आदि योग-साधनोंसे जो युक्त हैं। अब ये जो तान्त्रिक योगी हैं न, हठयोगी हैं, गोरखपंथी हैं, कीनारामी हैं, राधास्वामी हैं—ये सब जो हैं, कोई तो मणिपूरसे योगाभ्यास शुरू करते हैं, कोई अनाहतसे शुरू करते हैं। इस सबकी योगकी पद्धतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। अपने बचपनमें मैंने एक पुस्तक पढ़ी थी, जिसमें एक सौ आठ पंथोंका जिक्र था, उनकी साधना-पद्धति, उसकी प्रक्रिया, और सब मैंने रट लिया था। वे कोई तो सहस्रारतक पहुँचते हैं, कोई भँवर गुफामें जाते हैं, कोई अलखलोकतक पहुँचते हैं और शैव पंथी तो उन्मनावस्थातक पहुँचते हैं। इस सबका क्या तात्पर्य है? यही कि जैसा अभ्यास करोगे, वैसा ही दीखने लगेगा। मन जैसा चाहता है, वैसा संसार बना लेता है; वैसा ही अनुभव होने लगता है।

देखो, आपका मन कहाँ जाता है? कहाँ एकाग्र होता है? आप अपने बेटेके बारेमें सोचते हो, तो कैसे लगातार वही सोचते रहते हो! धनको कितना महत्त्व देते हो! लाखों रुपये गिन लो, कभी एक रुपयेकी भी गलती नहीं होगी। अपने प्यारेसे बातें करो! गोपियोंका मन देखो; अपने प्यारे श्यामसुन्दरके ध्यानमें ही डूबी रहती थीं। उनका मन चंचल नहीं होता था न!

ऊधो, मन नाही दस-बीस।
एक हुतो सो गयो श्याम संग। को आराधे ईस॥

मन तो स्वभावसे चंचल है न! मगर प्यारेके ध्यानमें उसकी चंचलता कहाँ रहती हैं! मन तो अपने प्यारेसे हटता ही नहीं। कहीं कोई रुकावट हुई, गतिरोध हुआ, तो फिर वापिस आ गया—वहींका वहीं! **नान्य-गामिना।**

अब **अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यमामिना**—इसमें दो बातें हैं—अभ्यास और वैराग्य। चेतसा नान्यागामिनामें है वैराग्य—राग-द्वेषका अभाव। जब अपने प्यारेको छोड़कर मन कहीं और जाता ही नहीं, तब संसारके अन्य विषयोंसे प्यार कैसे होगा? द्वेष कैसे होगा? उनका तो अस्तित्व ही नहीं है! अपने प्रियके बिना अन्य कोई वस्तु रही कहाँ, जिसका चिन्तन किया जाय! और इस राग-द्वेषका लोप तो सुषुप्तिमें भी नहीं होता! कल जिससे राग था, कल जिससे द्वेष था, आज जागनेके बाद भी उसमें राग बना हुआ है, उससे द्वेष बना हुआ है। तो राग-द्वेषका

बीज सुषुप्तिमें भी रहता है। इसका लोप कैसे हो? चित्त जब एकाग्र होता है, तब बुद्धिमें समता आ जाती है। जब परमात्मामें मन टिक जाता है, तब सांसारिक वस्तुओंसे वैराग्यकी प्रवृत्ति आ जाती है। और इसके बिना कभी राग इधर खींचेगा, कभी द्वेष उधर खींचेगा। जीवनमें समता-दृष्टि बहुत जरूरी है।

महात्मा गाँधीके आश्रममें एक बार किसीने एक घड़ी चुरा ली। गाँधी जीको जब यह मालूम पड़ा, तो उन्होंने कहा कि इसे मारो मत; उसने चोरी की है, इसका मतलब है कि इसे घड़ीकी जरूरत है। हमें तो इसकी जरूरत है नहीं, इसलिए यह इसे ही दे दो! तो यह है राग-द्वेषका अभाव, समताकी चित्तमें स्थिति!

इन दो बातोंके साथ भगवान्‌ने एक तीसरी बात भी यहाँ कही है— अनुचिन्तयन्। परमात्माका अनुचिन्तन करो। यहाँ गीता योगदर्शनसे थोड़ी अलग हो जाती है। योगदर्शनमें अभ्यास भी है, वैराग्य भी है, मगर अनुचिन्तन नहीं है। अनुचिन्तनसे तात्पर्य क्या है? कि तुम्हारे आदरणीय, तुम्हारे श्रद्धेय महानुभाव जैसा चिन्तन करते हैं, उसके अनुसार तुम चिन्तन करो। तुम्हारे गुरु जैसा चिन्तन करते हैं, उस तरह, उसीका तुम अनुचिन्तन करो—

प्रथम मुनिन हरिकीरित गाई।
तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥

यह अनुचिन्तन शास्त्र पढ़ने मात्रसे प्राप्त नहीं होता है, केवल शास्त्र-पुराण पढ़कर इसे जाना नहीं जाता है; यह तो गुरुके आगमसे ही मिलता है! वेद-पुराण तो सबके लिए हैं, सब उनका अध्ययन कर सकते हैं, अनुशीलन कर सकते हैं, किन्तु जबतक गुरु अपने चेलेको जमाई बनाकर इस विद्याका दान नहीं करता— बाप अपनी बेटीका कन्या-दान नहीं करता, तबतक विद्या उसे प्राप्त नहीं होती है!

भक्तलोग बहुत बढ़िया बात कहते हैं। वे कहते हैं—परमेश्वरने चिन्तन करके तुम्हारे कामकी चीजोंको तुम्हें दिया है। उसने तुम्हारी साँस लेनेके लिए हवा बनायी; पीनेके लिए जीवित रहनेके लिए जल बनाया। रहनेके लिए धरती बनायी। देखनेके लिए आँख दी, सुननेके लिए कान दिया, बोलनेके लिए जीभ दी। उसने प्रेम करनेके लिए तुम्हें दिल दिया; सोचने-विचारनेके लिए प्रतिभाशाली मस्तिष्क दिया। उस ईश्वरके प्रति तुम कभी कृतज्ञ होते हो? जैसे ईश्वर आपका चिन्तन करता है, उसी तरह आप भी उसका अनुचिन्तन करो। उसने आपको प्यार दिया है, आप भी उसे प्यार दो। उसने आपको आँख दी है, आप भी उसको आँख दो—उसके सामने ले जाकर डाल दो अपने आपको। आप इस बातका चिन्तन करो, कि उसका

प्रेम आपके ऊपर कितना वर्ष रहा है—तो आपके हृदयमें अपने आप ईश्वरसे प्यार हो जायेगा। पानी देखकर पानी बढ़ता है न! समुद्रमें सबसे अधिक वर्षा होती है। आपके हृदयमें विश्वास जम गया कि सामनेवाला आपसे बहुत प्रेम करता है, बस, अपने आप उसके साथ आपका प्रेम हो जायेगा।

पहले विश्वास होता है, फिर प्रेम होता है। संशय प्रेमको बाधित करता है; संशय हुआ, और प्रेमकी नदी सूख गयी! संशय हुआ, तो सावधानी आगयी, और अलगाव आया। पूरा विश्वास होगया, तो प्रेमीमें अपने आपको मिला दिया। तब प्रेमी अगर चाँटा भी लगा दे, सब कुछ छीन भी ले—तब भी आनन्द ही आनन्द है।

अनुचिन्तयन्—आप देखो, ईश्वर आपसे कितना प्रेम करता है। देखो, और आनन्द लो। लौकिक प्रेममें तीन दल होते हैं—माने प्रेमी अलग होता है, प्रियतम अलग होता है और प्रेम अलग होता है। जो ईश्वर है, उसमें प्रेमी, प्रेम और प्रियतम—तीनों एक हो जाते हैं। प्रेम ही प्रियतम हो जाता है, प्रेम ही प्रेमी हो जाता है। तब उस दिव्य पुरुष-परम पुरुषकी प्राप्ति होती है—**परमं पुरुषं दिव्यं**। परम पुरुष—माने पुरुषोत्तम। वह दिव्य है—**दिव्यो अमूर्तः पुरुषः**। आप उसे गोदसे उतार कर फेंक देते हैं, मगर वह आपको अपनी गोदमें रखता है। इतना प्यार करता है वह आपको।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ ९॥

वह परम पुरुष कैसा है? देखो, यहाँ अर्जुनको देखते-देखते श्रीकृष्ण छन्द ही भूल गये! **पुराणमनुशासितारं**—बोलनेपर छन्दमें एक मात्रा कम हो जाती है। जब **पुराणम् अनुशासितारम्**—ऐसा करके अलग-अलग बोलेंगे, तो मात्रा पूरी होगी। गाकर इस मात्राकी कमीको पूरा कर सकते हैं। इससे भगवान् कृष्णका संगीत-प्रेम स्पष्ट हो रहा है न! श्रीकृष्ण गाकर अर्जुनको समझा रहे हैं! श्रीकृष्ण तो हैं ही संगीतमय! वृन्दावनमें बाँसुरी बजावें, कुरुक्षेत्रमें शंख बजाया! अब देखो, बाँसुरीमें रास है, शृंगार है, और शंखमें वीर रस है। गीतामें चिदानन्दमयी ध्वनि है; यहाँ आनन्द और ज्ञान—दोनोंका मेल है।

यह परमपुरुष कैसा है? बोले—कवि है, कविता सुनाता है। **कवयः क्रान्तदर्शिनः**—क्रान्तदर्शी है। कविको सिर्फ आँखके सामने जो है—वही नहीं सूझता, उसे तो उसके साथ-साथ जो आँखसे ओझल है—वह भी सूझता है; उसका वर्णन भी वह करता है।

जहाँ न जाये रवि, तहाँ जाये कवि। रावणकी बात करता है न, तो ऐसे, जैसे रावणसे एक हो गया हो। और रामकी बात करता है, तो मालूम होता है, जैसे रामसे एक हो गया। दोनों ही आँखसे ओझल हैं! ईशावास्य उपनिषद्‌में आता है—**कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः।** वेदमें कहा है, परमेश्वर अकेला था; समय कैसे कटे? तो उसने सृष्टि-रचना कर दी। यह सृष्टि जो है, वह परमेश्वरका काव्य ही है न!

वह परमेश्वर नित्य नया है—**पुराणम्। पुराति नवं एव इति पुराणम्।** जो चिर सनातन है, और नित नूतन है। और उसका हुक्म भी चलता है? कि हाँ भाई, वह अनुशासिता भी है। सूर्य वा चन्द्र भी उसकी आज्ञामें रहते हैं, आग जलती है, हवा बहती है, तारे छिटकते हैं। ऋतुओंके मुताबिक मौसम आते हैं; वर्षा ऋतुमें वर्षा होती है, सरदीमें ठंड होती है। मौत भी उसका अनुशासन मानती है। वह सबपर शासन करता है, लेकिन खुद पकड़ायीमें नहीं आता है!

और कैसा है वह? **अणोरणीयांसम्।** अणुसे भी अणु है। यदि वह अणु होता, तो वैज्ञानिक अबतक उसे तोड़ न डालते? तब उसमेंसे एटम बम निकलता। तो क्या वह परमाणु है? नहीं, वह भी नहीं है। अत्यन्त सूक्ष्म है वह! किसीकी पकड़में नहीं आता है।

चलो, वह कवि है, पुराण है, अनुशासिता है—सब ठीक है। लेकिन वह हमारे किस काम आता है? वह **सर्वस्य धातारम्** है। धाय बच्चेको दूध पिलाती है न; वैसे ही वह सबको दूध पिलाता है। गेहूँमें जो दूध है, वह किसने डाला है? अंगूरमें-से जो रस निकलता है, आममें-से जो रस निकलता है, वह किस लेबोरेटरीमें बनाया गया? वही सबको दूध पिलाता है। वही सबको धारण करता है; सबको अपनी-अपनी मर्यादामें रखता है। सूर्य अगर धरतीसे थोड़ा ज्यादा पास होता, तो धरती जल जाती! प्रकृतिको भी नियंत्रणमें रखा है न! समुद्र धरतीके चारों तरफ फैला है, लेकिन धरतीको डुबाता नहीं है। वायु चट्टानको उड़ाता नहीं है। और है वह **अचिन्त्यरूपं**—आपकी चिन्तन-शक्ति वहाँतक पहुँच नहीं सकती।

तीन बातोंपर आप ध्यान दें : वह सब जानता है, वह सब कर सकता है और उसका हृदय करुणासे भरपूर है। वही शरण लेने योग्य है। जिसके हृदयमें दया न हो, उसकी शरण क्या लेना! और असमर्थकी शरण नहीं ली जाती। मूर्खकी शरण नहीं ली जाती। क्रूरकी शरण नहीं ली जाती। परमात्मा सर्वज्ञ है; वह सर्वशक्तिमान् है और परम दयालु है। इसलिए वह शरण लेने योग्य है।

आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्—वेदकी श्रुति है यह—तमसः परस्तात्। हमारे जीवनमें कहीं-न-कहीं अंधकार है। ऊपर अंधकार है—आकाशकी नीलिमामें। हवाई जहाजसे देंखे, तो बहुत ऊँचाईमें जानेपर नीचे भी अंधकार ही दिखाई देता है—नीलिमा दिखाई देती है। माने हमारा जीवन अंधकारसे घिरा हुआ है, जहाँतक हमारी आँख देख सकती है, उतने हिस्सेमें ही प्रकाश है! जाग्रत् अवस्थामें तो बाहर अंधकार है और आँख बन्द करें, तो भीतर भी वही अंधकार है। देखो, स्वप्नमें जाग्रत्‌की स्मृति नहीं रहती और सुषुप्तिमें जाग्रत् और स्वप्न—दोनों नहीं रहते। वहाँ वेदके मंत्र भी नहीं रहते—**वेदा अवेदा भवन्ति।** वहाँ तो माँ—बापकी याद नहीं रहती; पति-पुत्र भी छूट जाते हैं। भगवान् कैसी असंगताका दर्शन आपको कराते हैं!

परमात्मा उस अंधकारमें भी आपके पास है। वह सुषुप्तिमें भी है, स्वप्नमें भी आपके साथ है और जाग्रतावस्थामें भी है। जो अंधकारमें भी आपको नहीं छोड़ता, वह स्वप्नावस्थामें—जहाँ आपका मन टिमटिमाता है—आपका साथ क्यों छोड़ देगा? वह तो आपके इतना निकट है, कि जाग्रतावस्थामें भी जब अपने पदार्थ, अपने सम्बन्धी भी छूट जाते हैं, तब भी वह नहीं छोड़ता! वह इतना अंतरंग है। वह युक्तिसे नहीं जाना जाता है—क्यों? क्योंकि युक्ति जो है, वह तो इस लोकमें होती है। दुनियादारीमें-से युक्ति आती है और ईश्वरतक पहुँच युक्तिसे नहीं होती।

उस परमात्माको जानो। सुषुप्तिमें जो प्रकाश है, उसकी पहचान हो जायेगी, तो परमात्माकी पहचान हो जायेगी। सुषुप्तिमें जो प्रकाश है, उसमें देश-काल नहीं है, लम्बाई-चौड़ाई नहीं है। वजन नहीं है, इसलिए वह द्रव्य नहीं है, और उमर नहीं है उसकी, इसलिए काल नहीं है। ऐसा वह प्रकाश है। एक बार उसका अनुभव हो जाय, फिर मौत भी उस ईश्वरको हमसे अलग नहीं कर सकती।

देखो, दुनियामें जितनी भी चीजें हैं, मृत्यु उन सबमें सबसे ठोस है। पर मृत्युसे भी ठोस है परमात्मा। फिर मृत्युके रूपमें भी परमात्मा ही मालूम होता है।

देख मौतका रूप धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे नाथ। भले बने हो लम्बकनाथ।

मृत्युमें भी वही है। दुःखमें भी वही है, शोकमें भी वही है; मोहमें भी वही है। वह कभी आँखसे ओझल होगा ही नहीं।

★

१०

गीताके आठवें अध्यायमें दो बातोंपर खास जोर दिया गया है; परमात्माका अनुचिन्तन, और परमात्माका अनुस्मरण। अनुचिन्तनमें जो चिन्तन करनेवाला है, उसका जोर काम करता है, और अनुस्मरणमें जो वस्तु देखी-सुनी और अनुभवकी हुई होती है, उसका स्मरण काम करता है। चिन्तनमें हमें जोर लगाना पड़ता है, लेकिन जब अनुभव हो जाता है, तब स्मरण अपने आप होने लगता है। अपने प्यारेका स्मरण करो; उसमें जोर लगाना पड़ता हैं? माँकी याद आती है, पिताकी याद आती है, मित्रकी याद आती है। जो हृदयको छू गया है, उसकी याद बार-बार आती है न। पहले है चिन्तन और बादमें है अनुस्मरण। परमेश्वर कैसा है? कि वह कवि है, पुराण है, अनुशासक है। पहले परमेश्वरके गुणोंका चिन्तन करो, और तब उस ईश्वरका अनुस्मरण करो।

अब अर्जुनका प्रश्न था, **प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥**

भगवान् कहते हैं :

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥

मृत्युके समय यदि तुम्हारा मन स्थिर है, अचल है, और हृदयमें भक्ति है, तो प्राणायामकी आवश्यकता नहीं होगी। मन परमेश्वरमें स्थित है, तो प्राण परमेश्वरमें अपने आप ही लीन हो जायेंगे।

यह भक्ति क्या ? भगवान्‌को अपने पास खींचनेकी विधि है। और यह कोई श्रम नहीं है, कोई अनुष्ठान नहीं है। यह जो भक्ति है, यह अनुष्ठान-सापेक्ष नहीं है। यहाँ तो केवल भगवान्‌को जानो। वे तुम्हारे हृदयमें हैं; तुम्हारे अंतर्यामी हैं, तुम्हारे साक्षी हैं। दूर नहीं हैं, उनसे मिलनेमें देर नहीं है। वे दूसरे नहीं हैं। वे

ही नित्य-प्राप्त जो भगवान् हैं, उनको अपने हृदयमें जो अभिव्यक्ति मिलती है, वह अभिव्यक्ति भक्तिसे आती है। भक्ति ही भगवान्को अपने हृदयमें प्रकट करती है, और बिना भगवद्-प्राप्तिके ये जीवनमें जो दुःख हैं, उनकी कभी निवृत्ति नहीं हो सकती।

अब आओ देखें, भगवत्प्राप्तिके लिए हमें क्या करना चाहिए। ये जो वेदान्ती हैं—वेदान्ती भी हम ही हैं, कोई दूसरा नहीं है—वे कहते हैं, आत्मा नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त है : ठीक है। मृत्तिका भी शुद्ध-बुद्ध मुक्त है; परन्तु यह जो घड़ा है, सो? बोले—अपने स्वरूपका बोध होगा, वह तो शुद्ध है ही है। यदि शुद्ध मानकर अपनेको छोड़ देते हैं, वेदान्त-ज्ञानका जो समुदाय है, उसका लोप हो जायेगा। जैसे घड़ेको शुद्ध करना चाहिए, उसमें गंगाजल-अमृत-भरना चाहिए, वैसे ही—तुम निरूपाधिक हो, यह बात सच्ची है, लेकिन जबतक उपाधिका भान हो रहा है तबतक —उपाधिका शोधन भी आवश्यक है। तो पहले उपाधिको शुद्ध कर लो। धर्मात्मा लोग कहते हैं—**करोति**; पहले काम करो। जब शास्त्र-युक्त, विधियुक्त काम करोगे, निषिद्धका परित्याग करोगे, तब तुम्हारा चरित्र शुद्ध होगा, इच्छाएँ शुद्ध होंगी। और जब इच्छाएँ शुद्ध हो जायेंगी, तो तुम्हें परमात्मैक्य-बोधक ज्ञान हो जायेगा। यहीं से चलो। जहाँ तुम धरतीपर बैठे हो, वहाँसे ही अपनी यात्रा प्रारम्भ करो। कर्ममें तितिक्षा होती है, भक्तिमें भगवान्की लिप्सा होती है, और तत्त्वमें जिज्ञासा होती है, सत्यके लिए जिज्ञासा होती है। भक्त लोग कहते हैं—धर्म और ज्ञानके बीचमें एक निष्ठा भक्ति रहती है—यदि तुम्हारी इच्छाएँ शुद्ध हो जायँ, भगवद्विषयक हो जायँ, तो उधर चरित्र भी शुद्ध हो जायेगा, धर्म भी आ जायेगा, और इधर ज्ञान भी आ जायेगा। यह मध्यवर्ती, इच्छाको शुद्ध करनेवाली भगवती भक्ति है।

जो विचारक हैं; वे कहते हैं कि अपनी जानकारी शुद्ध करो—**जानाति, इच्छति, करोति**। जब तुम्हारी जानकारी शुद्ध हो जायेगी, तो इच्छाएँ शिथिल हो जायेंगी, और उधर कर्म भी शुद्ध हो जायेगा। असलमें कौन आगे है, कौन पीछे—इस चक्करमें न पड़कर कहींसे भी—जहाँ तुम हो, भावमें हो तो भाव शुद्ध करो, क्रियामें हो तो क्रिया शुद्ध करो, ज्ञानमें हो तो ज्ञान शुद्ध करो। इसके लिए क्रमकी अपेक्षा रखनेसे कभी-कभी बड़ी कठिनाई होती है। दुराग्रह हो जाता है; और दुराग्रह हो जानेपर पंथमें ही रहना पड़ता है; गंतव्यतक कभी पहुँच नहीं सकते। पंथ पंथ है, और गन्तव्य गन्तव्य है। जहाँ पहुँचना है—मंजिले मक़सूद—वहाँ नहीं

पहुँचोगे, सरायमें ही रह जाओगे। इसके लिए भगवान्‌के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना बहुत जरूरी है।

अब भगवान्‌के साथ जो सम्बन्ध जोड़ेंगे, तो संसारके जो सम्बन्ध हैं, अभिमान हैं—वे अपने आप ही शुद्ध हो जायेंगे। आप भगवान्‌के सन्निकट होते जायेंगे। यह 'जाइये' वाला मार्ग नहीं है, 'आइये' वाला मार्ग है। अंतर्यामी परमात्मा हमारे भीतर है।

देखो, हम एक मंत्रका जप करते हैं। मन्त्र क्या है? **मननात् त्रायते**—जो मननके द्वारा हमारी रक्षा करे, उसका नाम मन्त्र है। गायत्री क्या हैं? **गायन्तं त्रायते**—जो जप करनेवालेकी रक्षा करे। यह मन्त्र है; इसमें मन्त्रार्थपर विचार करनेकी इतनी आवश्यकता नहीं है; वह तो योगका अंग है। और यह जो जप है, यह भक्तिका अंग है; इसमें ध्वनिमें ही इतनी सामर्थ्य है, जो आधिदैविक जगत्‌से हमारा सम्बन्ध जोड़ दे। वेदमें वेदका उच्चारण चाहिए। वेदके मन्त्रका उच्चारण करो, आधिदैविक जगत्‌से तुम्हारा सम्बन्ध जुड़ जायेगा।

अब यह आधिदैविक जगत् क्या है? जब हम मन्त्रका उच्चारण करते हैं—**इन्द्राय स्वाहा, इन्द्रं जुहोमि**। यहाँ जो सम्प्रदाय विभक्ति है, जो कार्य विभक्ति है, वही इन्द्र देवताको उपस्थित करती है। उस सम्प्रदायमें कर्मके अतिरिक्त और देवता नहीं है। भक्ति सिद्धान्त इस बातको मानता है; वह कहता है—आप भगवान्‌का नाम लो; नाम ही नामी है। नाम और नामीमें किसी प्रकारका भेद नहीं है।

नाम चिन्तामणि कृष्ण चैतन्य रस विग्रह।

अभिन्नत्वात् नाम नाम्नो।

नाम और अर्थको अभिन्न मानते हैं—

गिरा अरथ जल वीचि सम।

वागर्थौ सम्पृक्तौ।

वैसे ही शब्द और अर्थका स्वाभाविक औत्पत्तिक सम्बन्ध है। शब्दमें भी अर्थ है। कोई ईश्वरेच्छासे शब्द और अर्थका सम्बन्ध मानते हैं, कोई स्वाभाविक मानते हैं। कोई कहते हैं कि अर्थको प्रकट करनेका वाहन है शब्द। और, अर्थके मूलमें ही शब्द है। जब आप किसी मन्त्रका उच्चारण करते हैं, तो वह मन्त्र ही देवताका उपस्थापक है। मन्त्र ही आपके जीवनमें भगवान्‌को प्रकट करनेवाला है। उस शब्दमें ही इतनी शक्ति है। भगवान् नामके पराधीन हैं। नाम चिन्तामणि है, नाम साक्षात् कृष्ण है, नाम चैतन्य रसविग्रह है। बल्कि विचार करके देखें, तो बिना

नामके रूपका उद्देश्य ही नहीं हो सकता है। नामसे ही रूपका बोध होता है। आप जानते हैं—

नाम बिनु जाने करतल गत न परहि पहिचाने।

विज्ञानका जो नाम है, वह नाम सारे पर्दे हटा देता है। हमारे एक तालाब है। उस तालाबमें जब काई आजाती है, तो एक ढेला फेंकते हैं, तो काई झट फट जाती है, और वहाँ जलका दर्शन होने लगता है। ऐसे महाराज, यह जो शब्दकी ध्वनि है, बड़ा भारी काम करती है। इसको आप साधारण वस्तु न समझें, बल्कि वेद-ज्ञानमें तो अर्थका इतना महत्त्व नहीं है, उनके मन्त्रोंके उच्चारणका ही महत्त्व है। इसलिए आजकल वैदिक लोग जो मन्त्रका पाठ करते हैं, उनमें-से कुछ थोड़े ही ऐसे होते हैं, जो मन्त्रोंका अर्थ जानते हैं। कितने शब्द तो ऐसे हैं, जो भाष्यकारोंके लिए अत्यन्त दुरूह हैं। उनका निश्चय करना—कि किस शब्दका अर्थ क्या है—बड़ा कठिन है। **कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तद् स्पन्देन तद् व्यापकं स्पन्दस्य चापि कथा जगद्विदिता शब्दान्वयी सर्वदा।**

जहाँ कार्यकी उत्पत्ति होती है, वहाँ स्पन्दन अवश्य है, ईषत् चलन—थोड़ा-सा हिलना होगा; और जहाँ-जहाँ हिलना है, वहाँ शब्द भी है।

जगत्के मूलमें शब्द है। वह शब्द ही अर्थको प्रकट करनेवाला है। वैयाकरण भी शब्दको ऐसा मानते हैं—जिनसे अर्थका स्फुरण होता है। तो ऐसी स्थितिमें भगवान्के नामका जो जप है, मन्त्रका जो जप है—भक्तिके मार्गमें सारी बाधाओं और सारे विघ्नोंको दूर करनेवाला है। और यह कर्मेन्द्रिय—जीभसे साध्य है। आप इसके विज्ञानपर ध्यान दो; आप यही नाम क्यों लेते हैं? यह भगवान्का नाम है—ऐसी आपकी श्रद्धा है। बार-बार क्यों लेते हैं? बार-बार उच्चारण करनेमें जो जिह्वामें क्रिया होती है, उसके द्वारा प्राण भी नियन्त्रित हो जाता है, और मन कहीं बाहर घूमकर आवे, तो फिर वहीं आकरके स्थिर हो जाता है। इसलिए हमारे जीवनको भगवान्से जोड़नेके लिए पहली बात है, कि हमारे जीवनमें नामका—मन्त्रका स्पन्दन होना चाहिए। कई-कई लोग तो, महाराज, इतने निष्ठावान् होते हैं, जो कहते हैं कि हमें रूपसे कोई प्रयोजन नहीं है। हमारे एक मित्र हैं, उनकी उमर सत्तर-अस्सी वर्षकी है। पचास बरससे वे केवल भगवान्का नाम जपते हैं, मन्त्रका जप करते हैं। मैं पूछता हूँ कि आपको रूपका दर्शन होता है? बोले—महाराज, हमको रूपकी क्या जरूरत है? हमको तो नाम चिन्तामणिकी प्राप्ति हो गयी है। नाम—नरेश हमारे कृपालु हैं, हमारी जिह्वापर नृत्य करते रहते हैं—

जीह जसोमति हरि हलधर से।

यह नहीं कि हम अब उपांशु जप करेंगे, मानस जप करेंगे। हम तो जिह्वासे भगवान्‌के नामका जप करेंगे। बोले—सपनेमें भी हमको संकीर्तन ही सुनाई पड़ता है। ध्यान भी नामका ही होता है। महाराज, नामसे रूप बड़ा होता है? ऐसा पूछ लेते हैं।

एक पंडितजी थे। वे व्याकरण, वेदान्त, मीमांसाके अच्छे पण्डित थे। उन्होंने बताया—मैंने एक करोड़ पार्थिव लिंगकी पूजा की और पंचाक्षर मन्त्रका जप किया। हमको तो कुछ दिखता ही नहीं। कुछ शास्त्रोंमें लिखा है कि शब्द और भगवान् मन्त्र और भगवान् एक ही हैं—तो झट शंकर भगवान् हमारे सामने त्रिशूल लेकर प्रकट हो गये।

अच्छा, भाई, चलो, रूपका चिन्तन करें। नामका उच्चारण करना पड़ता है, और रूपका चिन्तन करना पड़ता है। आप भगवान्‌के रूपका ध्यान करो, दूसरे जितने रूप हैं—वे सब-के-सब मिट जायेंगे। सच्ची बात देखो, भगवान् कहीं छिपे हुए नहीं हैं। वे विभूति हैं। यह सब भगवान्‌की विभूति है। विभूति और योगमें क्या अन्तर होता है? जैसे जल जो है, वह तो रस ही है, और उसमें जो बर्फ जम जाता है, वह विभूति है। यह रस-स्वरूप जो परमात्मा है, वह तो सत्यके रूपमें है और विभूति उसकी क्या है? यह पृथिवी, जल, अग्नि, यह सूर्य, यह चन्द्रमा, यह वायु, यह आकाश—ये सब भगवान्‌की विभूति हैं। जहाँ देखो, वहीं भगवान्‌का वैभव—विशिष्ट भवन है। विशिष्ट भवनका अर्थ है—एक विशेष रूपमें भगवान् प्रकट हो रहे हैं।

मन्त्रका आश्रय, रूपका आश्रय और विभूतिका चिन्तन। खुली आँखसे देखो, तो सारे-के-सारे पदार्थोंमें भगवान् ही अपने वैभवको प्रकट कर रहे हैं। वैभवके रूपमें भगवान्‌की शक्ति ही प्रकट हो रही है। ऐसा कौन है महाराज, जो इस अनन्त कोटि ब्रह्माण्डको बना सके? सिवाय ईश्वरके? अरे, यह तो मेरा ही स्वरूप है—ऐसा कहकर उसको हृदयसे लगा लेते हैं। और देखो—

काहि कुञ्जन में फिरत होई है।
भुज भर भेंटि वोको हिय हुमगत है।

यहीं किसी वृक्षपर पाँव लटकाकर बाँसुरी बजा रहे होंगे। यहीं किसी लताके कुँजमें छिपे होंगे। यहीं कहीं गाय चरा रहे होंगे। यहीं कोई रूप धारण करके बैठे होंगे। दोनों हाथोंसे पकड़कर हम भगवान्‌को अपने हृदयसे लगा

लें—इसके लिए हमारा हृदय व्याकुल हो रहा है। जहाँ कहीं भी देखें—सर्वत्र **तद्भाव**। पहले महाराज, भाव तो करो—कि यह सब भगवान् हैं। केवल भावसे परिपूर्ण हो जाओ।

ऊधो, मन न भए दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधे ईस।

एक मन श्याम सुन्दरके संग गया!

हिय में रह्यो नाहिन ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिए उर और!

अपने हृदयमें दूसरी बातके लिए ध्यान नहीं रहा। प्रभुके चिन्तनमें लग गये। उसके बाद तो, महाराज, भाव-शान्ति!

देखो, भावका उदय होता है, तो भावका शाबल्य होता है। फिर भावकी शान्ति होती है। वेदान्तियोंके यहाँ तो वृत्ति बनानी पड़ती है—प्रमाणसे प्रमावृत्ति, परन्तु भक्तिमें प्रमाणसे प्रमाकी उत्पत्ति करनेकी आवश्यकता नहीं होती है। यहाँ तो—महाराज, कोई जड़ वस्तु हो, कोई अन्य वस्तु हो—तो उसके लिए प्रमाणसे प्रमाकी वृत्ति हो! यहाँ तो भगवान् स्वतः सिद्ध हैं। भगवान् तो नित्य-प्राप्त हैं।

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्
सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयाऽऽत्मविदः ।
न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया
स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम् ॥

(वेदस्तुति श्रीमद्० १०.८७.२६)

ब्रह्मैवेदं सर्वं। आत्मैवेदं सर्वं।
स एवैदं सर्वं। अहमेवेदं सर्वं।

सब परमात्मा ही है—यह अनुभूति हो जाती है। भक्तिके मार्गमें चलनेके लिए रूपका अनुसंधान, वैभवका—विभूतिका दर्शन, शक्तिका अनुशीलन, उसके बाद गुरुका अनुशीलन और उसके बाद सर्वत्र भगवद्भाव! उसके बाद स्वरूपका साक्षात्कार! यह भक्ति ही आगे चलकर ज्ञानका स्वरूप धारण करती है। पहले होता है **इदं तत्**—जो यह जगत् है, यह परमात्माका ही स्वरूप है। फिर होता है **तदेव इदं**—वही जगत्का स्वरूप है। वह जगत् है, जगत् वह है। और फिर **अहमेव तत्**—मैं भी परमात्माका स्वरूप हूँ—इस प्रकारका बोध होता है।

भक्तिकी पराकाष्ठाका नाम है ज्ञान। और ज्ञानकी पराकाष्ठाका नाम है भक्ति। परम सत्य ऐसा है, जहाँ कर्ता, भोक्ता, ज्ञाता, परिच्छिन्नता उसका स्पर्श नहीं करती है। और वह यदि आत्मासे भिन्न होगा, तो क्या होगा? और आत्मा यदि उससे भिन्न हो, तो परिच्छिन्न होगा। यह भक्ति देवी जो हैं, यह अपनी वस्तुको अज्ञानी नहीं रहने देती हैं। यह वस्तुको पैदा भी करती हैं; वह वस्तुका संवर्द्धन भी करती हैं, पोषण करती हैं और अंततः, जैसी चिन्ता देनेसे अपनी वस्तुको निःश्रेयसकी प्राप्ति होवे, वह ज्ञान भी यह भक्ति माता ही देती हैं। इसलिए जीवनमें भगवद्भक्ति आवे, इसके लिए प्रयास करना चाहिए।

अब यह भक्ति प्रेमका रूप धारण करके अपने जीवनमें आती है। इसका थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराते हैं कि कैसे प्रीतिके रूपमें आकर भक्ति माता हमारे हृदयमें लहराती रहती है। यह ज्ञान जो है महाराज, वह अज्ञानको निवृत्त करके स्वरूपको नहीं छोड़ता है; स्वरूप तो ज्ञान-स्वरूप ही है, परन्तु जो ज्ञान महावाक्यादिके द्वारा उत्पन्न होता है, वह अविद्या-निवृत्ति करके चला जाता है। धर्म जो है, वह बाल्यावस्थामें, वृद्धावस्थामें अपने साफ रूपमें नहीं रहता है; तत्त्वज्ञान अविद्या-निवृत्तिके अनंतर, ब्रह्मात्मैक्य-बोध होनेके पश्चात् साथ छोड़कर चला जाता है, लेकिन यह भक्ति देवी जिसके हृदयमें आजाती है, भगवान्‌की प्राप्तिके बाद भी यह रसामृतमयी भक्ति उसको कभी छोड़ती ही नहीं है। यह तो ऐसी माँ है, जो अपने पुत्रको रसामृतका पान करावे! ऐसे यह हृदयमें विराजमान रहती है।

'ज्ञानं वै संपद्यते'—यह विधान तो प्राप्त होता है, परन्तु **'भक्तिं वै संपद्यते'**—ऐसा विधान कहीं प्राप्त नहीं होता है। भक्तिके बाधित होनेका विधान शास्त्रमें कहीं भी नहीं है, परन्तु ब्रह्माकार वृत्ति प्रयोजन पूरा करके बाधित हो जाती है—ऐसा वर्णन तो शास्त्रोंमें मिलता है। इसलिए भक्तिके महात्म्यको समझना चाहिए और अपने हृदयमें वह आवे—ऐसी भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिए।

✯

११

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ १०॥
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ ११॥

प्रयाणकालमें अचलमनके साथ भक्ति परम आवश्यक है और साथमें योगबल भी आवश्यक है! सद्भावकी पूर्णता होती है धर्मानुष्ठानसे और जीवनकी पूर्णताके लिए जो क्रिया आवश्यक है, उसके लिए योगाभ्यास है। ध्यान, धारण, समाधि, प्रत्याहार आदि जो अंतरंग क्रियाएँ हैं, वे सद्भावमें स्थापित करती हैं।

कहते हैं, काशीमें मरनेसे मुक्ति मिलती है। वह काशी बाहरकी है। एक काशी शरीरके भीतर भी है। बाहरकी काशी एक स्थान है, जैसे एकादशी एक काल है। तुलसीदल, चरणामृत—ये द्रव्य हैं; इनमें परमेश्वरका आवाहन नहीं करना पड़ता, यहाँ तो परमेश्वर बिना आवाहनके ही रहता है। काशीमें भी परमेश्वर निवास करता है। अपने शरीरमें भी—**वाराणसी भ्रुवोर्मध्ये**—दोनों भौहोंके मध्यमें काशी है। चौरासी कोसकी काशी है, पच्चीस कोसकी वाराणसी है, और तीन कोसकी अंतर्वेदी है। और भौहोंके बीचमें आध्यात्मिक काशी है। योगी मृत्युके समय अपने प्राणोंको वहाँ ले जाते हैं। मृत्युके समय इस प्रकार उसका चिन्तन करें, तो **तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्**—उस दिव्य पुरुषकी प्राप्ति होगी। उपनिषद्का वाक्य है न—**दिव्यः ह्यमूर्तः पुरुषः**—वह पुरुष दिव्य है, अमूर्त है। **यदक्षरं वेदविदो वदन्ति**—वेदवेत्ता उस ब्रह्मका वर्णन करते हैं।

असलमें वेद पढ़नेके अधिकारी सब कोई हैं—चाहे वह ब्रह्मचारी हों, चाहे गृहस्थाश्रममें हों और चाहे वानप्रस्थ आश्रममें हों। अग्निहोत्र, यज्ञयागादिको वेद

मंत्रोंके अनुसार करनेकी विधि गृहस्थ और बानप्रस्थ—दोनों आश्रमोंमें रहनेवालोंके लिए है। यहाँ पति-पत्नी—दोनों मिलकर अग्निहोत्र करते हैं। विधुर पुरुषके लिए अग्निहोत्रका विधान नहीं है, उसे तो अन्त:करणकी शुद्धिके लिए जप करना चाहिए—**जपेनैव तु संसिद्धि:**। वीतरागी जो हैं, उनके लिए तो कोई विधि-निषेध नहीं है। वे तो बेरोक-टोक परम पदमें घुस जाते हैं। और वेदवेत्ता तो उस पदका वर्णन करते हैं—**वदन्ति**, और वीतरागी यति लोग **विशन्ति**—वे उस पदमें प्रवेश कर जाते हैं। यति वे हैं, जो श्रवण, मनन आदिके द्वारा उस परब्रह्मकी प्राप्तिके लिए प्रयत्नशील हैं। यह प्रयत्न तभी सफल होता है, जब अंत:करण शुद्ध होता है, और अंत:करणकी शुद्धिके लिए ही राग-द्वेषसे रहित होना पड़ता है। शुद्ध अन्त:करण वाले ही—वीतरागी ही परमपदमें प्रवेश करनेके अधिकरी हैं।

ये जो मनुष्य जीवनमें चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—का विधान किया गया है, इसका प्रयोजन क्या हैं? कि ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए सदाचार-पूर्वक जीवन बिताते हुए प्रयत्न किया जाए! जो गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रममें हैं, वे तो पति-पत्नी मिलकर यज्ञ-यागादि कामोंमें लगे हुए है, और संन्यासी—राग-द्वेषसे रहित होकर अंत:करण शुद्ध हो चुका है जिनका—वे भी उस पदके अधिकारी हो जाते हैं। जो ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाले हैं—**यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति**—जो इच्छापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, जिन्होंने आश्रम—क्रमसे संन्यास नहीं लिया है और बचपनसे ही नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहण किया है, वे भी उस परमपदके अधिकारी हैं—**यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्**—कठोपनिषद्—१.२.१५॥

अब भगवान् कहते हैं—उस परमपदको मैं तुम्हें संक्षेपमें बाता हूँ—**तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये**—सारी बातोंका सार बताता हूँ।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥ १२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ १३॥

सर्वद्वाराणि संयम्य—वह वीतरागी महापुरुष, जिसने अपने अंत:करणको वासनासे रहित कर लिया है, जो अज्ञानसे मुक्त हो गया है और जिसका अंत:करण सर्वथा शुद्ध हो गया हैं—वह अपने शरीरकी सब इंन्द्रियोंको वशमें कर लेता है। हमारे शरीरमें नौ दरवाजे हैं—

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्। जो दरवाजा खुला मिलेगा, उसीमें-से प्राण निकल जायेंगे। सब द्वार बन्द कर लो—इसका नाम है संयम।

जीवनमें संयम बहुत जरूरी है। हम समझते हैं कि वहाँ जाना उचित नहीं है—और पाँव उधर चले जाते हैं। हम जानते हैं कि यह काम नहीं करना है—और वह कर दिया! हमारे पैर, हाथ—हमारी इन्द्रियाँ अपने वशमें नहीं न! हम संयममें नहीं रहते। एक स्थानपर मनको बाँध लें, और बार-बार उसे छूत रहें। मन एक घेरेमें रहे, उससे बाहर न जाये। यही समाधि है न—**मनोहृदि निरुध्य च।**

अब मनको अपने हृदयदेशमें स्थित कर दिया। घुड़सवार घोड़ेकी बागडोर अपने हाथमें रखता है न। एक राजाको हाथीपर बैठाया गया। उंसने कहा कि हाथीकी लगाम मेरे हाथमें दे दो। जब उससे उसके सेवकोंने कहा, कि हाथीकी लगाम नहीं होती, तो वह तुरन्त उस हाथीसे कूद गया। बोला—जिस जानवरकी लगाम नहीं है, उसपर तो मैं नहीं बैठूँगा। इस शरीरकी लगाम आपके हाथमें है कि नहीं? जब जिस द्वारको आप चाहें, खोल लें और जिसको चाहें, बन्द करदें। इसको दायें मोड़ो, बायें मोड़ो, सामने ले चलो—**इन्द्रियाणि हयानाहुः**—ये इन्द्रियाँ घोड़ोंके समान हैं न। इनकी बागडोर सवारके हाथमें होनी चाहिए। ऐसा नहीं, कि जब जो चाहा, बोल दिया। पंडितोंको देखते हैं न! ये जो व्याकरणके पंडित हैं, वे जब जिस बातको चाहें, बोल दें। यदि किसीने उनके वचनमें गलती निकाल दी, तो झटसे व्याकरणके सूत्र निकाल कर बोल दिया—कहाँ है गलती? अपनी पंडिताईपर—अपने व्याकरणके ज्ञानपर अभिमान है न उन्हें! अभिमानी पुरुष अपनी इन्द्रियोंपर लगाम नहीं रख पाते। वे एक विषयका तो अभिमान करते हैं और बाकी सब विषयोंमें कोरे रह जाते हैं।

मनको हृदयमें रख लो। मनको चित्त भी बोलते हैं—**चिनोति—चिनुते इति चित्।** जो चुन ले, कि यह मेरा दोस्त है और यह मेरा दुश्मन है! जो संस्कारका चयन कर ले, वह चित्त है।

देखो, जो हमारे मनके भाव हैं, वे हमारे कार्यों द्वारा प्रकट होते हैं। हम लोग जो करते हैं—हाथसे करते हैं, पाँवसे करते हैं, संकेतों द्वारा जो प्रकट करते हैं—वह वही, जो चुन-चुनकर भीतर रखा हुआ है। अपनेको छिपाया नहीं जा सकता, क्रोध आता है तो आँखें लाल हो जाती हैं; काम आता है तो शरीरमें उत्तेजना आ जाती है; चटोरापन आता है तो जीभपर पानी आ जाता है। इन सबको रोक लो—संयमित करलो। मनको हृदयमें रोकलो, और प्राणको युक्तिसे—योगसे ऊर्ध्वगतिमें ले जाओ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्—उच्चारण करो ओंका, अकार, उकार, मकार और अर्धमात्राके क्रमसे! एकाक्षर ब्रह्म है यह—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्। कठो०-१.२.१६।

यह अक्षर ही ब्रह्म है। यह अक्षर ही परम है। ऐसे अक्षर ब्रह्मका उच्चारण करो, और स्मरण मेरा करो—**व्याहरन् मामनुस्मरन्।** जिस शब्दका उच्चारण करो, उसका अर्थ समझकर उसका उच्चारण करो। यह ओं क्या है? जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इसमें है। यह निवृत्तिका मंत्र है, निवृत्ति-प्रधान लोगोंको ही प्रणवका जप करना चाहिए। यह एकाक्षर मंत्र एकाक्षर ब्रह्म ही है। इसमें विस्तार नहीं है, संक्षिप्तता है; प्रवृत्ति नहीं, निवृत्ति है। इसमें बहिर्मुखता नहीं है, अंतर्मुखता है। वे ही लोग इसका जप करें, जो समाधिमें स्थित होना चाहते हैं।

अर्थशून्य जप हमें नहीं करना चाहिए। क्यों? कि हम भजनमें बैठे, तो लगा—वृत्ति लीन हो गयी है। समाधि लग गयी है। पर वह समाधि नहीं है, वह तो सुषुप्ति है। वृत्ति कहीं चली जाती है; विक्षेप हो जाता है। कोई राग-द्वेष जग जाता है। वहीं कोई मजा आने लगता है। ऐसा नहीं होना चाहिए। वहाँ तो वृत्ति-लय भी नहीं हो, विक्षेप भी नहीं हो, राग-द्वेष भी नहीं आये, और रसास्वादन भी नहीं होना चाहिए; बस, वृत्ति परमेश्वरमें लीन हो जाये, ऐसा हो!

परमेश्वरकी ओर वृत्ति जानेमें कई विघ्न आते हैं। माला हाथसे छूटकर गिर गयी। मन कहीं चला गया, पता ही नहीं चला! और ऐसा मजा आने लगा, कि परमेश्वर भूल गया; स्वयं भोला बन गये! जब भजनमें अपने सुख-स्वादपर दृष्टि चली जाती है, तब हम भोक्ता बन जाते हैं; जहाँ भोक्ता और भोग्य दोनों भूल जाना चाहिए, वहाँ हम भोक्ता बन बैठते हैं! तो **आस्थितो योगधारणाम्-ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।** परमात्माकी अनुस्मृति हो—माने शब्दका जो अर्थ है, उसका ज्ञान हो। शब्दमें जो अक्षर है, उसमें जो स्वर है, ताल है, लय है, रागिनी है—वह नहीं, उसमें लीनता नहीं हो—केवल परमात्माका स्मरण हो। और उस स्मरणमें शरीर छूट जाय!

सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग।

हाथीके गलेसे फूल-माला गिर गयी—ऐसे शरीर गिर गया! ऐसे तो शरीर त्याग करता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है।

अब देखो, इस पूरे प्रकरणमें योग-शास्त्रका संग्रह कर लिया न भगवान्ने! कि सारे इंन्द्रिय-द्वारोंका संयम कर लो, मनको हृदयमें **निरुद्ध** कर लो। अपने

प्राणोंको मूर्धामें चढ़ा कर योगधारण की आस्था करके एकाक्षर ब्रह्म जो है—प्रणव—उसका व्याहरण करे और परमात्माका स्मरण करे। ओंकारार्थका स्मरण करता हुआ जो शरीरका त्याग करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है!

अब देखो, इस परमगतिकी प्राप्ति क्या ध्यान करते ही, तुरन्त हो जाती है या उसके लिए अभ्यासकी आवश्यकता है? नहीं, तुरंत यह प्राप्त नहीं होती है। बोले—उसके लिए तो जीवन भरके अभ्यासकी जरूरत है। माँने कहा कि बेटी, रोटी बना लो, तो बेटी बोली, जब जरूरत होगी, तब बना होंगे। तब तो महाराज, आटा ही नहीं गुँथेगा! रोटी टेढ़ी हो जायेगी; कहींसे जल जायेगी और कहीं कच्ची रह जायेगी। ऐसे ही जब जीवनकालमें भगवान्‌के स्मरणका अभ्यास बना लेते हैं, तभी भगवान् अंतकालमें सुलभ होते हैं।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ १४॥

भगवान् कहते हैं कि मैं तो उस योगीके लिए सुलभ हूँ, जो अनन्यचेता है। वह कोई भी हो—पुरुष हो, स्त्री हो, ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो—उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

देखो, जब शरीरसे कोई कार्य करना हो, तब शारीरिक अधिकारकी बात होती है, और जब मनसे काम करना हो—भगवत् स्मरण करना हो—तो वहाँ शारीरिक अधिकार नहीं देखते। और जब वेदान्तका विचार करना हो, तब तो अंतःकरणकी शुद्धि ही योग्यता है—अधिकार है। वहाँ जन्मभूमिका, जातिका, वर्णका, आश्रमका विचार नहीं करते, वहाँ तो शांति आदि सद्‌गुरु ही व्यक्तिके अधिकारका निर्णय करते हैं।

अनन्यचेताका अर्थ क्या है? चेतस् शब्द **चिति संज्ञाने** धातुसे बना है। चेतस् माने हैं ज्ञान, लेकिन उसमें ज्ञेय सिर्फ परमात्मा है, अन्य कोई ज्ञेय नहीं है। इस संसारमें ज्ञान और ज्ञेय—दोनों अलग-अलग होते हैं, लेकिन जब परमात्माके अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञेय नहीं है, तब ज्ञान और ज्ञेयका भेद खतम हो जाता है—ऐसा दर्शनशास्त्रमें कहा है। भगवान् स्वयं कहते हैं—

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ १३.१७

जो ज्ञान है, वही ज्ञेय है और जो ज्ञेय है, वही ज्ञान है। यह माला हमारे ज्ञानका विषय है न! इस मालासे हमारा ज्ञान अलग हो गया। लेकिन जब ज्ञानका विषय परमात्मा ही होता है, तब परमात्मा और परमात्माका ज्ञान—दोनों अलग-

अलग नहीं रहते हैं, एक ही हो जाते हैं। अब जब परमात्मा और परमात्माका ज्ञान एक ही हो जाते हैं, तब ज्ञाता और ज्ञानका भेद भी मिट जाता है। और तब परमात्माने जिस सृष्टिकी रचना की है, और जैसी की है, वह सृष्टि ज्ञाताको भी वैसी ही दिखाई देने लगती है, जैसे परमात्माने बनायी है। जब ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेयमें कोई भेद नहीं रहा, तब ज्ञाताका मन परमात्माके मनसे अलग कहाँ रहा? तब तो—***जो थारी राय सो म्हारी राय!*** तब तो परमात्मासे कैसे कहेंगे, कि आज बड़ी सर्दी है, थोड़ी गर्मी कर दो! आज थोड़ी वर्षा कर दो! तब तो जो जैसा है, वही श्रेष्ठ है!

देखो, भगवान्‌से कुछ माँगना मत। मुकद्दमेमें हमारी जीत हो जाय, हमें पुत्रकी प्राप्ति हो जाय—तब तो महाराज, हमारा उद्देश्य भगवान् नहीं रहेगा न! उद्देश्य तो भगवान्‌से अलग हो जायेगा न!

अच्छा, चलो, बिना माँगे रहा नहीं जाता। अभी वह स्थिति तो आयी नहीं, कि भगवान्‌की रायमें अपनी राय मिला लें! एक काम करो—यह व्रत ले लो, कि हम किसी औरसे नहीं माँगेंगे—सिर्फ भगवान् ही से माँगेंगे। ये माँगनेवाले भी तीन तरहके होते हैं महाराज! पहले तो वे हैं, जो संसारकी वस्तुओंको भगवान्‌से माँगते हैं। माँगना तो संसारमें बहुत लोगोंसे पड़ता है न! पुलिससे माँगना, सेठसे माँगना—लेकिन वे किसी दूसरेसे नहीं माँगते, सिर्फ भगवान्‌से ही माँगते हैं। और जब मनमें यह बात दृढ़तासे बैठ गयी, कि किसी और से नहीं माँगेंगे, केवल भगवान्‌से ही माँगेंगे, तो भगवत्-प्राप्तिके अधिकारी तो वे हो ही गये। लेकिन, वे भगवान्‌से दूसरी चीजोंकी कामना करते हैं, इसलिए वे भिन्न कोटिके अधिकारी हैं।

दूसरे दर्जेके अधिकारी—मध्यम दर्जेके अधिकारी वे है, जो माँगते तो भगवान्‌को ही हैं, परन्तु अपने बलपर भगवान्‌को पाना चाहते हैं। हम इतना जप करेंगे, इतनी पूजा करेंगे, इतना ध्यान करेंगे—और अपने साधनके बलपर भगवान्‌को प्राप्त कर लेंगे। यह अपने बलपर भगवान्‌को प्राप्त करनेका जो अभिमान है—जो दृष्टि है—इससे भगवान्‌की प्राप्तिके अधिकारमें थोड़ी-सी बाधा आजाती है। ऐसा इसलिए, कि तब अपने ऊपर दृष्टि रहती है, अपने बलपर भगवान्‌को प्राप्त करनेकी भावना रहती है। और अपने ऊपर जबतक दृष्टि रहती है, तबतक भगवान् सुलभ नहीं होते हैं।

रासलीला हो रही है। भगवान् गोपियोंके साथ नृत्य कर रहे हैं। एक कृष्ण है और हजारों गोपियाँ—जैसे एक कूटस्थ चैतन्य केन्द्र है, और कोटि-कोटि वृत्तियाँ उसको देख रही हों, नृत्य कर रही हों। तभी गोपियोंके मनमें एक बाधा

उत्पन्न हुई। वे सोचने लगीं—हम इतनी सुन्दर हैं, इतनी मधुर हैं, कि कृष्ण हमपर मुग्ध हैं। विघ्न आया, और कृष्ण दूर हट गये। अपनी विशेषतापर उनका ध्यान गया और कृष्णसे ध्यान हट गया, तो उनका दर्शन बन्द।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥

श्रीमद्भा. १०.२९.४८

अपना आपा दीखने लगा; अपने बलपर भगवान्‌को प्राप्त करना चाहा। श्रीकृष्णने कहा—गोपियों, तुम अपना सौन्दर्य शीशेमें निहारो। मैं तो चला!

यह अपनेको देखना—यह मध्यम कोटिका अधिकारी है। दूसरेको देखना—भगवान्‌से ऊपर दूसरेको देखना निम्न कोटि है, और अपनेको देखना मध्यम कोटिका अधिकार है। भगवान्‌से भगवान्‌को ही माँगना—यह तीसरी कोटि-उत्तम कोटिका अधिकारी है। हमारा बल कुछ नहीं, हम तो हार गये! हम भगवान्‌से संसारका विषय नहीं माँगते, हम तो तुमसे तुम्हींको माँगते हैं। हमारा अपना बल कुछ नहीं है, तुम्हारे बलसे ही तुमको ही माँगते हैं। लेकिन इसके लिए भगवान्‌में महाविश्वास चाहिए। उपाय भी भगवान् हैं और उपेय भी भगवान्! भगवान् ही मिलें, और भगवान्‌को मिलनेका उपाय भी भगवान् ही है—यह स्थिति केवल विश्वाससे ही आती है। केवल भगवान्‌से माँगना है—यह बात जब मनमें दृढ़तासे बैठ गयी, तब दूसरेसे माँगनेमें रुचि तो पहले ही छूट गयी! और जब भगवान्‌पर ही निरन्तर दृष्टि रही, तो माँगनेकी वृत्ति अपने आप शिथिल पड़ जाती है। तब तो सर्वत्र उसीके दर्शन होने लगते हैं। भीतर देखें, तो वही है, और अगर बाहर कुछ दीखता है, तो परमात्माका ही दर्शन होता है—कृष्ण ही कृष्ण दीखता है। **तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥**

बाहर भी वही, भीतर भी वही; दूर भी वही, निकट भी वही। चित्तके लिए उसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। इसका नाम होता है **अनन्यचेता।**

और **सततं**? सततंका क्या अर्थ है? लगातार। सातत्य। स्मृति परम्परामें ऐसा नहीं, कि थोड़ी देर रहे, और छूट जाये। लगातार—एकके बाद एक, एकके बाद एक—लगातार वही **शान्तौदितौ तुल्यप्रत्ययौ**—जो वृत्ति शान्त हो, और उदित हो। ऐसा होता है मनमें कि एक चीज डूबती है, तब दूसरी उतराती है, और एक उतराती

है, दूसरी तब डूबती है। मनमें चीजें क्रमसे डूबती—उतराती रहती हैं—बेटेकी याद आयी, तो पतिकी भूल गयी, पतिकी याद आयी, तो बेटेकी भूल गयी। धनकी याद आयी, तो पति और बेटा—दोनों भूल गये। शरीरकी याद आयी, तो धन भी भूल गया। वृत्ति जो है, वह एक साथ एक वस्तुको उदय करती है। शान्त होती है—वह उदित नहीं होती और जो उदित होती है—वह शान्त नहीं होती। अब हमारे मनकी दशा कैसी होवे? जो शान्त होवे, वही उदित होवे; जो उदित होवे, वही शान्त होवे—माने ईश्वर-पर-ईश्वर, ईश्वर-पर-ईश्वर! ईश्वराकार वृत्ति शान्त हुई, ईश्वराकार वृत्ति उदित हुई। ठीक वैसे ही, जैसे—

अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवः, माधवं माधवं चान्तरेनाङ्गना।

प्रत्येक गोपीके बाद कृष्ण, कृष्णके बाद गोपी, गोपीके बाद कृष्ण—ऐसी स्थिति चित्तकी हो जाये। सततं, लगातार। बोले—थोड़े दिनके लिए? कि नहीं, थोड़े दिनके लिए नहीं—नित्यशः। सारे जीवनमें यही बात रहे। बोले—महाराज, यह संसारके इतने काम-धन्धे, इनमें ईश्वरकी ऐसी याद कैसे आवे? बोले—काम-धन्धे अगर बाधा डालते हैं, तो उन्हें छोड़ दो। बोले—नहीं महाराज, नहीं छोड़ सकते। तब प्रीति संसारसे है, भगवान्‌से कहाँ है। बोले—आओ, आधा-आधा कर लें। ना, **नित्यशः**—प्रतिदिन, और लगातार!

फिर बोलते हैं—**मां स्मरति**। यह जो गीताका **माम्** इसमें है, यह बड़ा भारी है। देखो—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते।

भगवान्‌के 'माम्'का—'मैं'का सेवन करो और ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाये और ब्रह्मका सेवन करो और भगवान्‌के 'मैं'की प्राप्ति हो जाये।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति 'मामेव' सर्वभूतहिते रताः॥

यह 'माम्' है। गीतामें 'माम्'का अर्थ होता है अव्यय पुरुष।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।
यो मामेवमसंमूढो।

वह माम् है **यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः। उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः**। वह अव्यय पुरुष जो है, सो—भगवान् बोलते हैं—माम्। माम् कैसा है? **अनुत्तमं माम्**। वह अव्यय पुरुष जो है, उनका स्मरण करो प्रेम से।

यह **स्मरति** शब्द बड़ा विचित्र है। स्मरति क्रिया है, लेकिन आप ध्यान दो; आखिरका एक अक्षर छोड़ दो, तो यह 'स्मर' हो गया न और पहलेका एक अक्षर छोड़ दो, तो यह 'रति' हो गया। 'स्मरति' क्रियाकी यह विशेषता है कि पहलेका 'स्म' छोड़ दो, वह तो यह 'रति' है, और अंतका 'ति' छोड़ दो, तब यह 'स्मर' है। माने, इसमें रति और काम—दोनों समाए हुए हैं। 'स्मरति'का अर्थ है—प्रेमसे चाहो। यह आप शब्दकी प्रकृतिपर जबतक ध्यान नहीं दोगे, तबतक यह बात मालूम नहीं पड़ेगी। 'स्मरति'—जैसे रति और कामका जोड़ा है, ऐसे आपके हृदयमें प्रीति और परमात्मा—इनका जोड़ा बसे। परमात्मासे प्रेम करो।

तस्याहं सुलभः पार्थ—हे अर्जुन! **तस्य नित्ययुक्तस्य योगिनः अहं सुलभः**। अब देखो, जो संस्कृतका व्याकरण थोड़ा जानते होंगे, उनको यह बात जल्दी ध्यानमें आवेगी। व्याकरणकी रीतिसे 'तस्य सुलभः'—यह गलत है; 'तेन सुलभस्य' चाहिए। यहाँ तो 'तस्य सुलभः' है। इसका भी ठीक अर्थ है; वह क्या है? कि 'तस्य अहं'—उसका मैं हूँ; यह सम्बन्ध जोड़ो। बोले—मैं उसका हो गया। किसका? कि जो दीर्घकालतक, निरन्तर, अनन्य चित्तसे, बड़े प्रेमसे मुझको चाहता रहता है। 'स्मरति'में चाह है। आपका कभी वेदान्तके सूक्ष्म विषयपर ध्यान जाये—**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो**—आत्मा ध्यातव्य नहीं है, निदिध्यासितव्य है। दोनोंमें फर्क होता है—ध्यान करना और निदिध्यासन करना। दोनोंमें क्या फर्क है—यह बात सामान्य रूपसे जो बच्चा वेदान्ती है—उसकी समझमें नहीं आती है। यह बड़े-बूढ़े वेदान्तीकी समझमें आनेवाली बात है कि आत्माका ध्यान करो—तो आत्माका ध्यान कैसे होगा? यह तो ऐसा है कि संडासीसे अपना हाथ पकड़ो। हाथमें संडासी लेकर उससे अपने हाथको नहीं पकड़ सकते न। कि अच्छा, अपने कंधेपर चढ़ो। कोई अपने कंधेपर कैसे चढ़ेगा? वैसे 'आत्मा ध्यातव्य' जब बोलेंगे—कि आत्माका ध्यान करो—तो जो ध्यानका कर्ता है, वह ध्यानका विषय नहीं होगा; आत्मातो वह है, जो ध्यान कर रहा है। जिसका ध्यान किया जा रहा है, वह आत्मा कैसे होगा? श्रुतिने यह नहीं कहा, कि आत्माका ध्यान करो—कर्तृ-कर्म-विरोधका प्रसंग नहीं उपस्थित किया। श्रुतिने कहा—**निदिध्यासितव्यः**—ध्यान करनेकी चेष्टा करो। **निदिध्यासन 'ध्यातुं इच्छा**

दिद्ध्यासा' नितरां **दिध्यासा**—तो इच्छा भी उसमें है। इसका अर्थ है कि ध्यानकी इच्छा करो, ध्यानकी चेष्टा करो। ध्यानकी चेष्टा करनेसे क्या होगा? ध्यान करो और ध्यानकी चेष्टा करो—इसमें फर्क है; सगुण ईश्वरका ध्यान करनेसे काम बनेगा, और निर्गुण ईश्वरका ध्यान करनेकी चेष्टा करनेसे काम बन जायेगा। क्यों? क्योंकि वहाँ तो केवल अन्य जो दृश्य है—उसका परित्याग ही इष्ट है। जब आत्माके ध्यानकी चेष्टा करने लगेंगे, तो दृश्य-प्रपंचका ध्यान छूट जायेगा। वहाँ आत्माका ध्यान होना जरूरी नहीं है, वहाँ दृश्य-प्रपंचका छूटना जरूरी है। इसलिए ध्यातव्य न कहकर श्रुति निदिध्यासितव्य कहकर बोलती है। तो **तस्याहं सुलभः** — उसका मैं हूँ, और सुलभ हूँ। माने, मैं उसीका हो जाता हूँ।

भगवान् किसके? कि जो उनको चाहे। पहले बताया न, कि **स्मरति**में रति और काम है। दिलचस्पी होवे, और चाह होवे--दोनों चीजें हो गयी न! काममें रुचि होवे, मजा आवे और चाह होवे। ब्रह्मके प्रति भी दोनों चीज होवे—चाह भी होवे, और उसके विचारमें रुचि भी होवे।

अब वे जो बच्चे हैं न, उनसे पूछना—कि ज्ञानमें भक्तिकी जरूरत है? कि नहीं है? अच्छा, ज्ञानमें जिज्ञासाकी जरूरत है कि नहीं? जिज्ञासा माने—ज्ञानकी इच्छा—हुई न! रुचिसे ज्ञान-प्राप्तिकी जो इच्छा है, वह ज्ञानकी भक्ति ही तो है न! ज्ञानके प्रति प्रीति हुए बिना ज्ञान कैसे होगा? ज्ञान-स्वरूप भगवान्के प्रति प्रीति होना आवश्यक है। तो—**तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।**

देखो भाई, नित्ययुक्त रहो। जिस चीजको चाहते हो, उसकी प्राप्तिका हमेशा ध्यान रखो। ऐसी कोशिश करो, कि वह मिले।

आए मेरे सजना फिरि गए अंगना,
मैं बौरी रही सोय रही री।

वे आये, और लौट गये। और मैं तान दुपट्टा सो रही थी। ऐसा नहीं; नित्ययुक्तका अर्थ है—लगे रहो, लगे रहो।

हरि से लागा रहु रे भाई,
तेरी बनत बनत बनि जाई।

नित्ययुक्तस्य—जो नित्ययुक्त है, वही योगी है। योगका अर्थ होता है मिलन। सचेष्ट रहो। कहते हैं—दोनों हाथ गलेमें डालकर उसको पकड़कर रखो, बाँधकर रखो; कहीं जाने न पावे। तुम अपना हाथ ढीला कर दोगे, तो जानेमें उसका क्या दोष? तो,

यः नित्ययुक्तो भवति स योगी भवति।
यः योगी भवति स नित्ययुक्तो भवति।

जो योगी होता है, वही नित्ययुक्त होता है, और जो नित्ययुक्त होता है, वही योगी होता है। तो लगे रहो। हमेशा जुड़े रहो, तो मिलन बना रहेगा, और यदि अपने उपायमें—अपनी पकड़में ढील डाल दोगे, तब तुम योगी नहीं रहोगे। और जब तुम नित्ययुक्त हो—योगी हो, तो हम तुम्हारे लिए सुलभ हैं, दुर्लभ नहीं। अन्योंके लिए दुर्लभ हैं, तुम्हारे लिए सुलभ हैं।

बोले—तुम सुलभ हो जाओगे तो मिल जाओगे। तो क्या होगा? क्या लड्डू खानेको मिल जायेंगे? असलमें दुनियादार लोग जो हैं न, वे भौतिक सुख चाहते हैं—कि हमको भोग्य सुख चाहिए। देखो, जब हम चेतनका विवेक करते हैं न—तो एक बोलते हैं प्रमाता, एक बोलते हैं प्रमेय; तो प्रमेय है घड़ी—यह जानी गयी और प्रमाण है आँख—आँख से जानी गयी; और जाना किसने? कि मैंने जाना। मैं प्रमाता, आँख प्रमाण और घड़ी प्रमेय। यह विभाग हुआ न! अब देखो, प्रमेयके रूपमें घड़ी है, तो घड़ी न हो—ब्रह्म हो; और प्रमाणके रूपमें आँख आँख न हो—ब्रह्म हो, और प्रमाताके रूपमें मैं परिच्छिन्न न हो—ब्रह्म हो, तो यह क्या हुआ? कि यह ज्ञानका शुद्ध स्वरूप हुआ। प्रमाता-प्रमाण-प्रमेयकी त्रिपुटी बनाये बिना जो ज्ञान है, वह शुद्ध ज्ञान है।

अब देखो! एक सत्ता है—वस्तु है। समझो, घड़ी वस्तु है। यह उठाई गई। काहे से? कि हाथसे। उठाई गयी घड़ी, और उठानेका कारण हुआ हाथ। और उठानेवाला कौन हुआ? कि कर्त्ता—मैं। जब सत्ताका विवेक करेंगे, तो उठानेके लिए घड़ी अलग न हो, उठानेवाला कारण—हाथ अलग न हो, और उठानेवाला मैं जो है—वह परिच्छिन्न न हो। यह जो अपरिच्छिन्न वस्तु होगी, इसको सत् बोलेंगे। सत्में कर्ता, कारण और कार्य—ये कल्पित हैं, और चेतनमें प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय—ये कल्पित हैं।

अब देखो आनन्दमें! आनन्दका विवेक करो न जरा! जैसे खीर है—खानेकी वस्तु, सुस्वाद, भोग्य! स्त्री है, पुरुष है, खीर है, फूल है—ये भोग्य हैं। और भोगके करण हैं इन्द्रियाँ। और भोक्ता कौन है? कि मैं। तो आनन्दमें ये तीनों कल्पित हैं। यदि आपको सच्चा आनन्द अनुभव करना है तो भोक्ता, भोग्य-साधन और भोग्य—इन तीनोंसे युक्त जो आनन्द है, उसको प्राप्त करना पड़ेगा। और यदि शुद्ध चेतनका विवेक है, तो प्रमाता-प्रमाण-प्रमेयसे युक्त चेतनका विवेक करना

पड़ेगा। यदि सत्ताका विवेक करना है, तो कर्ता-करण-कार्यसे युक्त सत्ताका विवेक करना पड़ेगा। और, असलमें कर्ता-करण-कार्यके भेदसे रहित जो सत् है, वह चित्से भिन्न नहीं है, और प्रमाता-प्रमाण-प्रमेयसे रहित जो चेतन है, वह सत्से भिन्न नहीं है। जो सत् है सो चित् है, जो चित् है सो सत् है और भोक्ता, भोगोपकरण और भोग्यसे रहित जो आनन्द है, वह सत् चित्से जुदा नहीं है। जो आनन्द है, सो सत् है; जो आनन्द है, सो चित् है; जो सत् चित् है, सो आनन्द है।

वेदान्तका विवेक तो भाई, जो लोग अपना पूरा जीवन, पूरा मन, पूरी बुद्धि लगाते हैं—उनको होता है। बड़ी-से-बड़ी पोथी पढ़ जाओ, समझमें आता नहीं है। हमारे काशीमें ऐसे-ऐसे विद्वान् हैं, दस-दस शास्त्रके आचार्य, सप्ततीर्थ हैं! एक पंडितको हम लोग पढ़ते समय, परीक्षा-पिशाच बोलते थे। क्यों? कि काशीमें, कलकत्तेमें और पटनेमें जितनी परीक्षाएँ होती थीं—वे सब उन्होंने पास कर रखी थीं; दस-पन्द्रह विषयमें उन्होंने परीक्षा पास की हुई थी। लेकिन महाराज, वे विद्वान्—जो बड़े-बड़े पंडित हैं न, जो कहते हैं कि वेदान्तकी सब युक्ति हम समझा सकते हैं, सारे उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, अद्वैत-सिद्धि, खंडन-खंड-खाद्य, चित्सुखी, भेद-धिक्कार हमको कंठस्थ है—उनके घर जब दुःख होता है न, तो आते हैं—कि स्वामीजी! कृपा करो। शास्त्र-जालमें वे पारंगत हैं, परन्तु दुःखसे मुक्तिका उपाय उनको मालूम नहीं! बिना परमात्माकी प्राप्तिके कोई चाहे—कि हम दुःखसे छूट जाये, तो छूट सकता नहीं। तो—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ १५॥

यह महात्माओंकी विशेषता है। भगवान् जब सुलभ होते हैं, तब क्या होता है? बोले—बस, भगवान् सुलभ होते ही महात्मा हो जाता है आदमी! गेरुआ कपड़ा पहननेसे नहीं—*मन न रंगाओ, रंगाओ जोगी कपड़ा।*

कपड़ा तो रँगा लिया। और मन नहीं रँगा, तो क्या रँगा? बोले—भाई—

मुखड़ा क्या देखे दर्पणमें,
तेरे दया धर्म नहीं तन में।

महात्माका अर्थ क्या है? कि जिसका मन बड़ा हो। अभी कल शामकी कथा आपमें-से जिसने सुनी होगी—दधीचि ऋषिको डरानेके लिए विष्णु भगवान्ने अपना विराट् रूप प्रकट किया—जैसे अर्जुन डर गया था न! तो विष्णु भगवान्ने सोचा कि यह दधीचि ब्राह्मण मेरा विराट् रूप देखकर डर जायेगा।

दधीचि ब्राह्मण विराट् रूप देखकर बोले कि हे विष्णु! सुनो! यह क्या माया फैला रहे हो? मैं पहचानता हूँ तुमको। अच्छा, तुमने अपने अन्दर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड दिखाया न। अब मैं अपने अन्दर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड दिखाता हूँ। जैसे तुमने यह माया फैलायी—जो प्रतीतिमात्र है, वैसे ही मैं भी माया फैलाता हूँ—यह तुम देख लो। मैं यह तुम्हारा विराट् रूप देखकर डरनेवाला नहीं हूँ। तुम विराट् रूप दिखा सकते हो, तो क्या मैं नहीं दिखा सकता? यह तो मेरे अन्दर प्रतीतिमात्र है।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् नाप्नुवन्ति महात्मानः—महात्मा माने, मन बड़ा हो गया। उसके लिए यमराजका कोई अर्थ नहीं रहा; आने-जानेका कोई अर्थ नहीं रहा। काल महाकाल बाधित हो गया उसके स्वरूपमें, तब महात्मा हुआ। महात्मा उसका नाम हुआ—कि पहले अपने स्वरूप-ज्ञानकी तलवारसे महाकालको मार दिया, महादेशको मार दिया, महावस्तुको नष्टकर दिया। तब न, वह महात्मा बना!

संसिद्धिं परमां गताः। परमा संसिद्धि माने मुक्ति। एक संसिद्धि होती है, एक सिद्धि होती है। एक नैष्कर्म्य सिद्धि होती है और एक परमा संसिद्धि होती है। आप देखो, सिद्धिका वर्णन जगह-जगह है गीतामें—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

यह सिद्धि है। और नैष्कर्म्य सिद्धि—**नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति**। और यह संसिद्धि—**परमा संसिद्धि**—यह मोक्ष है।

पहले तो ईश्वरके मिलनेपर आदमी महात्मा हो जाता है; दूसरी बात हुई—कि यह मुक्त हो जाता है, और तीसरी बात होती है, कि **दुःखालयमशाश्वतम् पुनर्जन्म नाप्नुवन्ति**-दुःखालयम् **अशाश्वतं पुनर्नाप्नुवन्ति**। यह जो जन्म है न महाराज, कैसा है? **दुःखालयमशाश्वतम्**—यह दुःखालय है। यह जन्म-मृत्यु रूप जो संसार है, यह क्या है? आप जानते हैं, आजकल तो स्टेशनोंपर भी 'प्रतीक्षालय' लिखा रहता है। हमने तो जब पहले पहल 'प्रतीक्षालय' लिखा हुआ देखा न, तो शब्दका अर्थ समझमें आ गया, कि यहाँ बैठकर इन्तजार करो रेलगाड़ीका—प्रतीक्षाके लिए बैठनेका आलय, लेकिन प्रतीक्षालय माने वेटिंगरूम, याद करना पड़ा। क्योंकि? कि यह जो शब्द है न, यह तो बचपनसे ही याद था, और वह तो नया आया। प्रतीक्षालय तो आप जानते हो। अच्छा, जाने दो प्रतीक्षालयको;

शौचालयको तो पहचानते ही हो। यह संसार क्या है? बोले—यह दुःखालय है। जैसे प्रतीक्षालय, शौचालय होता है, ऐसे यह दुःखालय है। यह ऐसा है महाराज, कि इसमें कोई आवे, और दुःख न हो, दुःखसे अछूता इसमें-से निकल जावे—ऐसा नहीं हो सकता। पहले गाँवमें थे हमलोग, तो किवाड़ी—खम्भे आदि जो होते थे बैठकमें, उसमें लगाते अलकतरा—तारकोल, डामर। हम बच्चे जब खेलते थे न, तो शर्त लगाते थे—कि आओ, सौ बार दरवाजेसे भीतर जाये और बाहर निकलें, दौड़ें, एक दूसरेको छूएँ; जिसके कपड़ेमें यह डामर—यह तारकोल न लगे, वह विजयी। यहाँ संसारमें आओ, यह तो—

काजल की कोठरी में कैसऊ सयानो जाए,
काजर की एकलीक लागी है पै लागी है।

यह काजलकी कोठरी है। अरे, हमने तो देखा—घंटे भर अगर कोई बात करता है न; अगर किसीको समय दे दें घंटेभर बात करनेका, तो कभी-कभी ऐसे लोग आते हैं महाराज। वे यह नहीं सोचते हैं कि इनको भी कुछ पढ़ना होगा; कि कुछ सोचना होगा; कि शान्तिसे बैठना होगा; कि विश्राम करना होगा। वे घण्टे भरका समय ले लेते हैं, लेकिन हम गौरसे देखते हैं कि घण्टे भरमें वे कहते क्या हैं! वे घण्टे भरमें दो-तीन बार खूब हँसते हैं ठठाके—खुश होते हैं, और दो-तीन बार रोते हैं—दुःखी होते हैं। मनुष्यको अपने मनका पता नहीं! कल एक चिट्ठी आयी थी मेरे पास, जबलपुरसे। उसमें लिखा था कि हम आपकी शरण लेना चाहते हैं—शिष्य होना चाहते हैं। यह शुरूमें था, और आखिरमें था—कि आप स्वामी शान्तानन्दजीको लिखिए, कि हमको अपनी शरणमें ले लें। एक ही चिट्ठीमें दोनों बातें!

एक राजा मर गया राजस्थानमें। वहाँसे चिट्ठी आयी—बड़े दुःखके साथ आपको सूचना दे रहे हैं कि अमुक राजा साहब—राजाधिराजकी मृत्यु हो गयी। यह पहला पैराग्राफ था चिट्ठीका। और दूसरा था—कि बड़े हर्षके साथ आपको सूचना दी जा रही है, कि अमुक राजकुमारका राज्यतिलक अमुक समयपर होनेवाला है, और आप अपना आशीर्वाद भेजिए। एक ही चिट्ठीमें दोनों पैराग्राफ थे। यह मनुष्यका जीवन है संसारमें। क्या इसमें कोई संगति है?

आपको सुनाया होगा—एक बार मैं काशी गया। बहुत दिनके बाद गया था, कोई आठ वर्ष-संन्यासी होनेके बाद गया था। याद आयी—जिन पंडितजीसे मैं भागवत पढ़ता था, वे पंडितजी बड़े योग्य पुरुष भी हैं, और पंडितानीजी भी हमसे बहुत प्रीति करती थीं! चलो, मिल आवें। गये, तो पंडित जी घरपर नहीं थे।

पंडितानीजी थीं। आसन बिछाया, बैठाया। पहले तो रोने लग गयीं—कि तुम बाल-बच्चोंको छोड़कर साधु क्यों हो गये! राम-राम-राम! फिर यह बात भूल गयी, छूट गयी! फिर अमुक बेटा हुआ था—उसकी याद आयी, तो खूब खुश हुईं। उसके बाद एक जवान बेटा मर गया था—उसकी याद आयी, तो फिर रोने लगीं। उसके बाद पंडितजी अस्सी वर्षकी उम्रमें क्या पुरुषार्थ करते हैं—उसका वर्णन करने लगीं। फिर अब यह लड़कीका ब्याह होनेवाला है, उसके लिए पैसा कहाँसे आवेगा—फिर रोने लगीं। घंटे भरमें छह-सात दफे रोईं और छह-सात दफे हँसीं। इसीका नाम संसार है। तुम असलमें एक पक्षमें हो जाओ न। अच्छा, दु:खी हो, तो रोओ; रोके चौबीस घण्टे दिखाओ। अरे, तुम सच्चिदानन्द स्वरूप हो—

परमानन्द स्वरूप तू, नहिं तुममें दु:ख लेश।

तुम चौबीस घंटे क्या, चार घंटे भी दु:खी नहीं रह सकते। वह भीतर जो आनन्द-स्वरूप बैठा है, वह चमक जायेगा। वह कभी रोने देगा तुमको चौबीस घंटे? अच्छा, तो चौबीस घंटे हँसकर दिखाओ। इसमें समता ही चलती है। बरसातके दिनोंमें गंदा पानी आता है, नदीमें बह जाता है। जाड़ेके दिनोंमें स्वच्छ जल आता है, बह जाता है। और तट जो है, वह ज्यों-का-त्यों।

तुम तटस्थ होकर इस संसारमें रहो। यह संसारसे तटस्थ कौन है? कि परमात्मा है। तटस्थ जो है न, वह आत्मा है। उसके सामने मुर्दा भी बह जाता है, फूल भी बह जाता है। सूर्योदय, सूर्यास्त; रात भी आती है, दिन भी आता है। खराब सड़क भी आती है, और अच्छी सड़क भी आती है। बुरे लोग भी मिलते हैं, भिखारी भी मिलते हैं, और बड़े उदार लोग भी मिलते हैं। ऐसे ही यह संसार चल रहा है। इसमें जो समत्व है न, वह परमात्माका स्वरूप है, क्योंकि वह सबमें स्थित अधिष्ठान, वह सबका द्रष्टा चेतन है, वह परिपूर्ण है।

पहली बात यह हुई, कि जब परमात्मा सुलभ हुआ, तो तुम महात्मा हो गये। और महात्मा हो गये, तो परमा सिद्धि मिल गयी। यह जो जन्म-मृत्युका चक्कर है न, जिसमें दु:ख ही दु:ख है—दु:खालय है—उससे छूट जाता है। वह कैसा है—**अशाश्वतम्**। कहा कि हाय-हाय, हम तो दु:खालयमें फँस गये; नहीं नहीं, शाश्वत नहीं है यह, चंचल है। संसारमें आदमीको चार तरहसे सुख होता है—एक तो अनुकूल विषय-भोग प्राप्त हो जाय, तब आदमी सुखी हो जाता है; दूसरा होता है अभिमानसे सुख—कि हमारे पास इतना है, यह यह है, कि हजारों आदमी हमारे पीछे चलते हैं—हम एक इशारा तो कर दें! मालवीयजी कहते थे, कि अगर हम

सब लोग मिलकर थूक दें, तो अंग्रजे उड़कर विलायत पहुँच जायेंगे। अपने अनुयायियोंका भी बड़ा अभिमान होता है। हमारे पास इतना धन है—अभिमान होता है। दूसरा सुख जो है, अभिमानका सुख है। यह बैंककी सम्पत्ति कब जब्त हो ज़ायेगी, घरमें रखी हुई सम्पत्ति कब चोर ले जायेंगे, शरीर कब छूट जायेगा—इसका कुछ ठीक नहीं है, लेकिन अभिमान तो होता है न, कि इसका मालिक मैं! नोटके बंडल सिरपर लाद कौन घूमता है? उसका अभिमान ही तो घूमता है न!

एक सुख होता है भोगकी प्राप्तिसे, और दूसरा सुख होता है अभिमानसे। और तीसरा सुख होता है—मनोराज्यसे। हम कहते हैं, कि अभी आज तो कमाई नहीं हुई, पर कल होगी। आज तो जूएमें हार गये, कल जरूर जीतेंगे। यह जो जूआ है न जिन्दगीमें कल जरूर सुख मिलेगा—यह मनोराज्य है, यह तीसरा सुख है। और, किसी कामकी आदत पड़ जाय न—आसन बाँधकर सीधे बैठनेकी या सूर्य नमस्कारकी या मनको अमुक प्रकार रखनेकी आदत पड़ जाय, तो अभ्यास हो जाये—अभ्याससे सुख मिलता है। ये चार पुकारके सुख हैं, बढ़िया मोटरका सुख, बढ़िया पत्नी मिलनेका सुख—सब अभिमानका सुख है। भोगकी प्राप्ति अभिमानकी प्राप्ति, मनोराज्य होना और आदत पड़ जाना—चार प्रकारके सुख! परमात्माका जो सुख है, वह इन चारोंसे विलक्षण है। विषय-भोग तो जबतक मिलता है, और इन्द्रियोंमें शक्ति है—तभी तक होगा न। और अभिमानमें तो बड़ी भारी पराधीनता है, और मनोरथमें संशय है, और यह अभ्यासकी गाड़ी कबतक चलेगी? तो जो सहज सुख है, उसका नाम है—परमात्मा। तो संसार दुःखालय है और परमात्माका भजन सुखालय है—सब सुखोंका अंतर्भाव है जिसमें।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरिभजन जगत सब सपना॥

एक महात्मासे मिलनेके लिए मैं पचासों मील पैदल चलकर गया। उन्होंने पूछा—'क्या चाहिए? मैंने कहा—भजन चाहिए। तो एक चौपाई बोली—

उमा राम सुभाव जेहि जाना।
ताहि भजन तजि भाव न आना॥

नाप्नुवन्ति महात्मानः—जब भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है, तब दुःखालय और अशाश्वत पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती है। क्योंकि महात्मा हो गये, सो परमा संसिद्धिकी प्राप्ति हो गयी।

★

१२

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ १५॥

देखो, नन्हा-सा तो श्लोक है! गिने हुए बत्तीस अक्षर—अनुष्टुप् छन्दमें आठ-आठ अक्षरके चार चरण होते हैं—पर इसमें बात इतनी कह दी गयी है कि देखकर आश्चर्य होता है। श्रीकृष्ण भगवान् सूत्र-सूत्र बोल देते हैं। पहली बात देखो—**महात्मानः**—ये महात्मा हैं। महात्मा शब्दका अर्थ होता है महान् आत्मा, **मनः बुद्धिः ज्ञानं अनुभावा येषां ते महात्मानः**। जिनका मन महान् हो, बुद्धि महान् हो, ज्ञान महान् हो, अनुभाव-प्रभाव महान् हो, उनको महात्मा कहते हैं। क्योंकि 'आत्मा' शब्द अनेक अर्थमें प्रयुक्त होता है—तो मन महान् हो, ऐसा। मन महान्का ऐसा अर्थ है, कि जैसे दो मित्र आपसमें संकल्प कर लें कि ऐसा हो जाय, ऐसा हो जाय और दोनोंमें मतभेद हो, एक मित्र चाहता हो कि ऐसा हो, और दूसरा मित्र चाहता हो कि वैसा हो। अपने मनका नहीं हुआ, सामने वालेके मनका हुआ, तब कैसे सोचेंगे? मन महान् जिसका होगा, वह क्या सोचेगा? कि मेरे मित्रके मनका हुआ, तो भी मेरे ही मनका हुआ—अरे, मेरे मनका नहीं हुआ, उसके मनका हुआ, वह तो हमारा मित्र है। और छोटा मन हुआ, तो? लड़ जायेंगे—कि हम तुम्हारे मनका नहीं मानेंगे, हम अपने मनका मानेंगे। ज्यादातर छोटे मनमें लड़ाई होती है, बड़े मनमें—उदार मनमें लड़ाई नहीं होती है।

श्री हरिबाबाजीने एक बार कहा, कि जब हमारे मनका होता है, तब तो हमें खुशी होती है, कि हमारे मनका हुआ, और जब हमारे मनका नहीं होता, तब हमको इस बातकी खुशी होती है कि हमारे प्यारेके मनका हुआ। ईश्वरके मनका हुआ। अगर ईश्वरको यह बात पसंद न होती, तो ऐसे कैसे होती? हम तो बाबा, वह है—जो हमारे मनका हो, तब भी राजी, उसके मनका हो, तब भी राजी। बल्कि हम कहते हैं—बाबा, हमारे मनका मत कर, अपने ही मनका कर। सुना होगा न आपने कि एक रबिया नामकी भक्त थी—मुसलमान भक्त थी। वह भगवान्से प्रार्थना करती थी—कि हे भगवान्! अगर मैं स्वर्गकी प्राप्तिके लिए भजन करती होऊँ, तो आप मुझे कभी स्वर्ग मत देना। और अगर मैं नरकसे बचनेके लिए आपका भजन करती होऊँ, तो मुझे हमेशाके लिए नरकमें डाल देना। हमें हमारे मनकी मत देना,

अपने मनकी देना। हम तुम्हारे मनकी चाहते हैं, अपने मनकी नहीं। इसीको महात्मा बोलते हैं—जिसका मन ईश्वरके मनसे एक हो गया।

भगवान्‌की दृष्टिसे दुनियाँ कैसी दिखती है? कि जैसी सूर्यकी आँखसे दिखती है, वैसी है। कोटि-कोटि सूर्य जिसके रोम-रोममें हैं, उस परमात्माको जैसी दिखती है—वैसी है। अरे! अपनी अकल छोटे खुर्दबीनसे जैसी चीज दिखती है—वैसी है, कि बड़े खुर्दबीनसे जैसी दिखती है—वैसी है? भाई, महात्माका अर्थ है—जो परमात्माकी नजरसे नजर मिलाकर—उसको यह दुनियाँ जैसी दीखती है—वैसी देखे।

हमारी नजरमें और उसकी नजरमें फर्क क्या है? देखो, फर्क यह है कि हमारी पीठके पीछे जो वस्तु है न, वह हमारी आँखसे तो नहीं दिखती न तो हमारे शरीरको बीचमें रखकरके—यह पूर्व हो गया, यह पश्चिम हो गया, यह उत्तर हो गया, यह दक्षिण हो गया! अब ईश्वर कहाँ बैठकर पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण देखेगा? तो हमारी नजरसे—जब हम देह बनकर इस आँखसे देखते हैं, तब पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण मालूम पड़ता है, और देहाभिमान छोड़कर, मायिक दृष्टिका अभिमान छोड़कर जब परिपूर्ण चेतनरूपसे देखते हैं, तो न उसमें पूर्व न पश्चिम, न उत्तर न दक्षिण! अरे मिलाओ न। ईश्वरकी नजरसे अपनी नजर मिला दो। ईश्वरके मन-से-मन मिलाओ, नजर-से-नजर मिलाओ। और दुनियाका कोई भी उलट-फेर, हरे-फेर, अदला-बदली तुम्हारे ऊपर असर न डाल सके उसे बोलते हैं महात्मा। गीतामें दो तरहके महात्मा माने हुए हैं! देखो, आपको बताते हैं—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

महात्मा वह है—जो दैवी सम्पत्ति अपने जीवनमें धारण करके भगवान्‌का भजन करता है। यह साधक महात्मा हुआ। एक सिद्ध महात्मा भी है, वह कौन है?

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

जिसको सब परमात्मा दिखता है—वह सिद्ध महात्मा है। ये जो महात्मा हैं, इनको क्या मिलता है—यह सुनाते हैं। पहली बात यह है कि **परमां संसिद्धिं गताः।** एक होती है साधनसे सिद्ध होनेवाली संसिद्धि, और एक होती है स्वतः-संसिद्ध। तो आत्माका, परमात्माका, ब्रह्मका जो स्वरूपभूत मोक्ष है—उसको **परमा संसिद्धि** कहते हैं। वह साधन-साध्य नहीं है, अनुभवैक गम्य है। जो अनात्माका तिरस्कार करके अपनी आत्माको ब्रह्मरूपसे जानेगा—उसको वह मिलेगा। वह परमा सिद्धि

है; वह बनायी नहीं जाती। दाल-भातकी तरह उसको पकाना नहीं पड़ता, वह पका-पकाया है। फर्क होता है न! देखो, गेहूँ है, चावल है—इसको ऐसे नहीं खाते हैं, पकाते हैं। और अंगूर है, अनार है; पेड़ परसे पका-पकाया लिया और खा लिया। यह मोक्ष नामकी जो वस्तु है, यह किसी साधनसे पकानेकी चीज नहीं है। यह तो आत्माका स्वत: सिद्ध सहज स्वरूप है।

निवृत्तिः आत्मा मोहस्य ज्ञातत्वे लोकलक्षितः।

आत्माको जान लेना, और अविद्याकी निवृत्ति हो जाना—यह जो अविद्याकी निवृत्तिसे उपलक्षित आत्मा है, उसीका नाम मोक्ष है। अपने आत्माका ही नाम मोक्ष है! मोक्ष किसी दूसरे गाँवमें नहीं रहता, किसी दूसरे समयमें नहीं मिलता, कोई परिवर्तन करके नहीं मिलता। अपने स्वरूपका ही नाम मोक्ष है। प्रतिबन्धक जो अविद्या है, उस अविद्याकी निवृत्ति हो जानेसे मोक्ष तो स्वत: सिद्ध है। यह मोक्ष कैवल्य मोक्ष है।

यह कैवल्य मोक्ष क्या है? कैवल्य मोक्ष माने-अकेलापन, जहाँ दूसरी कोई चीज न हो, केवल अपना आप ही हो। केवलका भाव—कैवल्य। केवल माने अकेला। *सबसे भला अकेला। न चेला न धेला, सबसे भला अकेला।* खानेके लिए केलेका फल भी अपने पास न रखे, ऐसा अकेला होवे। यह कैवल्य मोक्ष भी प्रस्थान-भेदसे दो तरहका मानते हैं। योगदर्शनमें भी कैवल्य शब्दका ही प्रयोग है और वेदान्तमें भी कैवल्य शब्दका प्रयोग है, परन्तु दोनोंके कैवल्यमें बड़ा भेद है। योगदर्शनमें पहले चित्तवृत्तिका निरोध करते हैं। निरोध हो जानेपर द्रष्टा अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। उसके बादसे निरोधके साधन और निरोधके उपकरण और निरोधकी दशा—इनके साथ द्रष्टाका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। ईश्वर भले अलग होवे, दुनिया भले अलग होवे, आत्मा बहुत सारे अलग-अलग होवें; मैं तो अपने स्वरूपमें मगन! दूसरोंकी तरफ देखता ही नहीं है। यह योगदर्शनका कैवल्य मोक्ष है। और वेदान्त दर्शनके कैवल्य मोक्षके लिए यह जो सबका द्रष्टा साक्षी जो आत्मा है—जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति—तीनोंमें, इसमें समाधि अवस्थाकी जरूरत नहीं है। विक्षेपका भी द्रष्टा वही, और समाधिका भी द्रष्टा वही। यह जो द्रष्टा है, यह अद्वितीय ब्रह्म है। और अद्वितीय होनेसे द्वैत नामकी कोई वस्तु नहीं है।

सबके अभावसे, और असंगतासे होनेवाला कैवल्य मोक्ष है, और अपनेको ब्रह्म जानकर द्वैतसे बाध होनेताला वेदान्तका कैवल्य मोक्ष है। इसके लिए शास्त्रमें विभाग करते हैं—क्षीणोदर्क और भूमोदर्क। क्षीणोदर्कका अर्थ क्या है? कि जहाँ

सम्पूर्ण अन्तःकरणकी वृत्तियाँ लीन हो गयीं—निरुद्ध हो गयीं, और निरुद्ध हो जानेके कारण प्रपंचकी प्रतीति नहीं होती। यह योगका मोक्ष हुआ। और भूमोदर्कका अर्थ हुआ—ब्रह्मसे अपनी एकताका बोध हो जानेके कारण सब कुछ प्रतीत होते हुए भी कुछ नहीं है। भूमोदर्क माने ब्रह्मसे एकत्व, और क्षीणोदर्क माने प्रतीतिका क्षय—प्राकृतका क्षय। यह परमा संसिद्धि है। यह महात्माओंको प्राप्त होती है। यह कैवल्य मोक्षका वर्णन हुआ।

अब सगुण मोक्षका वर्णन देखो। कि **मामुपेत्य**—यह सगुण मोक्षका वर्णन है, भक्तोंको जो मोक्ष मिलता है। मैंने कहा न, कि यह श्लोक है तो देखनेमें नन्हा-सा, लेकिन संसारकी सब बातें इसमें कह दी गयीं। **महात्मानः** में साधन और सिद्धि—दोनों, और **संसिद्धिं परमां गताः** में योग और वेदान्त—दोनोंका मोक्ष, और **पुनर्जन्म** और **मामुपेत्य—मां सगुणं ब्रह्म उपशमेन इत्वा-गत्वा**—यह श्रीकृष्ण बोलते हैं। **मामुपेत्य**—जरा मेरे पास आओ। तो भगवान्‌के पास जानेमें भी लोग अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार जाते हैं।

हम एक रियासतमें गये, तो हमारे पास एक-दो साधु और आगये। साधु अच्छे थे; उनमें कोई ऐसा नहीं दिखता था कि भजन नहीं करते हैं। पर जिस राजाके यहाँ हम लोग ठहरे हुए थे न, उनके ड्राइवरसे ज्यादा बात करें, उनके रसोइयेसे ज्यादा बात करें। कोई साधु उनके मैनेजरसे बात करे। थे सब साधु, लेकिन अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार मेल बिठाकर उनके पास बैठते। कौन किसका साथ पसंद करता है, इससे उसकी योग्यता प्रकट हो जाती है। **मामुपेत्य**—भगवान्‌के पास जाना। भगवान्‌के पास जानेमें भी बड़ा मजा आता है। कई लोग उनके लोकमें जाके ही संतुष्ट हो जाते हैं—**सालोक्य**। वे लोकमें रहते हैं, कहते हैं—हम भगवान्‌की प्रजा हैं।

एक साधु आये हिमालयसे। हमारे मित्र हैं। अब शायद उनका शरीर पूर हो गया होगा। दस वर्ष हिमालयमें रहे; जोशीमठमें रहते थे। जब आये, तो यह हुआ कि महाराज, दस वर्ष हिमालयमें रहकर आये हैं, अपना अनुभव सुनाओ, कुछ ईश्वरकी बात सुनाओ—तो व्याख्यान हुआ उनका। बोले—जिस कुटियामें हम बैठते थे, वहाँसे हर-हर बहती हुई गंगाजी नीचे दिखाई पड़ रही है और हरा-भरा जंगल दीख रहा है। बर्फके पहाड़ दीख रहे हैं और क्या चाँदनी छिटकती है, और क्या रातमें सुगन्धित हवा चलती है। बोले—भाई, यह सब तो हुआ, कुछ ईश्वरकी बात सुनाओ। बोले—हमारा तो बस, यही ईश्वर है! हमने वहाँ बैठकर कभी कोई

वेदान्तका चिन्तन नहीं किया, योगाभ्यास नहीं किया। हम तो यह प्रकृतिकी शोभा देखते रहे। अब देखो! रहे हिमालयमें दस वर्ष, और देखते रहे बर्फ!

एक श्रीमतीजी गयीं बद्रीनाथकी यात्रा करने। किसीने कृपा करके उनको बताया, कि रास्तेमें बर्फ नहीं है। उन्होंने कहा—बर्फ हम अपने साथ ले आये हैं। वे बम्बईकी थीं, तो उनको तो यही सूझता था कि खाने-पीनेका रेफ्रिजरेटरका बर्फ होता है—वही बर्फ है। तो लोग अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार सोचते हैं। उसी तरहसे वे साधु भी बोले—हाँ, हम हिमालयमें दस वर्ष रहकर आये हैं। रहकर तो आये हो, कभी समाधि लगी? कभी परमात्माका साक्षात्कार हुआ? कुछ अंतरंग अनुभव हुआ? तो कई लोग ऐसे होते हैं, कि जो यह सोचकर —कि जिस नगरमें परमात्मा निवास करता है, उसके हम भी नागरिक हैं—इसीसे खुश हैं। इनको सालोक्य कहते हैं। कई लोग इस बातपर खुश होते हैं, कि जैसी पोशाक भगवान् पहनते हैं—पीताम्बर, शंख-चक्र-गदा-पद्म, जैसा चंदन लगाते हैं भगवान्—वैसी वेश-भूषा धारण करनेका अधिकार हमको भी है। हर साल जब अपनी पोशाक उतारते हैं भगवान्, तो हमें दे देते हैं। भगवान्की उतरी हुई पोशाक पहननेका बड़ा भारी गर्व है! इसको क्या बोलते हैं? सारूप्य मोक्ष बोलते हैं। कोई कहते हैं—हम तो उसी महलमें रहते हैं जी, जिसमें भगवान् रहते हैं। एकदम सामीप्य। उनको पानी पिलाते हैं अपने हाथसे; बड़ा ही महत्त्व! इसको क्या बोलते हैं? सामीप्य। कोई बोले—नहीं, हम तो भगवान्से एक हो गये। मिल गये उनके अन्दर। बोले—इनका नाम सायुज्य। किसीने कहा—नहीं! जैसे ब्रह्मा सृष्टि बनाते हैं, वैसे ही हमको भी सृष्टि बनानेका अधिकार भगवान्ने दे दिया। इसका नाम सार्ष्टि। सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य, सार्ष्टि—यह पाँच प्रकारसे भगवत्-सान्निध्यकी प्राप्ति होती है। एक भूमोदर्क मुक्ति, एक क्षीणोदर्क मुक्ति। परामुक्ति-कैवल्य मुक्तिके दो भेद। और सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सायुज्य—सगुण मुक्तिके पाँच भेद। सूर्यमण्डलका भेदन करनेके बाद भी कई लोक प्राप्त होते हैं—तपोलोक, जनलोक, महर्लोक, सत्यलोक। उनमें भी जीव होते हैं। उनमें भी गुस्सा आता है, उनमें भी लड़ाई हो जाती है कभी, गुत्थमगुत्थी होती है।

अब बताते हैं भगवान्, कि एक तो पहले महात्मा हो गये, दूसरे—या तो निर्गुणके साक्षात्कारसे परमा संसिद्धि प्राप्त हो गयी और या तो सगुण परमात्माकी प्राप्ति हो गयी—मामुपेत्य। अब इससे क्या होता है? तीन बातें नहीं मिलती हैं—

पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् नाप्नुवन्ति महात्मानः।

एक तो पुनर्जन्म नहीं मिलता। यह पुनर्जन्म ऐसा है कि जैसे एक आदमी बहुत बढ़िया जगहमें भेज दिया जाय; जगह उसको पसंद आजाय; मकान बना ले, फर्नीचर ले ले, बिजली लगा ले, पानी ले ले, रहने की खूब बढ़िया जगह बना ले। उसके बाद उसको वहाँसे निकाल दिया जाय—कि अब यहाँसे जाओ, दूसरी जगह जाओ। वहाँ जाकर फिर उसने अपनी गृहस्थी जमायी, तो वहाँसे निकाल दिया। तीसरी जगह गृहस्थी जमायी, तो वहाँसे भी निकाल दिया। ऐसे पुनर्जन्मके चक्करमें जो लोग पड़े हुए हैं, वे कहीं जम नहीं पाते। जमेंगे—निकाल दिये जायेंगे। जमेंगे-निकाल दिये जायेंगे। इसीका नाम पुनर्जन्म है। एक जगह पैदा हुए—कि यह मेरी मैया, यह मेरा बाप; बड़े हुए, ब्याह हुआ—कि यह मेरी घरवाली, ये मेरे बच्चे, यह मेरा घर। सब बनाया बड़े परिश्रमसे। बोले—अब चलो यहाँसे, तुम्हारा तबादला हो गया। जैसे अफसर लोग रहते हैं न—जहाँ खूब जम जाती है, वहाँसे तबादला हो जाय। किसीकी तरक्की होती है किसीकी तलबगीरी होती है। कोई नीचे पदपर जाते हैं, कोई ऊँचे पदपर जाते हैं, कोई बराबर पदपर जाते हैं। तकलीफ होती है न, उनको। यह पुनर्जन्मकी तकलीफ बिलकुल वैसी है।

एक बात यह—कि हर समय बदलना, हर समय बदलना और दूसरी बात यह, कि दुःखालयसे छूट जाना। असलमें अगर ईमानदारीसे देखा जाय और अनुभव किया जाय, तो पता चलता है कि भगवान्ने इस सृष्टिमें दुःख बिलकुल नहीं बनाया है। भगवान्के हाथ बिलकुल मीठे-मीठे हैं; जिसपर शक्कर लगी हो, शहद लगी हो—बिलकुल वैसे हैं।

रसो वै सः। रसमेवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।

परमात्मा रस-रूप है। ऐसा है वह कि उसको देखकर भी जीभपर पानी आवे और उसको सुनकर भी जीभपर पानी आवे, छूकर भी जीभपर पानी आवे। बड़ा रसीला है वह। उस परमात्माको चाटनेका मन होता है, चूमनेको मन होता है। कलेजेसे लगा लेनेको मन होता है। इतना मीठा है परमात्मा; तो उसके हाथसे यह तो दुनिया बनी है—**आनन्दो ब्रह्म इति व्यजानत।** आनन्द ब्रह्म है। **आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।** जो ब्रह्मानन्दको जानता है, उसको कहीं भय नहीं होता है। यही तो है उपादान-मसाला। जैसे घड़ेमें माटी, वैसे इस संसारमें वही आनन्द-स्वरूप परमब्रह्म परमात्मा। वही तो अधिष्ठान और वह उसीकी मीठी-मीठी चाँदनी, रोशनी—जिसमें यह जगत् दिखाई पड़ता है। मसाला मीठा, रोशनी मीठी, प्रकाश मीठा; प्रकाश परमानन्द और उपादान परमानन्द! उसीसे बनी हुई यह सृष्टि!

इसमें सिवाय अपनी बेवकूफीके दु:ख कहींसे बनता नहीं है। केवल नासमझीसे ही संसारमें दु:ख बना हुआ है। जब-जब दु:ख मालूम पड़े तो समझना, हमारी अकलने धोखा दिया; आनन्दको दु:ख बताया, ज्ञानको अज्ञान बताया, पश्यको अपश्य बताया—बुद्धिने धोखा दिया। अकल उलटी पड़ गयी। यह खोपड़ी जो है ना खोपड़ी, यह उलटी हो गयी। जब-जब दु:ख होवे, तब-तब यही समझना कि तुम्हारी उल्टी खोपड़ीकी गलती है, ईश्वरकी, ब्रह्मकी, आत्माकी गलती नहीं है।

तिब्बतमें एक लामा संत थे। उनसे आकर एक सज्जनने पूछा कि हमारे धर्मगुरु! यह जो मठपर झंडा लग रहा है न; तो हवा हिल रही है या झंडा हिल रहा है? अब वे लामा बेचारे महीनोंसे, बरसोंसे वहाँ रहे, लेकिन उनकी नजर ही न कभी झंडेपर गयी! वे तो अपने ध्यानमें मगन। उन्होंने कभी ख्याल ही नहीं किया था, कि झंडा हिलता है या हवा चलती है। उन्होंने कहा—बाबा, न झंडा हिलता है, न हवा हिलती है। तेरा दिमाग हिल रहा है। अरे, जैसे शक्कर ढूँढ़नेके लिए चींटी बीस फुट जमीनमें घुस जाय, वैसे यह उल्टी खोपड़ीवालोंका जो दिल-दिमाग है न, यह कि दु:ख ढूँढ़नेके लिए छब्बीस फुट नहीं, छब्बीस लाख फुट नीचे घुस जाता है। ढूँढ़-ढूँढ़के दु:ख लाते हैं पट्ठे! ईश्वर भी कहता है—शाबाश बेटे, बहुत दूरकी कौड़ी ले आये। जहाँ बिलकुल दु:खका नामोनिशान न हो, वहाँ दु:ख ढूँढ़ लेते हैं।

दु:खालयका अर्थ क्या है? स्त्रीसे दु:ख, पुत्रसे दु:ख! दूसरी स्त्रीसे दु:ख क्यों नहीं है? अपनी स्त्रीसे दु:ख है; मेरी मानके दु:खी हुए। दूसरी दुकानका धन दूसरी दुकानमें गया, तो तुमको दु:ख क्यों नहीं होता? बोले—दुकानको मेरी मानकर बैठा है। यह सब तो अकलका खेल है न! ममता करोगे—दु:ख पाओगे; समता रखोगे—सुख पाओगे। दु:खकी कुंजी है ममता और सुखकी कुंजी है समता—ये दो चाबी हैं—ममता और समता, और ईश्वरने ये तुमको दे रखी हैं।

यह **पुनर्जन्म** क्या है? कि **दु:खालयम्, अशाश्वतम्**। यह दु:खका घर है। क्या हमेशाके लिए बन्द हो गये? कि नहीं, अशाश्वतम्—हमेशाके लिए बन्द नहीं हुए। संसारमें दु:ख भी नहीं रहेगा, और सुख जो मालूम पड़ा है—वह भी नहीं रहेगा। शाश्वतपना किसीमें भी नहीं, शाश्वतपना माने हमेशा रहना।

हमारे एक मित्र हैं बलियामें। उन्होंने बड़े मोटे-मोटे अक्षरोंमें, खूब तरह-तरहके रंगोंसे छपवाया है चित्र—**यह भी नहीं रहेगा**। उनके घर हम पहले-पहल सन् पैंतीस-छत्तीसमें गये थे—तीस वर्ष हो गये। मैंने पूछा—इसका क्या मतलब है? तो बोले—महाराज, सुख आता है, तब भी यह पढ़ते हैं—'यह भी नहीं रहेगा'

तो सुखसे आसक्ति कम होती है; और जब दु:ख आता है, तब भी पढ़ते हैं, 'यह भी नहीं रहेगा' तो ख्याल होता है कि कल यह भी चला जायेगा।

आप जरा सावधानी बरतें थोड़ी-सी; इसमें कोई बहुत बहादुरीका काम नहीं है और बड़ी पंडिताईका काम नहीं है—जब कभी आपको दु:ख आवे और रोना आवे भीतरसे, तो आप इतना ही ख्याल करो कि क्या दो दिन बाद भी हम ऐसे ही रोते रहेंगे? क्या दो महीने बाद भी हम ऐसे ही रहेंगे? दो महीने बाद दु:ख, और यह रोना जाना है। अरे बाबा! ऐसा होता है, कि घरके भीतर बैठकर रो रहे थे। इतनेमें आगया मेहमान—तो मुँह धोकर, और मुस्कुराते हुए जाकर उससे हाथ मिलाना पड़ता है। यहाँ बम्बईकी बात मैं सुनाता हूँ। जब करपात्रीजीने यज्ञ किया था, सन् बयालीसमें—तो मैं आया था। तब एक सेठने रो-रोकर हमको बताया था कि हमारा अब दीवाला ही निकलनेवाला है—बहुत कर्ज हो गया है। ये सात मकान गिरवी रखे हैं। बस, जाहिर नहीं हुई है यह खबर—इतनी बात है। मैंने कहा—जब तुम्हारे पास इतनी पूँजी है, तो अपना खर्च कम कर दो; विदेशी मोटरें और इतने ड्राइवर क्यों हैं? इतने नौकर-चाकर, इतना दान-उपादान, दो सौ घोड़े—यह क्या है? तो बोला—महाराज! अगर खर्च घटा देंगे, तो सब लोग समझ ही जायेंगे कि इनका दीवाला निकलनेवाला है। किसीको पता न चले—अब ये भीतर-भीतर घुल रहे हैं, दु:खी हो रहे हैं।

आप जानते हो न—एक महात्मा जा रहे थे कहीं। उन्होंने देखा कि रातके समय स्टेशनपर एक आदमी ठंडसे ठिठुर रहा था। ओढ़नेका जो कपड़ा था, वह छोटा था; वह सिर ढके, तो पाँव उघड़ जाय, पाँव ढके तो सिर उघड़ जाय। लग रही थी ठंड। महात्माने कहा—भलेमानुस! तुम अपना शरीर ठीकसे क्यों नहीं ढक लेते? तो बोला कि कपड़ा छोटा है महाराज! हमारा शरीर उसके भीतर नहीं आता। वे बोले कि कपड़ा अगर बढ़ नहीं सकता, तो शरीरको तू सिकोड़ सकता है न! अरे भाई, तू लेट जा सिकुड़कर, और फिर पाँव सिर—दोनों तेरे ढक जायेंगे। तो यदि पैसे नहीं बढ़तें हैं, तो आदमी अपना खर्च तो घटा सकता है न! तो दुनियामें यह जो दु:ख है, उस दु:खमें बेवकूफी-बेवकूफी है, बनावट है, कृत्रिमता है। भीतरसे दु:खी हो रहे हैं कि हाय, हमको चार पैसे नहीं मिले, और ये पट्ठे, छाती तानकर बोलते हैं—'अहं ब्रह्मास्मि!'

ये दु:खी लोग जो हैं न, रोते भी जा रहे हैं, और शिवोऽहं भी बोल रहे हैं। अरे, 'सोऽहं' बोलो, और सारे दु:ख उसमें भस्म कर दो। 'शिवोऽहं,' 'सोऽहं'

बोलना बहुत बढ़िया, 'अहं ब्रह्मास्मि' बोलना बहुत बढ़िया, लेकिन एक-एक बोलमें करोड़-करोड़ दुःख मिट जाने चाहिए। दुःख मिटानेका क्या आसान तरीका है। बड़ा सुगम है, बड़ा सरल है, और बेजोड़ नुस्खा है। अपने आपको देखो—कौन हो? कहाँ दुःख है? भगवान्से कहो कि हे प्रभु! मैं चौरासी लाख वेश धारण करके तुम्हारे सामने आया। कभी नेवला बनकर आया, कभी खरगोश बनकर आया। कभी मोर बनकर नाचा, कभी कोयल बनकर बोला। कभी सिंह बनकर गर्जना की, कभी हाथी बनकर ढोया, कभी घोड़ा बनकर दौड़ा। कभी हिरण बनकर छलांग भरी। कभी औरत बनकर आया, कभी मर्द बनकर आया। चौरासी लाख वेश-भूषाएँ धारण कीं मैंने तुम्हारे सामने! अभी तक खुश नहीं हुए? अगर हो गये खुश, तो जो मैं माँगूँ—दे दो। और खुश नहीं हुए, तो कह दो कि अब फिर नहीं आना मेरे सामने। दोनोंमें एक ही बात हुई; फिर नहीं आओ—तो मुक्ति हो गयी और जो माँगे, सो दे दें—तब भी मुक्ति हो गयी।

यह तो भाई, ऐसा है न, जैसे धनीका बेटा हो; बाप अपने बेटेके लिए हजारों पोशाक बनवाकर रखता है—बेटा नयी-नयी अपनी पसंदकी पोशाक पहने। क्या मजा है! तो यह पुनर्जन्म भी प्रेमियोंके लिए है। अगर अपना प्रीतम कहे—कि नाचो—नाचने लग गये; सो जाओ—कि सो गये; बैठो—कि बैठ गये; बोलो—कि बोलने लग गये। बोले—कि हम कठपुतली बन सकते हैं। और अगर कहो—कि हम भी कुछ हैं, हम कठपुतली बनकर नाच थोड़े सकते हैं; तो जब कड़ा बनोगे, तो टूट जाओगे भाई! वह आपने सुना होगा—एक महात्मा थे न, वे अस्सी-पच्चासी वर्षके हो गये। जब मरने लगे, तब लोगोंने उनसे जाकर पूछा, कि महाराज! आपका अनुभव क्या है? तो बोले कि अच्छा, तुम बताओ कि हमारे मुँहमें दाँत हैं, कि नहीं हैं? बोले—नहीं हैं। अच्छा, जीभ है? कि हाँ, है। बोले—कि देखो, जो कड़े-कड़े थे, सो टूट गये; जो नरम-नरम है, सो बनी है। दुनियाँमें जो जिद्दी लोग होते हैं, उन्हींको दुःख होता है; और जो अपनेको नरम छोड़ देते हैं, प्रभुके सामने कड़ा नहीं करते हैं—तेरी जैसी मौज हो, तू वैसा मेरा उपयोग कर, भोग कर—उनको दुःख कैसा? जिद्दीको ही संसारमें, प्रज्ञापराधसे, बुद्धि, समझके कुसूरसे दुःख होता है, दुःखका और कोई कारण नहीं है।

तो **अशाश्वतम्**—संसारमें दुःख भी अशाश्वत है, संसारमें सुख भी अशाश्वत है। लेकिन चंचलताको देख सकते हैं—नाराज क्यों होना? आपका बच्चा आपके घरमें जब चंचलता करता है, तो क्या आप सिर पीटते हैं? अच्छा, भगत लोग

आपके घरमें इकट्ठे हो जायँ, और नाच-नाचकर कीर्तन करने लगें, तो आपको कैसा लगेगा? मजा आवेगा न! तो आपके मनीराम भी अगर भीतर नाच रहे हैं, तो आपको मजा लेना चाहिए न! यह सारी सृष्टि नाच रही हो, और भक्त देख रहा हो, कि हमारे प्रभुको रिझानेके लिए यह सृष्टि नाच रही है! ज्ञान नाचता है, उसको प्रतीति बोलते हैं। असलमें ज्ञान और वस्तु दो नहीं हैं—एक हैं। इसलिए यह जितना नृत्य है सृष्टिका, यह सब प्रभुके अंगका ही स्पन्दन है। ज्ञान-स्वरूप जो प्रभु हैं, वही सृष्टि-प्रपंचके रूपमें स्पंदित हो रहे हैं और बिना स्पंदित हुए भी स्पंदित मालूम पड़ रहे हैं। आप कभी वृन्दावन जाओ, तो देखो, झूला पड़ता है बिहारीजीका। मालूम पड़ेगा, कि बिहारी जी झूल रहे हैं—राधा-वल्लभ झूल रहे हैं। न राधा वल्लभ झूलें, न बिहारीजी झूलें, झूला ही झूलता है। ऐसे ढंगसे झूलेको बनाते हैं, कि झूला आगे बढ़ता है—झूला पीछे जाता है, और बिहारीजी ज्यों-के-त्यों। और मालूम पड़ेगा कि बिहारीजी झूल रहे हैं। यह जो स्पन्द है न; यह संसारमें जो हलन-चलन है, जो नृत्य है जो, परिर्वतन है—इसमें अचल बैठा हुआ है—वह महादेव, वह बिहारी, वह राधावल्लभ, वह परमब्रह्म परमात्मा। देखो न, सबकुछ उसको रिझानेके लिए है; सब वही है। सब वही हिल-डोल रहा है, इसलिए **नाप्नुवन्ति महात्मानः**। महात्मा लोग जो हैं, उनको पुनर्जन्म भी दुःख नहीं देता, उनको अशाश्वत-यह क्षणभंगुर भी दुःख नहीं देता। क्यों? कि उनको सर्वत्र कृष्णका दर्शन होता है। एकबार जहाँ परमात्माकी प्राप्ति हुई, वहाँ बाबा! ये दुःख कैसे।

मैंने आपको परसों कि तरसों सुनाया था; हमारे एक प्रेमी सज्जन हैं—मित्र हैं। उनको खानेको दो तो अच्छा हो—तो भी कभी चिढ़ जाएँ, और बुरा हो—तब भी प्रेमसे खा लें। कि भाई! तुम्हारी कोई कसौटी है? कि कसौटी यह है कि मैं चीज नहीं देखता हूँ, मैं देनेवालेको देखता हूँ। अगर प्रेमसे कोई ले आया है, तो कड़वा हो—तब भी प्रेमसे खा लें। अगर लानेवालेका प्रेम न हो, तो मीठा भी हो—तब भी प्रेमसे न खायें। मैं चीज नहीं देखता हूँ: लानेका तरीका नहीं देखता हूँ—कि तश्तरीमें सजाया हुआ है कि नहीं, हाथ ही से कोई उठाकर दे दे—जूठा ही दे दे। लेकिन अगर देनेवाला हमारा प्रीतम है, तो उसमें यह कहाँ देखना है, कि उसमें सुख है—कि दुःख है; अच्छा है—कि बुरा है? हमारी कसौटी यह है कि हम यह देखते हैं—कि देनेवाला कौन है। दी गयी चीज क्या है—इससे क्या मतलब?

भक्त लोग—महात्मा लोग क्या देखते हैं? देनेवालेको देखते हैं। वह परमेश्वर क्या-क्या बना रहा है। इसलिए **पुनर्जन्म नाप्नुवन्ति**—ढूँढ़नेपर भी उनको पुनर्जन्म नहीं मिलता; उपलब्धि ही नहीं होती; अशाश्वत प्रपंचकी उपलब्धि ही नहीं होती।

अर्जुन! देखो, सारी सृष्टि घूम रही है और देखो, **पुनर्जन्म न भवति**—यह दूसरी चीज है, और **पुनर्जन्म न विद्यते**—यह दूसरी चीज है।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ १६॥

जब देहमें बैठकर देखो, तो 'पुनर्जन्म विद्यते'—पुनर्जन्म है और परमात्माके पास खड़े होकर देखो, तो पुनर्जन्म है ही नहीं। यह विचित्र बात है। यह जो मालूम पड़ता है कि यह स्वर्ग है, नरक है, पुनर्जन्म है—यह ईश्वरसे दूर खड़े होकर देखनेपर मालूम पड़ता है—माने यह फोटो लेनेका एक कोण ही है। आगरेमें एक महात्माने शीशे रख छोड़े हैं। जाओ न शीशेके सामने, तो मालूम पड़ता है कि नीचेसे कपड़ा उठता जा रहा है ऊपर और आदमी छोटा होता जा रहा है—बौना होता जा रहा है। जटियों के बंगलेमें एक शीशा लगा है, जिसके सामने खड़े होकर अपना मुँह देखनेपर गधा सरीखा लगता है; बिलकुल लम्बा मुँह हो जाता है। हमको पहले बताया नहीं उन्होंने, सब दिखाते-दिखाते ले जाकर खड़ाकर दिया उसके सामने। अरे, क्या दिखा! लम्बा, एकदम गधेकी तरह! वह शीशेकी बनावट है ऐसी, कि उसमें ऐसा दिखता है। यह अविद्याका जो चश्मा लगा हुआ है न, यह अविद्या-युक्त जो है न शीशा—अंत:करण, अविद्याके कारण इस अंत:करणकी बनावट ऐसी हो गयी है; जिसमें हम अपनेको देह दीखते हैं, अपनेको पुनर्जन्ममें पड़ा दीखते हैं, स्वर्ग-नरकमें आने-जानेवाला देखते हैं। यह कैसे है? यह शीशेका खेल है, यह वस्तुका खेल बिलकुल नहीं है। तो,

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

देखो, जो सब टीकाकारोंने अर्थ किया है—मैं बादमें सुनाता हूँ। कश्मीरमें एक हुए हैं, अभिनवगुप्त, उन्होंने इस श्लोकका जैसा अर्थ किया है, पहले वह सुनाता हूँ। लोगोंको नयी बात पसंद आती है न! वे कहते हैं—**आ ब्रह्म** एक पद अलग है, माने ब्रह्मपदकी प्राप्तिपर्यन्त **भुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन।** जबतक ब्रह्मपदकी प्राप्ति नहीं होती, अपनेको ब्रह्म जबतक नहीं जानते, तबतक ये भुवनपर भुवन जो है न—इनसे लोगोंकी पुनरावृत्ति होती है—**भुवनात्। स्वर्गादि**

लोकात्-लोकाः पुनरावर्तिनः। लोकाः जीवाः —जबतक ब्रह्मपदकी प्राप्ति नहीं होती है, तबतक स्वर्गादि भुवनोंसे, चतुर्दश भुवनोंसे जीवोंकी पुनरावृत्ति होती है। और ब्रह्मपदकी प्राप्ति होनेके बाद पुनरावृत्ति होती ही नहीं। विचित्र ही अर्थ हो गया न! माने, जैसे एक स्विच दबा देते हैं, तो रोशनी हो जाती है, ऐसे अंत:करणकी वृत्ति खट्से आत्माको ब्रह्म देख ले। बस, एक क्षण! और उसके बाद द्वैतसिद्धि भस्म हो जाए। अच्छा, साँपके मरनेमें कितनी देर है? कि जबतक तुम रस्सीको नहीं जानते हो। रस्सीका ज्ञान हुआ औ बिना लाठी चलाए साँप मर जाएगा कि नहीं? क्योंकि वह तो वहाँ था ही नहीं न। इसी प्रकार अद्वितीय जो परमात्मा है—उसको जाना, तो द्वैत-प्रपंच वहाँ भस्म हो गया। क्यों हुआ? अरे, वह तो था ही नहीं।

जो लोग ब्रह्मज्ञानके मार्गमें चलते हैं, अंत:करण शुद्ध हो और सद्गुरुकी प्राप्ति हो—तो एक धक्केमें बेड़ा पार! एक आदमीने भाँग पी ली थी। था तो अपने महलमें, लेकिन उसको ऐसा मालूम पड़े कि मैं अपने घरसे बहुत दूर, नदीके पार रह गया हूँ। अब हमें अपने घर पहुँचनेके लिए नाव चाहिए, मोटर चाहिए, मददगार चाहिए। अब वह चिल्लाये कि मल्लाह! नाव ले आओ। ड्राइवर! मोटर ले आओ; हमको अपने घर पहुँचना है। लोग सुनकर देखें, बोले—पागल हो गया है यह। अब आप बताओ, कि उसको घर पहुँचानेके लिए कौन-सी नाव चाहिए? उसको अपने घर पहुँचानेके लिए कौन-सी मोटर चाहिए? सिर्फ नशा उतर जाय—इतना ही चाहिए न। नशा उतर जाएगा, तो क्या देखेगा वह? कि मैं तो अपने घर में हूँ। यह अविद्याका नशा, ब्रह्मके अज्ञानका नशा, न जाननेका नशा, अपने जीव होनेका नशा, भ्रान्तिका नशा—इतना प्रबल नशा हो गया है, कि यह समझता है कि मैं ब्रह्मसे दूर, सच्चिदानन्दसे दूर, मुक्तिसे दूर कहीं किसी गड्ढेमें पड़ गया हूँ। अब यहींसे निकलकर पहुँचानेके लिए कौन-से आदमी चाहिए? कौन-सी मोटर चाहिए? कैसे इसको ब्रह्म बनाया जाए? केवल ऐसे, कि यह जो जीव होनेका नशा है, यह जो देहाध्यास है, यह जो अविद्या है, इसकी निवृत्तिके सिवाय इसे कुछ नहीं चाहिए।

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन! अर्जुन माने क्या है? अर्जुन माने सीधे-साधे, ऋजु स्वभावके। महाभारतकी नीलकण्ठी टीकामें अर्जुन शब्दकी ऐसी व्याख्या मिलती है। **ऋजुत्वात् अर्जुनः** —ऋजु होनेके कारण अर्जुनको अर्जुन कहते हैं, और **अर्जुन वृक्षवत् सरलत्वात्**—जैसे अर्जुन वृक्ष सरल, सीधा होता है, वैसे सीधा

होनेके कारण उसको अर्जुन कहते हैं। और **धवलत्वात्** —निर्मल अंत:करण होनेके कारण इसको अर्जुन कहते हैं। अर्जुन माने दिन भी होता है।

अहः कृष्णं अहरर्जुनञ्च प्रकाशरूपत्वात्।

प्रकाश-रूप होनके कारण अर्जुनको अर्जुन कहते हैं।

जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई है, तबतक वह पुनरावर्ती लोक है—एक शरीरसे दूसरे शरीरमें, दूसरे शरीर-से तीसरे शरीरमें जाओ, आओ, मरो। और जहाँ परमात्माका ज्ञान हुआ, अभेदका ज्ञान हुआ, वहाँ ऐसा मालूम पड़ता है, कि न था, न है और न होगा। ***मानि मानि बंधनमें आओ।***

अब देखो दूसरा अर्थ इसका—

आ ब्रह्म भुवनाल्लोका:का अर्थ है **ब्रह्मभुवन पर्यन्तम्** —ब्रह्मलोक पर्यन्त जितने लोक हैं, वे सब-के-सब पुनरावर्ती हैं। पुनरावर्तीका अर्थ आप ऐसे समझो, कि जैसे—दिन है न हमारे—रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार, शनिवार; कि फिर रविवार—हिन्दू रीतिसे रविवार पहला दिन है हफ्तेका। सूर्यकी प्रधानतासे वारका विभाग होता है। तो रविवार हफ्तेका पहला दिन है, सोमवार हफ्तेका पहला दिन नहीं है। चन्द्रमाकी प्रधानतासे दिनका, रात्रिका विभाग नहीं होता, सूर्यकी प्रधानतासे होता है। सूर्यसे लेकर शनिवारतक एक आवृत्ति, फिर सूर्यसे शनिवारतक दूसरी आवृत्ति; ये सात बार-बार आते है न! फिर बारह महीने बार-बार आते हैं। फिर संवत्सर बार-बार आते हैं; शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष फिर बारम्बार आते हैं—इन्हींको पुनरावर्ती कहते हैं। इनका चक्र चलता रहता है।

ये लोक पुनरावर्ती हैं। एक मनोरंजनकी बात आपको सुनाता हूँ। हम एक राधास्वामी दयालके पास गए। उन्होंने बताया कि राधास्वामी दयालका जो धाम है, वह ब्रह्माण्ड मण्डलसे पचास करोड़ योजन ऊपर है। मैंने उनसे पूछा—महाराज! यह पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है कि नहीं? करती है। मैंने कहा—अच्छा, पृथ्वी सहित सूर्य ध्रुवकी परिक्रमा करता है कि नहीं? करता है। यह ब्रह्माण्ड उसकी परिक्रमा करता है कि नहीं, जो पचास करोड़ योजन ऊपर है ब्रह्माण्डसे? तो बोले—करता है। तो मैंने कहा—तब कभी वह ऊपर रहता होगा, कभी नीचे रहता होगा। यह पृथ्वी परिक्रमा करते-करते कभी आपके ध्रुवधामसे ऊपर भी पहुँच जाती होगी। हँसीकी बात है। हम लोग बच्चे थे, तो हँसी-खेल ज्यादा करते थे। यह नहीं समझना, कि बिलकुल पीठकी रीढ़ सीधी करके बैठ जाएँ—ऐसा नहीं। वे बोले—देखो, मैं

सर्वज्ञ हूँ। मुझे क्या समझते हो? हमारा चेला बनना पड़ेगा तुमको। परसों गुरुवारको आना हमारे पास। मैंने कहा—अच्छा बताओ, हमारी जेबमें क्या है? अब इधर-उधर देखने लगे। हमारी जेबमें आँवले थे। उनको क्या मालूम।

देखो, चमत्कारके चक्करमें ज्यादा नहीं पड़ना चाहिए। जो लोग चमत्कारके चक्करमें पड़ते हैं, वे फिर दुनियामें दु:खी होते हैं। आदमीको भगवान्‌के भजनके मार्गमें चलना चाहिए। यह जेबमेंका आँवला बता देना मुश्किल नहीं है; तुम्हारी चिट्ठीमें क्या लिखा है—यह कोई भी बता सकता है; यह कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन अगर इस चक्करमें फँस गए, तो परमात्माकी ओरसे विमुख हो जाओगे। यह बहुत छोटी चीज है, अल्पवस्तु है। यह सब पुनरावर्ती है। पुनरावर्तीका अर्थ है—ब्रह्माको चींटी होना पड़ता है और चींटीको ब्रह्मा होना पड़ता है—यह चक्र है। जो आज जेलमें कैदी है, वह कल देशका राजा होगा। जो आज मरता है, वह कल जिन्दा होगा और जो आज जिन्दा है, उसको कल मरना होगा। कालका एक चक्र चल रहा है। गौरसे देखोगे, तो सब जगह यह चक्र मालूम पड़ेगा। दिनके बाद रात, रातके बाद दिन; कालकी दृष्टिसे, समयकी दृष्टिसे देखो, तो सब चीजें बदल रही हैं; उनका पुनरावर्तन होता है, लौट-लौटकर वही आते हैं। स्थानकी दृष्टिसे देखो, तो जो अभी पूर्व है, वह पश्चिम हो जाता है, जो पश्चिम है सो पूर्व हो जाता है। यहाँ बैठे हैं, तो नैपेन्सी रोड एक तरफ है और महालक्ष्मी दूसरी तरफ है, कोलाबा तीसरी तरफ है—और यदि हम अपनी जगह बदल दें, तो सारी दिशाओंमें हेर-फेर हो जाये। वस्तुकी दृष्टिसे भी यह चक्र चल रहा है। एक गेहूँका बीज है; उसमें से तना निकला, अंकुर निकला, फिर बीज हो गया; बीजसे फिर अंकुर निकला, फिर बीज हो गया। अंकुर और बीजके क्रमसे जो बाप है—वह बेटा हो जाता है, जो बेटा है—वह बाप हो जाता है। इसी क्रमसे यह चक्करदार सृष्टि हमेशासे घूम रही है। इसका कारण क्या है? इसका कारण है कर्म? जहाँ-जहाँ गति होगी, वहाँ-वहाँ कर्म कारण होगा। अपने भारतीय आचार्योंके द्वारा चलाए हुए जितने सम्प्रदाय हैं, वे सब मानते हैं कि इस चक्करका कारण कर्म है—बौद्ध भी, जैन भी, आर्यसमाजी भी, सनातनधर्मी भी, सिक्ख भी। भारतीय आचार्योंके द्वारा चलाये ये सब सम्प्रदाय कर्मके अनुसार उठना और गिरना, अदलना और बदलना मानते हैं।

कर्मसे एक फलकी उत्पत्ति होती है, उससे यह शरीर मिलता है। फिर वासना होती है। वासनासे कर्म होता है, कर्मसे संस्कार होते हैं, संस्कारसे वासना होती है। जैसे हम अच्छे-बुरे काम करते हैं, वैसे संस्कार पैदा होंगे; और होते भी

हैं। जो किसीको तकलीफ देकर आवेगा, वह जोशमें तबतक रहेगा, तबतक उसको नहीं मालूम पड़ेगा, लेकिन बादमें मालूम पड़ जाएगा कि हमने गलत काम किया। गलती करके उसपर दस्तखत न करे कोई—ऐसा किसीका मन नहीं है। फिर हस्ताक्षर होता है—यह ईश्वरका विधान है। अच्छा काम करेगा, तो अच्छा भाव उदय होगा ही। यह जो संस्कार पड़ता है, इसके अनुसार फिर वासना उठती है और वासनासे फिर कर्म होते हैं, और कर्मसे फिर संस्कार होते हैं। एक चींटीसे लेकर ब्रह्मातक सब इसी चक्करमें फँसे हुए हैं। इसके सम्बन्धमें शास्त्रके बहुतसे मतभेद हैं; सबकी संगति है। कैसे? कि मनमें जहाँतक काम है, वहाँतक स्त्री चाहिए, पुरुष चाहिए और क्रोध है तो दुश्मन रहेगा; लोभ है तो धन रहेगा; मोह है तो परिवार रहेगा; और उनके चक्रसे आदमीको छुटकारा नहीं मिल सकता। ये जो साधन हैं—जिनका उपदेश शास्त्रमें किया जाता है—वे कामकी पराधीनतासे छूटकर रामके पराधीन होनेके लिए किये जाते हैं; माने हम अपनी व्यक्तिगत वासना और स्वार्थको छोड़कर, उसके चक्करसे मुक्त होकर अपने कर्म किसके लिए करें? कि सबके भीतर विराजमान जो ईश्वर है, वह खुश होवे।

जबतक मनुष्य ईश्वरकी प्रसन्नताके लिए अपने कर्मका अनुष्ठान नहीं करता, तबतक उसको शान्ति नहीं मिल सकती। दुनियाकी बड़ी-से-बड़ी चीज उसको मिल सकती है—कुर्सी ऊँची-से-ऊँची मिल सकती है, उसकी दुनियामें इज्जत बढ़ सकती है, लेकिन हृदयकी जो शान्ति है—वह नहीं मिल सकती। यह मुक्ति जिसको बोलते हैं न, उसका मतलब ही है, कामसे, क्रोधसे, लोभसे, मोहसे, संसारके जो बन्धन हैं—उनसे मनुष्यको छुट्टी मिले, तब मुक्ति है। यह जो कई वेदान्ती इस भरोसे रहते हैं कि जिन्दगीमें तो काम-क्रोध-लोभ-मोहका चक्कर बना रहे—मरनेके बाद छूट जायेंगे। जो जिन्दगीमें उनको अपनाते हैं, वे मरनेके बाद भी उनको नहीं छोड़ सकते। क्यों? क्योंकि वे तो उनके प्यारे हैं। पकड़कर बैठे हैं जिनको, वे मरनेके बाद भी आवेंगे। इसलिए अपने जीवनमें अधर्मको धर्मसे जीतो। यह अधर्म कहाँसे आता है? कि राग-द्वेषसे आता है। किसीसे राग करके पक्षपात करेंगे और किसीसे द्वेष करके उससे दुश्मनी चाहेंगे। तो राग-द्वेषसे चित्तमें बुराई आती है। चित्तमें निःस्वार्थ भावका उदय होना चाहिए। वैराग्यकी भावनासे राग-द्वेषपर विजय प्राप्त करते हैं।

अहंकार भी एक पाप है—मैं बहुत बढ़िया हूँ, बहुत बड़ा हूँ। जिसके भीतर आता है, उससे पाप कराये बिना मानता नहीं, बुरा काम कराता है। अहंकारसे

छूटनेके लिए ईश्वरकी शरणागति आवश्यक है। भगवान्‌के सामने हाथ जोड़ना या भगवान्‌की शरणमें होना जीवकी कमजोरी नहीं है; यह बल है, आत्मबल है। कमजोर आदमी तो ईश्वर के भरोसे रह ही नहीं सकता। एक सिपाही चौराहेपर खड़ा होकर चाहे जिसकी मोटर रोक दे! वह किसके बलसे रोकता है? अपने व्यक्तिगत बलसे रोकता है? नहीं, सरकारी शक्तिसे, सरकारी बलसे रोकता है। सिपाही होनेसे उसका बल घट गया, कि बढ़ गया? बढ़ गया न! इस प्रकार दुनियामें जो लोग ईश्वरके सहारे काम करते हैं, उनका बल बढ़ता है-घटता नहीं है। दुनियामें सबसे बड़ा दुःख अज्ञान है, नासमझी है। आज कोई घटना घटी थी; अब कल क्या होनेवाला है—यह तो मालूम नहीं, और झूठ ही रोने बैठ जाते हैं। झूठ ही अपने दिमागपर बोझ ले लेते हैं या खुशीके मारे फूल उठते हैं। पाँवके नीचे क्या है—यह तो मालूम नहीं; सिरके ऊपर क्या है—यह तो मालूम नहीं; एक क्षणके बाद क्या होगा—यह तो मालूम नहीं—और हम सामनेकी घटकाको देखकर बहुत प्रभावित हो जाते हैं। यह सारा जो दुःख है जीवनमें, वह आत्माकी असलियत—अपने स्वरूपको न जाननेके कारण है। तुम कौन हो? तुम्हें यह मालूम है कि किसकी बहू कौन है, किसकी बेटी कौन है, किसकी दुकान कौन है, किसका पैसा कौन है—परन्तु मैं कौन हूँ—यह मालूम नहीं है। इसीको कहते हैं—दीपक तले अँधेरा। इसीको कहते हैं—कुएँमें भाँग पड़ गयी। यह आत्मा जो है न, यह है ज्ञानस्वरूप, सबको जाननेवाला, सबका साक्षी; यह कालसे नहीं कटता, और स्थानसे, देशसे भी नहीं कटता है। कालसे यह अपरिच्छिन्न है; वस्तुसे नहीं कटता और यह चैतन्य, सजातीय-विजातीय—स्वगत भेद-शून्य साक्षात् ब्रह्म है। यह आत्मा ब्रह्म है। यह ज्ञान होना परमात्माकी प्राप्ति होना है। जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी, तबतक मनुष्यको दुःख-पर-दुःख, जन्म-पर-जन्म, मृत्यु-पर-मृत्यु प्राप्त होते रहते हैं। इसलिए भगवान् लोगोंको अपनी ओर खींचनेके लिए बताते हैं—

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।

भगवान् अर्जुनको 'कौन्तेय' कहते हैं—माने कुन्ती का पुत्र। यह कौन्तेय नाम इसलिए भी पड़ा है कि इनमें बापकी प्रधानता नहीं है, माता की प्रधानता है। श्रीकृष्णकी बुआका नाम कुन्ती है—उनके बेटे हैं। श्रीकृष्णके वंशका सम्बन्ध होनेसे अर्जुनका नाम कौन्तेय है। अब श्रीकृष्ण कहते हैं—तुम तो मेरे भाई हो और मैं तुमको बिलकुल सच-सच यह बात बताता हूँ, कि जो मेरे पास आ जाता है, उसका **पुनर्जन्म न विद्यते।**

तुम मेरे पास आ जाओ, अर्जुन! कहाँ जा रहे हो? दुनियाँमें सारी चीजें मौतसे घिरी हुई हैं, एक मैं ही अमृत हूँ। दुनियाकी सारी चीजें दु:खसे घिरी हुई हैं, एक मैं ही परमानन्द हूँ। सबको बाण लगा हुआ है—तीर लगा हुआ है। बाण क्या है? जैसे किसीको तीर लगता है, तो उसको बड़ी पीड़ा होती है; तो आनन्द छिप गया। बेहोश हो जाता है, तो ज्ञान छिप गया और मर जाता है, तो सत्ता छिप गयी। लेकिन परमात्माकी जब प्राप्ति होती है, तब आनन्द जाहिर हो जाता है, ज्ञान जाहिर हो जाता है। अपना जो नित्य अस्तित्व है, वह जाहिर हो जाता है। यह परमात्मा कैसा है? यह सत् है, चित् है, आनन्द है; माने इसमें मौत नहीं है, इसमें बेहोशी नहीं है, और इसमें दु:ख नहीं है। यह सच्चिदानन्द है। इसका कोई दुश्मन नहीं है। इसके कोई माँ-बाप नहीं है, इसके कोई बेटा-बन्धु नहीं है। ऐसा जो परमात्मा है न, उसको बोलते हैं 'माम्'। तो बुरे काम छोड़ना, बुरी भावना छोड़ना, ईश्वरकी भक्ति करना और ईश्वरको जानना। जहाँ नरकमें गिरे हुए हैं, गिरी जिन्दगी बिता रहे हैं, वहाँसे धीरे-धीरे ऊपर उठना—यह परमात्मा के पास पहुँचना है।

अब थोड़ा भगवान् से भी हँसी-मजाक किया जाए, तो कोई हर्ज नहीं है भला! क्यों? कि अगर भगवान् पराये होते न, कुछ दूसरे होते, तो उनसे बोलनेमें थोड़ा संकोच करना पड़ता। भगवान्का यह नियम है, कि जो उनके पास पहुँच जाए, उसको फिर दुनियामें नहीं आने देते। एक तो इसलिए, कि आनेकी इच्छा ही नहीं होगी। इतना मजा है, इतनी रोशनी है और ऐसा बढ़िया जीवन है वहाँ; अनन्त जीवन है वहाँ; दिव्य जीवन है, प्रकाशमय जीवन है, आनन्दमय जीवन है! जहाँ मृत्युका लांछन नहीं है, जहाँ अज्ञानान्धकारकी रात्रि नहीं है, जहाँ दु:ख—पीड़ा नहीं है—ऐसा जीवन है। एक बार जो उसमें पहुँच गया, उसका फिर लौटनेका मन नहीं होता। और लौटनेका मन न हो, तो जबरदस्ती भगवान् निकालें क्यों? उनके घरमें कोई खिलानेकी, पिलानेकी कमी होवे, तब तो कहें—कि भाई! जाओ अब। बहुत दिन हो गये। वहाँ जानेपर मनुष्यके मनमें संकल्प नहीं उठता आनेका। और भगवान् भेजते नहीं। कोई कहते हैं कि नहीं बाबा! जो गया, सो लौटकर तो आया नहीं, तो कौन खबर दे! शायद ऐसी बात होवे—कि महात्मा लोग तो बराबर वर्णन करते हैं कि वहाँ बड़ा सुख है, बड़ा ज्ञान है। और जो पहुँचता हो, जब वहाँ पहुँच जाय तो ठनठन पाल! कुछ नहीं! निर्गुण, निराकार, निर्विशेष निर्धर्मक—ऐसे बोलते हैं न! वहाँ क्या रखा है! सबको अपनी अपनी चीज चाहिए ना! अब जब चिड़ियाको वहाँ जानेपर फल खानेको न मिले, पशुको मांस खानेको न मिले, तो

वह कहेगा—भगवान्‌के धाममें क्या है! बोले—कि वहाँ तो कोई भोग्य वस्तु ही नहीं है। बिना कोई चीज खाये और बिना मुँह खोले बिना गलेसे निगले, वहाँ नित्य नयी-नयी तृप्ति होती रहती है। ऐसा है! खानेकी, दाँतसे चबानेकी तकलीफ नहीं करनी पड़ती, इसलिए बिना दाँतवाले भी वहाँ सुखी रहते हैं। वहाँ स्त्री-पुरुषकी जरूरत नहीं पड़ती, सुख दोनोंको है। ब्याहकी जरूरत नहीं पड़ती, खिलानेकी जरूरत नहीं पड़ती। वहाँ धनी होनेकी जरूरत नहीं पड़ती, अपने पास पूँजी रखनेकी जरूरत नहीं पड़ती। वहाँ सब सुख अपने आप प्राप्त है। पोथी लेकर पाठशालामें नहीं जाना पड़ता—सब ज्ञान अपने आप ही प्राप्त है। वहाँ जीनेके लिए डॉक्टर-वैद्यकी जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि वहाँ रोग ही नहीं होता, अनामय पद है। वहाँ परमानन्दमें हर समय मगन! ऐसा यह परमानन्द रूप पद है, कि वहाँसे फिर आना-जाना नहीं है; और आप सच समझो—कि क्या वह यहाँ नहीं है? आप सबलोग देखो। हम अपने दिलकी बात नहीं कहते हैं। आप सब लोगोंके दिलकी बात कहते हैं। वह हमारे दिलमें भी है, और आपके दिलमें भी है, और हमारा आत्मा है और आपका आत्मा है, और कीड़े-पतिंगेका आत्मा है, और ब्रह्मा-विष्णु-महेशका आत्मा है। निराकार-साकारकी आत्मा है, परन्तु उसको न जानना, न पहचानना, न अनुभव करना—यही उससे दूर होना है। न पहचानना ही उसके मिलनेमें देरी है। यह मरनेके बादकी चीज नहीं है, इसी जिन्दगीकी चीज है। अभी, यहीं और इसी रूपमें परमात्माकी प्राप्ति होवे।

अब देखो, दूसरे धर्मोंमें भी क्या ऐसी आत्माका स्वरूप मिलता है? नहीं, दूसरे धर्मोंसे, दूसरे मजहबोंसे यही विलक्षणता है। कोई कहते हैं—सातवें आसमानमें परमात्मा है; कोई कहते हैं—वैकुण्ठमें है, कोई कहते हैं—गोलोकमें है, कोई कहते हैं—दुनियासे परे है, निराकार है, ऐसा है, वैसा है। और परमात्मा तो हाजरा हजूर, अभी है, यहीं है, और यही है। निकटसे निकट है। जहाँ उसको पहचान लिया, वहाँ फिरसे जन्मका कोई प्रसंग ही नहीं। असलमें आदमी दिन भरमें दस दफे जिन्दा होता है, और दस दफे मुर्दा होता है। सोचो, तुम दुःखी हो, कि सुखी हो? दिन-रात दोनों की गिनती करके आप अपने बारेमें निर्णय दे सकते हो, कि आप दुःखी हो, कि सुखी हो। कितनी बार दिन भरमें यह ख्याल होता है, कि मैं सुखी हूँ, और कितनी बार यह ख्याल होता है, कि मैं दुःखी हूँ। कितनी बार यह ख्याल होता है कि मैं पापी हूँ, और कितनी बार यह ख्याल होता है, कि मैं भलेमानुस हूँ। इसीका नाम जन्म है। जो अपनेको एक मिनट पहले सुखी समझ

रहा था, अब वह दो मिनटमें दुःखी हो गया। उसका जन्म हो गया। पहले सुखी जन्म था, अब दुःखी जन्म हो गया। अभी अपनेको पुण्यात्मा समझ रहा था, थोड़ी देरके बाद अपनेको पापी समझने लगा। तो क्या हुआ? जन्म हो गया! वह जब अहं बदल जाता है न—जैसे मैं गृहस्थ हूँ—तो यह एक जन्म है और मैं संन्यासी हूँ—यह दूसरा जन्म है। जब 'मैं' उपाधि बदल गयी, सुखीपना बदल गया, दुःखीपना आगया; दुःखीपना बदल गया, सुखीपना आगया। पापीपना बदल गया, पुण्यात्मापना आगया और पुण्यात्मापना बदल गया, पापीपना आगया। यह जो अपने 'मैं'को बदलते रहते हो न—इसीका नाम जन्म है। जन्मते रहते हैं, जन्मते रहते हैं, जन्मते रहते हैं।

हमारे एक मित्र गीताकी कथा करते थे। उन्होंने सुनाया कि जन्म क्या है। बोले—एक योनिसे दूसरी योनिमें जानेका नाम जन्म नहीं है। अगर एक स्त्री नाटकमें पुरुष बन जाय, तो उसका जन्म कहाँ हुआ? और एक पुरुष नाटकमें स्त्री बन जाय, तो उसका जन्म कहाँ हुआ? क्योंकि उसका जो 'मैं' है, वह यही है कि मैं औरत हूँ, या मैं मर्द हूँ; वह बदलता नहीं। अपनेको स्त्री जानते हुए भी पुरुषका नाटक कर ले, और अपनेको पुरुष जानते हुए भी स्त्रीका नाटक करले, तो उसका जन्म कहाँ बदला? जो अपनेको नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मा जानते हुए भी अनेक रूपमें हो जाय, उसका जन्म नहीं हुआ। जन्म तो उसका हुआ, जिसका, 'मैं' बदल गया; सुखीसे दुःखी हो गया, दुःखीसे सुखी हो गया; पापीसे पुण्यात्मा हो गया, पुण्यात्मासे पापी हो गया। यह जो दिन भरमें सत्रह रूप धारण करते रहते हैं, इसीका नाम जन्म होता है। भावसे भावान्तरकी प्राप्तिका नाम जन्म है, रूपसे रूपान्तरकी प्राप्तिका नाम जन्म नहीं है। एक जगहसे दूसरी जगह जाना, एक शक्लसे दूसरी शक्ल मिल जाना—इसका नाम जन्म नहीं। जब हम अपनेको दूसरा समझ लेते हैं, तब हमारा जन्म होता है।

परमात्माको पकड़ो भाई! परमात्माको पकड़ लेनेके बाद आत्माका वह स्वरूप प्रकट होता है, जो सुखमें-दुःखमें, पापमें-पुण्यमें, जन्ममें-मृत्युमें, दिनमें-रातमें, सत्यमें-असत्यमें, ज्ञानमें-अज्ञानमें—सर्वत्र एकरस रहता है; अपने आत्माके उस स्वरूपका साक्षात्कार, उस स्वरूपकी उपलब्धि होती है।

आओ चलें, परमात्माके पास चलें। बोले—नहीं, आओ, दुनियामें ही रमें। तो बताया है—कि दुनियामें चक्कर काटना पड़ेगा, पुनर्जन्म होगा। कि पुनर्जन्म कैसे होगा? तो कहते हैं—कि ब्रह्माका भी पुनर्जन्म होता है, औरोंकी तो बात ही क्या!

यह देखो, संसारसे वैराग्य करानेके लिए, बदलनेवाली चीजोंमें फँसना नहीं! हे देवता! तुम पाँच वर्षके लिए कुर्सीपर बैठाये गये हो। अगर तुम अपनी पहली स्थितिको भूल जाओगे, तो जबरदस्ती यह कुर्सी छिन जायेगी। यह जो तुमको सुविधा मिली है, वह अगर ठीक तरहसे बिताओगे तो और भी मिल सकती है, और गलत तरहसे बिताओंगे, तो गलत हो जायेगा। ब्रह्माको भी अपने स्थानसे हटना पड़ता है। उसका हिसाब बताते हैं—

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥ १७॥

यह वैराग्यकी प्रक्रिया है। महात्मा लोग दुनियाकी तो चीज क्या, ब्रह्मलोकको भी कुछ नहीं समझते हैं। कहते हैं, एक बार कुछ हंस मानसरोवरसे उड़ते चले आ रहे थे। इधर रास्तेमें कहीं चील कौवे मांस खा रहे थे। उन्होंने देखा, कि झुण्डके झुण्ड हंस आ रहे हैं, तो उन्होंने सोचा—कहीं ये आक्रमण करके हमारे मांसके टुकड़े न छीन लें, तो मुँहमें ले—लेकर सब उड़े। हंसोंने कहा कि हे चील-कौओ! तुम लोग अपनी मौजसे खूब खाओ—पीओ। यह चीज हमको नहीं चाहिए। हम मानसरोवरके निवासी हैं, हम कमलका रस पीते हैं। हम मोती चुगते हैं, हम ये दुनियाकी चीजें नहीं चाहते।

मनुष्यको अपने मनको कभी नीचे नहीं गिराना चाहिए, हमेशा अपने मनको परमात्मामें रखना। इतनी बड़ी चीज जब हमको हमारे दिलमें प्राप्त है, तो दुनियाकी छोटी चीजके लिए क्यों व्याकुल होना।

आपको पच्चीस-तीस वर्ष पहलेकी बात बताते हैं। कोई बड़े सेठ हमको अपने घरमें ले गये थे। उनकी माताजी हमसे बहुत प्रेम करती थीं। कोई बात चली, तो माताजीने बताया कि महाराज! दूसरे लोग व्यापार करते हैं, तो अपने घरकी सम्पत्ति तो व्यापारमें लगा ही देते हैं, दूसरोंसे ले लेकर भी लगाते हैं। दूसरोंके शेयर बहुत होते हैं। लेकिन हम जो व्यापार करते हैं, तो इतने लालचमें कभी नहीं आते। बोलीं—आंधी सम्पत्ति हमारे घरमें रखी हुई है। जितनी सम्पत्ति व्यापारमें लगायी गयी है, इतनी सम्पत्ति हमारे घरमें अलगसे रखी हुई है, कि जरूरत पड़े, तो हम अपने करोड़ोंके व्यापारको सँभाल सकें।

हमने आपको दृष्टान्तकी बात कही। दुनियाकी चीज कभी आये, कभी जाय, कभी बिगड़े, कभी बने—हमारे घरमें, हमारे हृदयमें इतनी बड़ी पूँजी रखी हुई है कि जब हम चाहें, तब अपनेको सँभाल सकते हैं। अपना आत्मा, अपना परमात्मा,

अपने हृदयमें रहनेवाला अपना प्यारा यदि अपने हृदयमें सुरक्षित है, तो बाहरकी चीजोंका आना-जाना क्या करेगा?

अब ब्रह्माका एक दिन कितना होता है, यह बताते हैं—**सहस्र-युगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः**। वैसे संसारमें तो गणितज्ञ बड़े-बड़े हैं, परन्तु गणितका पुराना जो रूप है, वह भारतवर्षसे यूनानके रास्ते सारी दुनियामें फैला हुआ है। ये जो संख्याएँ हैं न, वे सब जगह यही हैं। यह दस तककी जो गिनती है न, यह सबसे पुरानी हिन्दुस्तानमें है। ये बारह महीने भी सबसे पुराने हिन्दुस्तानके ही हैं। सुकरातका जो चेला था आगस्त्य, उसने शोध किया कि ग्यारह महीने होनेसे तो काल-चक्रकी गणना ठीक नहीं होती है, बारह होनी चाहिए। तो एक महीना उसके नामका बढ़ाया गया; और भारतवर्षमें वेदोंके समयसे ही बारह महीने हैं। अच्छा, गणितकी संख्या जो अपने इधर है न—जैसे दस है, तो दस, सौ, हजार, दस हजार, लाख, करोड़, अरब, नील, पद्म—ये और इससे भी बड़ी-बड़ी संख्याएँ—परार भी एक संख्या है, असंख्य एक संख्याका नाम है—असंख्यात्—ये सब पुरानी पुस्तकोंमें मिलती हैं। इससे मालूम होता है, कि हमारे जो विद्वान् थे, वे गणितमें बड़े निपुण थे। आजकलके वैज्ञानिक सोच नहीं सकते इस बातको, कि जब दूरबीन-खुर्दबीन जैसे बड़े-बड़े यन्त्र नापनेके लिए नहीं थे, तो अमुक-अमुक दिन सूर्यमें ग्रहण लगेगा, और अमुक दिन चन्द्रमामें ग्रहण लगेगा—यह गणित भारतवासी कैसे निकालते थे। यह भी कैसे उन्होंने पकड़ा, कि चन्द्रमाकी गति ऐसी, और पृथ्वीकी गति ऐसी, और सूर्यकी गति ऐसी है।

एक सहस्र चतुर्युगी—माने एक हजार चतुर्युगीका ब्रह्माका एक दिन होता है। एक हजार चतुर्युगीका अर्थ यह होता है, कि चार लाख बत्तीस हजार वर्षका तो कलियुग होता है। आठ लाख चौंसठ हजार वर्षका द्वापर होता है। बारह लाख अट्ठानबें हजार वर्षका त्रेता होता है, और सतरह लाख अट्ठाईस हजार वर्षका सत्ययुग होता है। यह कलियुगका दुगना द्वापर, कलियुगका तिगुना त्रेता और कलियुगका चौगुना सत्ययुग—कुल मिलाकर तैंतालीस लाख बीस हजार वर्षकी एक चतुर्युगी होती है। ऐसी-ऐसी एक हजार चतुर्युगी ब्रह्माके एक दिनमें होती है। एक हजार चतुर्युगीका अर्थ है—चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष—जो हमारे हिसाबसे ब्रह्माका एक दिन होता है, और इतनी ही बड़ी एक रात होती है। अब हिसाब लगाओ सृष्टिका। अब देखो, वैराग्यकी क्या बात है उत्तम; कि

इस सृष्टिमें फँसो मत। समझो ब्रह्माकी एक सभा है, और उसमें एक घड़ी लगायी हुई है। एक दिनमें एक सहस्र चतुर्युगी; सहस्र चतुर्युगीमें चौदह मन्वन्तर। तो समझ लो, चौदह घंटेका ब्रह्माका एक दिन; उस एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगी संज्ञा संज्ञान सहित बहत्तरके लगभग—इकहत्तरसे ज्यादा और एक चतुर्युगी में तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष। अब सोचो—ब्रह्माके एक घंटेमें एक मन्वन्तर, और एक मन्वन्तरके इकहत्तरवें हिस्सेका—इकहत्तर मिनटका अगर एक घंटा मानें, तो एक चतुर्युगी; और उसमें ब्रह्माजीकी घड़ीमें जो टिक-टिक-टिक होती है न, उसमें कितनी सृष्टि बदलती है, कितने राज्य बदलते हैं, कितनी उथल-पुथल होती है, कितनी संस्कृतियाँ बदल जाती हैं, कितने सम्प्रदाय बदल जाते हैं, कितनी भाषाएँ बदल जाती हैं। किसको पकड़कर बैठते हो भाई—कि इसको हम नहीं छोड़ेंगे?

आपको हिन्दीकी बात सुनावें। सन् छब्बीस-सत्ताईसमें जैसी हिन्दी हम लोग अखबारोंमें पढ़ते थे न, और जैसी कविता पढ़ते थे, अब वैसे नहीं होती हैं; बदल गयी है। वेदकालकी संस्कृत दूसरी है, ऋषिकालकी दूसरी है, और अबके विद्वानोंके समयकी संस्कृत दूसरी है। परिवर्तन होता जा रहा है—वस्तुओंके गुणमें, धर्ममें, आकृतिमें, संस्कृतिमें, भाषामें, सम्प्रदायमें, राज्यमें, शासनमें, आकृति-प्रकृतिमें परिवर्तन होता जा रहा है। एक अपरिवर्तनशील जो वस्तु है न, उसको परमात्मा बोलते हैं; वह सच्चा दान है और वह सच्ची वस्तु है। किसी भी बदलनेवाली चीजके लिए जिद्दकर बैठना—कि वह हमेशा हमारे पास रहे, और हम उसको पकड़े ही रहे—संसारमें दुःखका सबसे बड़ा कारण है। दुनियामें जब कोई चीज हमारे हाथमें आती है, तब हम उसको पकड़ लेते हैं—कि बस-बस, यही-यही। अब वह तो जायेगी; और जायेगी, तो रोओगे।

'सहस्र युग पर्यन्त'—ब्रह्माका एक दिन कितना हुआ? हमारे हिसाबसे चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षका ब्रह्माका एक दिन, और उतनी बड़ी रात-चौबीस घंटे। अब उसके हिसाबसे पन्द्रह दिनका पक्ष हुआ, महीना हुआ तीस दिनका, तीस सौ पैसठ दिनका वर्ष हुआ, और उस वर्षके हिसाबसे ब्रह्माजी सौ वर्ष जिन्दा रहते हैं। माने-ब्रह्मा भी मरते हैं। और यह ब्रह्माका जो जीवन है न सौ वर्षका—यह विष्णुका एक क्षण है। कालकी अनित्यतापर विचार करो ज़रा। विष्णुकी आयु शंकरका एक क्षण है। और यह शंकरजीकी सौ वर्षकी आयु निराकार ईश्वरका एक संकल्प है, और वह संकल्प निर्गुण परब्रह्म परमात्मामें

केवल प्रतीति, केवल कल्पना है! अब जिसको वह परमात्मा प्राप्त हो जाय, वह मुक्ति हो जाय, उसकी उम्र कितनी बड़ी!

अब इस तरहसे स्थानको ले लो। एक-एक ब्रह्माण्डमें एक-एक ब्रह्मा और विराट्के एक-एक रोम-कूपमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड, और वह विराट् हिरण्यगर्भका आविर्भाव, और वह हिरण्यगर्भ ईश्वरका परिकल्प; वह ईश्वर मायाके सम्बन्धसे परब्रह्म परमात्मामें भासमान; फिर परमात्मा कितना बड़ा हुआ? परमात्माके बड़प्पनको देखो, परमात्माकी अविनाशिताको देखो, परमात्माकी पूर्णताको, अद्वितीयताको देखो—वहाँ पुनर्जन्मका क्या प्रसंग है! अगर छोटी चीज में अपने दिल-दिमागको लगाओगे, तो दु:खी होना पड़ेगा।

ब्रह्माजीके दिन-रातको जिसने जान लिया, दोनोंका माप ठीक-ठीक जान लिया, वह **अहोरात्रविद्** है। देखो, यह जितनी दुनिया दिख रही है, वह जब ब्रह्माजी सोते हैं—तब मिट जाती है, और जब जागते हैं, तब प्रकट हो जाती है। माने, हर चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षका दिन पूरा होनेपर ब्रह्मा सोते हैं। अब देखो! वेदान्ती लोग जो हैं न, जिनको यह आदत पड़ जाती है कि बस, हर समय आत्मा ही आत्माकी बात करें, वे इसको पसंद नहीं करते हैं, लेकिन देखो, इसमेंसे बात क्या निकलती है, वह तो ध्यानमें दो। एक तो जिन चीजोंको दुनियामें तुम बहुत महत्त्वपूर्ण समझते हो, परमात्माकी दृष्टिसे उसका कोई महत्त्व नहीं है। दूसरी बात यह, कि जब ब्रह्मा सोते हैं, तब सृष्टि सो जाती है, और जब जागते हैं, तब सृष्टि जाग जाती है। इसका मतलब तो यह हुआ, कि जैसे हम सपना देखते हैं न; तो जबतक सपना देखते हैं, तबतक सपनेकी सृष्टि रहती है, और जब गाढ़ निद्रा आ जाती है, तब सपनेकी सृष्टि मिट जाती है। यह जो सृष्टि दिखायी पड़ रही है, यह तो ब्रह्माका स्वप्न है। हम सब शरीर-धारी कैसे? बोले—ब्रह्माके स्वप्नमें! जबतक वे सपना देख रहे हैं, तबतक हम हैं। एक ब्रह्माण्डका ब्रह्मा, और अनन्त कोटि ब्रह्माण्डका जो ब्रह्मा है—हिरण्यगर्भ, उसके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या। तो—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥ १८॥

सब चीजें अव्यक्तमें-से व्यक्त होती हैं, अनजानेमें-से जाहिर होती हैं। एक चीज देखो, पोस्तेका दाना देखो; एक गेहूँका दाना देखो—उसके भीतर तना कहाँ है? आम खाते हैं न; तो आमका बीज भी तो देखते होंगे न! वह ऊपरसे सख्त होता

है, भीतर उसके जो गुठली होती है न, उसकी विद्या शायद आप लोग न जानते होंगे। गाँवके लोगोंको जब गेहूँ खानेको नहीं मिलता है न, दुर्भिक्ष पड़ता है या बहुत गरीब लोग होते हैं, तो ये आमके जो बीज हैं न—उनको फोड़ते हैं, जैसे बादाम तोड़ते हैं—ऐसे। तो उसमेंसे जो गिरी निकलती है, उसको पीसकर आटा बनाते हैं और गुड़ मिलाकर उसकी रोटी खाते हैं। आप बता सकते हैं, कि इस बीजके भीतर कितने आम छिपे हुए हैं? है कोई गणितज्ञ ऐसा? अरे, वह बीज नहीं, ब्रह्माका बाप है। वह विष्णु है। कैसे? आप देखो! जैसे एक आमका बीज बो दिया जाय; उसमें-से एक पेड़ निकला, और दस वर्षका होनेके बाद वह फल देने लगा, और हर साल मान लो, पाँच हजार फल एक पेड़पर लगते हैं—तो सौ बरसतक वह कितने फल देगा? और फिर ये सब फल धरतीमें लगा दिये जाएँ, और सबके पेड़ हो जायँ, उसमेंसे जो फल निकलेंगे—वे कितने होगे? एक समय सृष्टिमें ऐसा आवेगा, कि जो आपके हाथमें आपका बीज है, उसी बीजके सारे पेड़ धरतीपर, सारे ब्रह्माण्डमें होंगे। बढ़ते जायँ, बढ़ते जाएँ! तो आमोंका ब्रह्मा कौन हैं? आमोंका ब्रह्मा वह है, जो आपके हाथोंमें बीज है। इसीसे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें-के एक-एक कणमें कोटि-कोटि ब्रह्मा छिपे हुए हैं। आप देखो उसमें, आगे सारी सृष्टि आपकी होनेवाली है। जब बीज भस्म हो जाता है, तब सृष्टि नहीं होती है। यह जो मनमें वासना है न; यह मनमें वासनाके रूपसे सचूची सृष्टि छिपी हुई है। और जब आत्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान होकर—वासनाका जो मूल है अज्ञान—वह अज्ञान ही नष्ट हो जाता है, तब वासना दग्ध हो जाती है, और तब मनुष्यको कर्मफलकी प्राप्ति होती है। इसीलिए मुक्तिके मार्गमें जिसको चलना होता है, उसको थोड़ी बहुत चीजका नहीं, बहुत बड़ी वस्तुका ख्याल करना पड़ता है। इसीलिए कहते हैं, कि भाई! इस रास्तेपर चलो, तो यह लक्ष्य तो बहुत बड़ा है, लेकिन इस रास्तेमें चलनेका फल तुम्हें पहले कदमपर ही मिलना शुरू हो जायेगा। एक कदम इधरको रखो, और देखो इसका मजा! इस जीवनमें यदि सुख बुलाना चाहते हो, शान्ति बुलाना चाहते हो; यदि अपने जीवनमें पवित्रता चाहते हो, एकाग्रता चाहते हो; यदि अपने जीवनको सफल करना चाहते हो—तो इस रास्तेपर चलना पड़ता है। तो,

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।

जब ब्रह्माजीका दिन होता है, तब उसी अव्यक्तमें से। व्यक्त उसको कहते हैं, जो जाहिर है—प्रकट है और अव्यक्त उसको कहते हैं, जो अप्रकट है,

अनजाहिर है। इसीमें-से ये सारी प्रकट चीजें निकलती हैं। जब ब्रह्माजीकी रात्रि आती है, तो उसी अव्यक्तमें सब-की-सब लीन हो जाती हैं। देखो, दुनियामें दो तरहकी चीज होती हैं—जैसे हम लोग सोते हैं न, तो दुनिया मर तो नहीं जाती; दुनिया अपना काम करती रहती है और हम उसको छोड़ सो जाते हैं। स्त्री भी है, पुत्र भी है, धन भी है, मकान भी है और हमारे मनमें जो सबके साथ सम्बन्ध है, वह सोते समय टूट जाता है। बिना सम्बन्ध तोड़े कैसे सोयेंगे? हमारे बाबा हमको गोदमें लेकर सोते थे तख्तेपर। पहले तो पकड़कर सोते; जब सो जाते और मैं करवट बदलता, तो धरतीपर गिर जाता, तो उनको पता ही नहीं चलता। मैं धरतीपर पड़ा रहता। जब वे जागते, तो ढूँढ़ते—कहाँ गया, कहाँ गया! पति-पत्नी, माँ-बेटे, बाप-बेटे, दादा-पोते सोते हैं और सोते समय सम्बन्धका सारा सूत्र कट जाता है। हम लोग सोते हैं, तो सृष्टि नहीं मिटती, सिर्फ रिश्ता मिटता है। सो जानेपर दुश्मन रहता है, परन्तु दुश्मनी नहीं रहती; मम्मी रहती है, पर ममता नहीं रहती। जब हम लोग सोते हैं, तो चीज नहीं मिटती, सिर्फ सम्बन्ध मिटता है, लेकिन जब ब्रह्मा सोते हैं, तो ब्रह्माकी कारीगरी भी मिट जाती है और सम्बन्ध भी मिट जाता है; केवल पंचभूत रहते हैं। मिट्टी, पानी, आग, हवा—ये ही रहते हैं। और, जब हिरण्यगर्भ सोता है, तब ये पंचभूत भी नहीं रहते हैं, और सम्बन्ध भी नहीं रहता है। ईश्वरको कभी नींद आती नहीं, उनके तो संकल्पमें यह सारी सृष्टि है। ब्रह्म जिसको कहते हैं, उसमें संकल्पकी भी प्राप्ति नहीं है। ईश्वरमें एक संकल्प है—उसे नित्य माया कहो, संकल्प कहो। हिरण्यगर्भमें वस्तु और सम्बन्ध जुदा-जुदा नहीं है, ब्रह्मामें पंचभूत और सम्बन्ध जुदा-जुदा हैं, और हमारे तो, महाराज! सब वस्तुएँ रहती है, केवल सम्बन्ध ही कटता हैं सोते समय; फिर जगे—तो ज्यों-के-त्यों! देखो, रोते-रोते सो जाते हैं, तो उतनी देर दुःख नहीं रहता है, फिर जग गये—फिर रोने लगते हैं। दुनियामें याद कर-करके रोते हैं; सचमुच, जैसे कोई कहे—कि आओ बैल, हमको मारो। ऐसे दुनियाके लोग पुरानी बातोंको याद कर-करके अपने दिलको कुढ़ाते रहते हैं, चिढ़ाते रहते हैं। इस बातको समझना चाहिए कि यह भूतोंका जो गाँव है, यह कैसे पैदा होता है और कैसे ब्रह्मामें लीन होता है।

☆

१३

भगवान् कहते हैं—भाग्यसे जिसको मेरी प्राप्ति होती है, उसका पुनर्जन्म ही नहीं कटता, जन्म भी कट जाता है। आपको इसकी कसौटी बता देते हैं। ऐसा कहनेवाले भी लोग होते हैं न, कि हमारा पुनर्जन्म नहीं होगा; उनमें थोड़ेसे नास्तिक होते हैं। उनकी पहचान क्या है? कि जब वेदान्तका ज्ञान होता है, तो इसके पहले जो जन्म हुए हैं, वे—और अब जो जन्म है—सो, और आगे जो जन्म होनेवाले हैं—वे, तीनों कट जाते हैं। और जो नास्तिक होते है न, वे यह तो कहेंगे कि हमारे अगले जन्म नहीं होंगे, लेकिन यह जन्म नहीं हुआ है—यह बात उनकी समझमें नहीं आवेगी। यह देह है, माँ है, बाप है, बेटा है, बेटी है, ब्राह्मण है, संन्यासी है, गृहस्थ है—सब कुछ दीखता है, पर जिसको ब्रह्मज्ञान हो जाता है, उसकी वृत्तिमें यह सब **गोविन्दाय नमो नमः** हो जाता है। जो कहे कि हमारा अगला जन्म नहीं होगा, और यह जन्म हमारा है, यह नास्तिक हुआ न! आजकल ज्यादातर वेदान्तके नामपर नास्तिक लोग यही धारणा बनाते हैं। यह जन्म तो है, इसमें खाओ-पीओ, मौज उड़ाओ—यही जगत्का मेला है। एक नेचर उनके साथ लगी रहती है—नेचर माने न्यक्तचर, जो नीचे जाय। **न्यक्तं नीचं चरति इति न्यक्तचर।** यह हमेशा उनके साथ लगी रहती है, और वे नेचरकी माँग पूरी करते हैं, और अगले जन्मके बारेमें नास्तिक होते हैं।

एक नास्तिककी दूसरी पहचान भी आपको बताते हैं। वह जगत्का उपादान कारण तो मानता है, माने जिस मसालेसे यह दुनिया बनी है—मिट्टी है, पानी है, आग है, परमाणु है, मैटर है, एनर्जी-ऊर्जा है—ऐसा कुछ तो है जगत्के मूलमें, परन्तु इसको बनानेवाले ईश्वरको वह नहीं मानता है। वह जगत्का उपादान कारण मानता है, और निमित्त कारण नहीं मानता। और यह जन्म मानता है, और अगला जन्म नहीं मानता है—दूसरी पहचान यह है। नास्तिक लोगोंकी मान्यताके साथ, हमारी जो शास्त्रीय मान्यता है—उसको नहीं मिलाना; यह बिलकुल अलग चीज है।

भगवान्ने कहा—मुझे अगर प्राप्त हो जाए कोई, तो उसका जन्म-पुनर्जन्म कुछ नहीं होता। निर्गुण तत्त्वका ज्ञान हो, तब भी पुनर्जन्म नहीं होता, और सगुण तत्त्वसे सायुज्य हो जाय, तब भी पुनर्जन्म नहीं होगा और योगके द्वारा यदि सूर्यमण्डलका भेदन करके क्रम-मुक्ति प्राप्तकर लें, तब भी पुनर्जन्म नहीं होगा।

लेकिन जो लोग कामनाके वशीभूत होकरके संसारकी वस्तुओंमें तो आसक्त हैं—स्त्रीमें, पुरुषमें; दोनोंके सम्बन्धमें फँसे हुए हैं। इस जन्ममें तो वह चीज उनको चाहिए, और अगले जन्ममें न मिले, इसमें रुकावट डालनेवाला कौन है? तो वे वासनावान् प्राणी जो हैं, वे पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं।

अब आपको एक दूसरी बात सुनाते हैं—

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।

मनुस्मृतिमें ठीक इसी ढंगसे यह बात कही हुई है; बड़े विस्तारसे इन युगोंकी गणनाकी गयी है। कई श्लोक हैं वहाँ—

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः।
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत॥
चत्वार्याहुः सहस्त्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगं।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥

ऐसे-ऐसे वर्णन करके यह बताया है, कि बड़े-बड़े विद्वान् इस बातको समझते हैं—कि ब्रह्माका दिन कितना बड़ा और रात कितनी बड़ी है। मनुस्मृतिमें ही कहा है—

एतां द्वादशसाहस्त्रीं युगाख्यां कवयो विदुः।

साधारण लोग इस दिनमान-रत्रिमानको नहीं समझ सकते। भला दिन-रात समझनेमें विद्वान्का क्या काम है? वह तो मूर्ख ही समझ ले! देखो, हम लोगोंका दिन होता है, रात होती है, और रातमें चन्द्रमा और मनकी शक्ति बढ़ जाती है और दिनमें सूर्यकी—बुद्धिकी और आँखकी शक्ति बढ़ जाती है। यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आती है। दिनमें नेत्रकी शक्ति बढ़ती है, बुद्धिकी शक्ति बढ़ती है, आदमी व्यवहार—प्रवण (प्रायण?) हो जाता है, और रात्रिमें चन्द्रमाकी शक्ति बढ़ती है और मनकी शक्ति बढ़ती है। उस समय वह वासना, संकल्प, भोग ज्यादा करना चाहता है। इसीसे रातके समयके लिए निशाचर शब्दका भी प्रयोग आता है न! निशिचर, निशाचर—ये सब। ब्रह्माजीका दिन-रात जाननेमें क्या तारीफ है? असलमें जो ब्रह्माजीके लोकमें जाय—तो जाने। वहाँ जाना भी मुश्किल है। बुद्धिसे भी ब्रह्मलोकतक पहुँचना बड़ा कठिन है।

अब आपको हिसाब एकबार फिरसे सुना देते हैं। कलियुग, द्वापर, त्रेता और सत्ययुगकी एक चतुर्युगीमें कुल मिलाकर तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष होते हैं। और इसको कर दो हजार गुना—**सहस्त्रयुगपर्यन्तम्** माने चार अरब बत्तीस करोड़

वर्ष हमारे हिसाबसे! इतना बड़ा ब्रह्माका दिन और इतनी बड़ी रात्रि, और इसी हिसाबसे पक्ष, फिर महीना, फिर वर्ष, फिर सौ वर्ष ब्रह्माकी आयु। यह जो ब्रह्माण्ड है, इसको पंचभूत नहीं कहते हैं, विराट् भी नहीं कहते हैं। यह ब्रह्माण्ड पंचभूतोंके मसालेसे बना हुआ एक सन्निवेश—विशेष है। जैसे हम लोगोंका देह होता है, वैसे यह ब्रह्माण्ड एक देह है, और जैसे हम लोगोंके देहमें जीव होता है, वैसे ब्रह्माण्डके देहमें जो जीव है—उसको ब्रह्मा बोलते हैं।

अच्छा, अब ऐसे-ऐसे ब्रह्माण्ड होते हैं अनगिनत, जिनमें एक-एक ब्रह्मा, एक- एक रुद्र और एक-एक विष्णु सबमें रहते हैं—माने ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रकी यदि कोई गणना करना चाहे, तो नहीं कर सकता। क्यों? कि कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड रोज पैदा होते हैं, और समा जाते हैं। क्षण-क्षणमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति और कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंका क्षय होता है। इससे अनन्तको समझनेमें, अनन्त वस्तुका अर्थ क्या होता है—इसको समझनेमें आपको मदद मिलेगी।

अब ब्रह्माजीका दिन कितना बड़ा? यदि आप यह शरीर धारण करके देखते हैं, तो बड़ा भारी मालूम पड़ता है, और यदि विराट्का रूप आप धारण करलें? वे नारायण हो जायँ! कौनसे नारायण? आप कल्पनामें अपनेको नारायण बना लें, तो **यत्र समन्ततो रोमकूपेषु अनन्तानि ब्रह्माण्डानि प्रज्वलन्ति।** उपनिषद् वर्णन करते हैं, कि वह जो परमेश्वर है, उसके एक-एक रोएँके गढ़ेमें करोड़-करोड़ ब्रह्माण्ड उठते और गिरते रहते हैं। कितना बड़ा होगा! हमको यह बात एक महात्माने समझायी थी। एक ब्रह्मा विष्णु तो वे, जो ब्रह्माण्डमें रहते हैं, और एक वे, जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमें रहते हैं, और एक वे परमेश्वर, जिसके एक-एक संकल्पमें एक-एक ब्रह्माण्ड ही नहीं, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं, और वह परमेश्वर संकल्परूप मायासे यदि न्यारा करके देखा जाय, तो शुद्ध ब्रह्म तत्पद लक्ष्यार्थ, और हमारी जो आत्मा है त्वंपद लक्ष्यार्थ, वह वही तत्पद लक्ष्यार्थ है। जो मैटर मानते हैं, और बनानेवालेको नहीं मानते हैं, वे नास्तिक हैं। और जो यह जन्म मानते हैं और अगला जन्म नहीं मानते हैं, वे भी नास्तिक हैं। उन्होंने तो ब्रह्मतत्त्वके सम्बन्धमें अभी कोई विचार किया नहीं है।

अब जरा देखो, हम कितने बड़े हैं! ब्रह्माका एक दिन, ब्रह्माका एक महीना, ब्रह्माका एक वर्ष, ब्रह्माका सौ वर्ष, और ऐसे-ऐसे अनेक कोटि ब्रह्माण्ड—और ब्रह्मा होते और मरते रहते हैं।

पलटू हम मरते नहीं, साधो करो विचार।
साधो करो विचार हमही करताके कर्ता।

पलटू बाबा कहते हैं—

निराकार साकार रूप धरि आयो कई इक बारा।
सपने ह्वै ह्वै मिटि गयो रह्यो सार को सारा।

यह आत्मा तो ऐसा अनन्त, ऐसा परिपूर्ण है! बात यह है, कि ब्रह्माके दिन-रातको देखनेवाले भी होते हैं। जिनको सद्योमुक्ति प्राप्त हो गयी, आत्मा और ब्रह्मकी एकताका ज्ञान हो गया, उनको तो ब्रह्माका दिन गिननेकी जरूरत नहीं है, लेकिन जो क्रममुक्तिके ढंगसे ब्रह्मलोकमें जाते हैं, ब्रह्माजीके साथ रहते हैं—उनके बारेमें यह नियम है, कि जब ब्रह्माकी मुक्ति हो, तब उनकी मुक्ति हो। तब वे ब्रह्माका दिन गिनना शुरू करते हैं—कि बाबा, यह बुड्ढा कबतक रहेगा?

एक दिन एक बालक आया हमारे पास। छोटा ही था, पन्द्रह वर्षका होगा। तो उस्तरेसे उसने मूँछ अपनी बना रखी थी, चिकनी—चिकनी। मैंने पूछा कि उस्तरा क्यों फिराता है मूँछपर? तो बोला—कि हमारे बाप तो बुड्ढे हो गये हैं, लेकिन जब मैं कभी कहता हूँ कि यह बात ऐसे करनी चाहिए, तो कहते हैं—अभी तो तेरे मूँछ-दाढ़ी ही नहीं आयी, कलका बच्चा, हमको सिखाने चला है? हमारी मूँछ जल्दी बढ़ जाय, इसके लिए हम उस्तरा फेरते हैं। बच्चे सोचते हैं ऐसा।

स्वर्गमें और ब्रह्मलोकमें क्या फर्क है—वह भी थोड़ा आपको सुनाते हैं। स्वर्गमें वासना होती है, और वासनाके अनुसार वस्तु मिलती है। स्वर्गमें गये हुए जीवके मनमें अप्सराकी वासना हो, तो उसके पास अप्सरा आवेगी। ब्रह्मलोक वह है, जहाँ अप्सराकी वासना ही नहीं होगी—निर्वासन लोक है। वहाँ विषय-भोगकी वासना नहीं होती, सब लोग अपने आपमें मगन रहते हैं, और ख्याल रहता है, कि जब ब्रह्माजीकी अवधि पूरी होगी, तो हम भी मुक्त हो जायेंगे। उन मुमुक्षुओंको—जिज्ञासुओंको वह ब्रह्माका समय बड़ा लम्बा मालूम पड़ता है। वही गिनते रहते हैं—कि रात कितनी बड़ी और ब्रह्माजीका दिन कितना बड़ा—यह निकले।

एक बात तो यह बताई, कि ब्रह्माकी आयु भी छोटी है, कालकी गणनाके अन्दर आती है, वे भी मरते हैं। ब्रह्मलोककी वासना भी अपने मनमें मत रखो, अभी-अभी परमात्माको प्राप्त करो। नहीं तो जाके दिन-रात गिनने पड़ेंगे ब्रह्माके। जब परमात्माकी प्राप्ति अभी हो सकती है, तो उसके लिए ब्रह्माके मरनेका इन्तज़ार करना—यह कोई बुद्धिमानीका काम नहीं है। संसारके विषयोंसे वैराग्य कराकरके, उस अनन्त परमात्मामें लोगोंकी वृत्ति ले जानेके लिए इसका वर्णन है।

दूसरे, अनन्तको आखिर कैसे पहचानोगे? किसी भी गिनतीके जोड़का नाम ईश्वरकी आयु नहीं है। जैसे आप देखो, एक+एक=दो होता है, पाँच+पाँच=दस होता है। दो गिनतियोंका जोड़ होता है न। और परमात्माका जो अविनाशीपना है, वह बरसोंकी गिनतीमें, कल्पोंकी गिनतीमें नहीं आता है। उसको जाननेके लिए—*का पूछो साधोका उमर तुम्हारी हो।* हे साधु-तुम क्या पूछ रहे हो, कि तुम्हारी उम्र क्या है?

कोटि कलप ब्रह्मा भए दस कोटि कन्हाई हो।
छप्पन कोटि जादव भए मेरी एक पलाई हो॥
का पूछो साधो उमर हमारी हो।

हे साधु! तुम हमारी उमर क्या पूछ रहे हो? कोटि-कल्पके तो ब्रह्मा हुए, और दस कोटि कन्हाई हुए—और मेरा एक पल है। मेरी उम्रके विषयमें तुम क्या पूछ रहे हो? काकभुशुण्डिने कहा कि सत्ताईस बार रामावतार मेरे सामने हो चुका है, और उनको बच्चेकी तरह खेलतेमें देख चुका। जैसे ईश्वरकी माया होती है न, वैसे साधुओंकी माया भी बड़ी विलक्षण होती है। प्रपंचसे वैराग्य, और परमात्मामें वृत्तिको ले जाना। छोटी-छोटी चीजोंमें अपने मनको नहीं फँसाना। यह तुम्हारा ज्ञान, यह तुम्हारा जीवन, यह तुम्हारा सुख छोटी-छोटी वस्तुओंसे बनने और बिगड़ने वाला नहीं है।

एक आदमीका किसीसे वैमनस्य था। जिससे उसकी दुश्मनी थी न, वह जब उसके सामनेसे निकलता—तो जरा टेढ़ी आँख करके उसकी ओर देख लेता; बोलता कुछ नहीं। अब वह तो आग-बबूला हो जाता, गाली देने लगता। कोई पूछता—क्यों भाई, इन्होंने क्या किया? क्यों गाली दे रहे हो? तो बोले—हमको देखकर इन्होंने आँख टेढ़ी कर ली। थोड़ी देर बाद जब फिर चुप होता, तो उसके सामनेसे निकलता, और अंगूठा यों कर देता; वह फिर गाली देने लगता—फिर गाली देकर परेशान होता। लोगोंने पूछा—भाई, क्यों गाली देते हो? कि इसने हमको अंगूठा दिखा दिया। उससे पूछा, तो उसने कहा—न हमने आँख दिखाई, न अंगूठा दिखाया। क्या करें, हमारी आँख ही ऐसी है, हमारा हाथ ही ऐसे हो जाता है। अब इनके सामने हम अंगूठा ही न हिलावें? हम लोगोंकी तरफ देखें नहीं? हम क्या करें? हमारा कोई दोष नहीं। ये क्यों हमारी आँखकी ओर देखते हैं? ये क्यों हमारा अंगूठा देखते हैं? हम तो अपने सहज स्वभावसे करते हैं। अब उन्होंने तो अपने चिढ़नेकी वजह बना ली न! सामनेवाला पहचान गया, कि अंगूठा दिखानेसे

चिढ़ते हैं, ये आँख टेढ़ी करनेसे चिढ़ते हैं। अब दिन भर उनको चिढ़ाये! अब इसमें चिढ़ानेवालेका कोई दोष नहीं है। उस चिढ़नेवालेका दोष है, जो बारम्बार उस गाँवकी ओर देखता है, उस अंगूठेकी ओर देखता है।

एक बात आपको अच्छी लगे, न लगे, पर बात सच्ची है। सच्ची बात दुनियामें होती है, उसको कह देनेमें क्या शर्म है? वृन्दावनमें रासलीला होती है उड़िया बाबाजी महाराजके आश्रममें। एक दिन एक स्त्रीने आकर उड़िया बाबाजी महाराजसे शिकायत की, कि जब मैं लीलामें बैठती हूँ, तो अमुक पुरुष बार-बार, बार-बार मेरी ओर देखता है। बाबा हँस दिये। उसने कहा—महाराज, मैं तो शिकायत करती हूँ, और आप हँसते हैं। उन्होंने पूछा—कि तुमको कैसे मालूम पड़ता है, कि वे तुम्हारी ओर देखते रहते हैं? अरे, तू जब उनकी ओर देखती होगी, तभी तो मालूम पड़ता होगा न। तू उनकी ओर मत देख बाबा! अपनी आँख नीची कर। अब तुम्हारी ओर जो देखता है, उसको देखने दे। उसकी आँख तू थोड़े ही फोड़ सकती है!

कहनेका अभिप्राय यह है, कि अपनी आँख दुरुस्त करना, अपना मन दुरुस्त करना, अपना चरित्र ठीक करना, अपनेको ठीक रास्तेमें ले चलना—यह तो साधनाका मार्ग है। और जब बोले—कि दुश्मनको ठीक कर देंगे—तब रास्ता गलत हो गया। यह साधनाका मार्ग नहीं हुआ। आओ, छोटी-छोटी बातें जो दुनियाकी हैं—उधरसे अपने मनको हटावें। कौन क्या कह रहा है—किसीकी जुबान बन्द नहीं कर सकते तुम। अगर तुम चाहो कि कोई हमारे खिलाफ नहीं बोले, तब हम सुखी होंगे—तो इसका मतलब क्या हुआ? कि तुमने अपने सुखको तिलांजलि दे दी; अब वह तुम्हारी जिन्दगीमें कभी नहीं आ सकता।

एकबार की बात है, एक आदमीने उड़िया बाबाजी महाराजसे शिकायत की। भाई, आश्रम चलते हैं, लोग आते हैं, जाते हैं। सब तरहकी बात होती है न। शिकायत की एक ने—कि महाराज, वह जो फलाँ आदमी है, वह हमारी बड़ी निन्दा करता है। बाबाने कहा—बेटा! तुमको मालूम नहीं है; उसकी तो आयु अब समाप्त हो गयी है। थोड़े ही दिनोंमें मर जानेवाला है। अब उसकी बातका क्या ख्याल करते हो? वह आदमी तो खुश हो गया, कि अच्छा, यह हमारी निन्दा करनेवाला तो मर जायेगा। पहले निन्दासे दुःखी था और अब उसके मरनेकी बातसे खुश हो गया। और कहो—कि वह आदमी मर गया होगा—तो नहीं, अभीतक वह जिन्दा है। इस बातको पच्चीस वर्ष हो गये। उड़िया बाबाजीने ऐसा क्यों कह दिया?

कि यह तो मनको बदल देनेकी युक्ति है। जो निन्दासे दुःखी था, वह अपने दुश्मनकी मौतकी कल्पना करके खुश हो गया। और दुश्मन मरा हो—सो बात नहीं! तो दुनियाका जो हल्कापन है, उसे समझना चाहिए।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥ १८॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥ १९॥

आजकल हिन्दीमें व्यक्ति शब्दका प्रयोग खास करके मनुष्यके लिए होता है—अमुक व्यक्ति; और संस्कृत भाषामें चाहे जड़ हो, चाहे चेतन—जो किसीसे भी अलग होकर प्रकाशता है—उसको व्यक्ति बोलते हैं। जैसे गुलाबके दो फूल हैं, तो दोनों दो व्यक्ति हैं। एक फूलसे अलग दूसरा फूल है, दूसरे फूलसे अलग पहला फूल! आपने दो खिलौने बनाये मिट्टीके, तो वे दो खिलौनोंमें दो व्यक्ति हुए। जाहिर होना ही व्यक्ति है। दो का दोपना व्यक्ति है। छोटेका छोटापना व्यक्ति है, बड़ेका बड़ापना व्यक्ति है। व्यक्ति माने व्यंजित होना—'**व्यज्यते इति**'। जो किसी भी इन्द्रियसे, मनसे मालूम पड़ती है—यह जुदा है और यह जुदा है—उसको व्यक्ति कहते हैं। ये जितनी अलग-अलग व्यक्तियाँ हैं—स्त्री व्यक्ति, पुरुष व्यक्ति, मनुष्य व्यक्ति, पशु व्यक्ति, पक्षी व्यक्ति, पुष्प व्यक्ति, घास व्यक्ति—ये सब, जब ब्रह्माका दिन प्रारम्भ होता है—तब अव्यक्तोंसे व्यक्त हो जाती हैं। अव्यक्त माने अनजाहिर। जैसे मिट्टी थी न—तो उसमें घड़ा व्यक्ति कहाँ थी? घड़ा निकल आया। अच्छा, एक आमका बीज था—उसमें आमका वृक्ष कहाँ था? तब निकल आया। किसी भी बीज़में-से अंकुरका जाहिर हो जाना—यह व्यक्ति है, और अलग-अलग बीजोंका होना भी व्यक्ति है। यह अंगूर बीजकी व्यक्ति है। जब ब्रह्माजी सोते हैं, तो सब व्यक्तियाँ अव्यक्तमें लीन, और जब ब्रह्माजी जागते हैं, तब सब व्यक्तियाँ अव्यक्तमें-से जाहिर होती हैं।

बड़ी अद्भुत लीला है। आप सबने सुषुप्तिका वर्णन सुना होगा—**तत्र माता अमाता भवति। पिता अपिता भवति। देवा अदेवा भवन्ति। वेदा अवेदा भवन्ति।**

जितनी मनःकल्पित सृष्टि है, सो जानेपर सब एक अनजानी जगहमें समा जाती है। सो जानेपर माँ माँ नहीं, बाप बाप नहीं है। बोले—है तो सब; सब अपने-अपने पलंगपर सो रहे हैं। अरे, सोते होंगे सब। तुम्हारे मनमें उनसे रिश्तेका, सम्बन्धका जो भाव था, वह कहाँ गया? ब्रह्माजी जब सोते हैं, तब उनके सब

बेटोंका भाव उनके साथ सो जाता है। वह ब्रह्माण्ड शरीर है; उनकी आँख, उनके कान, उनकी नाक, उनकी जीभ, उनका मुँह, उनका हाथ, उनका पाँव और उनके शरीरमें कल्पित जो लोक हैं—वे सब-के-सब सो जाते हैं। और जब दिन आता है, तो उनके संकल्पके साथ सब निकल आते हैं। यह अव्यक्त—माने प्रकृति नहीं है, यह ब्रह्माकी सुषुप्ति-अवस्था है। अब यह क्या है? यह **अव्यक्तसंज्ञके** कहनेका भी अभिप्राय है। बोले—उस अव्यक्तको किसीने देखा होगा? कि नहीं-नहीं; उस अवस्थाका नाम हम अव्यक्त रखते हैं—**अव्यक्तसंज्ञके**। जैसे कोई किसी अवस्थाकी कल्पना करके नाम कर दे—यह 'अ' है, यह 'ब' है, 'स' है। वैसे।

हम एकबार अयोध्याजीमें गये। बड़ा भारी मेला वहाँ लगा था। पंडित रामवल्लभाशरणजी महाराज वहाँके बहुत बड़े विद्वान् महात्मा थे। हम पहलेसे उनके पास जाते थे। उनका चमत्कार बड़ा प्रसिद्ध था। वे जन्मसे ब्राह्मण नहीं थे, पर संस्कृतके बहुत बड़े विद्वान् थे। आश्चर्य होता था, कि ऐसा कैसे हो गया। आजकल ब्राह्मणेतर लोग संस्कृत विद्यामें अपनी रुचि नहीं रखते। वे तो एम.ए., बी.ए.में जितनी अंग्रेजीके साथ संस्कृत पढ़ाई जाती है—उतना पढ़ते हैं, और उस तरह पढ़नेमें संस्कृतकी गहराईमें उनका प्रवेश नहीं होता है। वे तो ब्रह्मणेतर होकर संस्कृतके इतने अगाध विद्वान् थे। हमलोग उनका सत्संग करनेके लिए जाते थे। उनके बारेमें यह प्रसिद्ध था कि उन्होंने हनुमान्जीकी आराधना की, तो हनुमान्जी उनके सामने प्रकट हुए, और उन्होंने कहा—कि आज दिनभरमें चौबीस घंटे तुम जितने ग्रन्थ अपनी आँखसे देख लोगे, उनमें लिखी हुई सारी विद्या तुम्हारी समझमें आ जायेगी। वे किसी बहुत बड़े ग्रन्थागारमें-पुस्तकालयमें चले गये और वहाँ जाकर पुस्तकें देख लीं। हम भी कभी-कभी उनके पास जाकर शास्त्रकी कोई बात पूछते थे। मैंने उनसे पूछा—मेलेमें कोई बहुत बड़ा सन्त आया हो, तो आप बताओ। उन्होंने एक नाम बताया—कि अमुक संत हैं और वे छप्पर डालकर वहाँ पड़े हैं। तुम उनके पास चले जाओ। उनके पास गये तो सृष्टिका प्रसंग चला, कि सृष्टि कैसे होती है। यह जो भगौना होता है न, अपने घरोंमें पतीला जिसको बोलते हैं—गुजरातमें तपेला बोलते हैं—उन्होंने बताया, कि जैसे सबसे बड़ा पतीला होय, तो उसमें उससे छोटा और फिर उसमें उससे छोटा, और फिर उसमें उससे छोटा; एक बड़े पतीलेमें पच्चीस छोटे पतीले रख दिये। एक पतीला रखनेकी जगह पच्चीस पतीले रखे जा सकते हैं। जब प्रलय होता है न, तब ये जितनी व्यक्तियाँ हैं—समझो सबका शरीर मर गया, तो मिट्टीमें रह गया और समूचा मिट्टी पानीमें रखा गया। समूचा पानी आगमें रखा गया; समूची

आग वायुमें रखी गयी। समूचा वायु आकाशमें रखा गया, समूचा आकाश तामस अहंकारमें रखा गया। तामस अहंकार राजस अहंकारमें सम्पूर्ण प्राणों और क्रियाके साथ, और वह सात्त्विक अहंकारमें, और सात्त्विक अहंकार अव्यक्तमें चला गया। ये सब जितनी छोटी-छोटी पतीली थीं, सब छोटे को बड़ेमें, छोटेको बड़ेमें रखते चले गए। एक ईश्वरके आभाससे युक्त जो प्रकृति है, उसमें सब-के-सब रख दिये गए। अब क्या हुआ? कि व्यक्तियाँ अव्यक्त में रख दी गईं। और फिर जब रसोई बनाना हुआ तब? कि सबको फैला दिया निकालकर, और उन्होंने पच्चीस जगह घेर ली। अव्यक्तमें-से अहंकार, अहंकारमें-से मन और पंच-तन्मात्र और पंचभूत और पंचभूतोंमें-से ये नाना प्रकारके पुरुष; ये सब एकमें-से ही निकले हैं। बोले—ये है क्या? तो यह इसलिए भी आपको सुनाता हूँ, कि आप बहुत पढ़े-लिख लोग हैं न! पढ़ते शायद ज्यादा हों। अबसे तीस-पैंतीस वर्ष पहले संस्कृत भाषामें गीताके डेढ़ सौ भाष्य गीताप्रेसमें थे। उन्होंने इसका पुस्तकालय बनाकर रखा था, और कोई दो हजार प्रकारकी भाषाओंमें—जैसे मराठी, तमिल, तेलगू, नेपाली, चीनी, जापानी आदिमें उसकी टीका थी। इतना साहित्य गीतापर किसी एक व्यक्तिके पास होना तो सम्भव नहीं है। कोई पढ़ते होंगे; हम मान लेते हैं इस बातको; परन्तु साधुओंसे जो बात मैंने सुनी है न, वह आपको उन डेढ़ सौ संस्कृत टीकाओंमें और दो हजार भिन्न-भिन्न भाषाकी टीकामें लिखी मिलना मुश्किल है।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।

देखो, 'भूतग्राम' शब्दका अर्थ महात्माने बताया, कि वह भूतोंका गाँव है। भूतोंका गाँव कैसा होता है? जैसे श्मशान होता है। उसमें मान्त्रिक-यान्त्रिक लोग पहले जाकर मुर्देके ऊपर बैठकर भूत सिद्ध कर लेते हैं। उनको श्मशानमें क्या मालूम पड़े? उनके दिमागसे ही समझो, मालूम पड़े—मानसिक कल्पना। यह देखो! भूत है, भूतनी है, यह उनका बेटा है, ये बाजे बज रहे हैं और यह ब्याह हो रहा है। यह रोशनी हो रही है। आप देखना, जो भूतका अनुभव करनेवाले, भूतके अनुभवी लोग हैं न, वे लोग यह सब बतावेंगे। उनको क्या-क्या तमाशा दिखता है। लेकिन जब देवता जगता है न, तब सबका दीखना बन्द हो जाता है। जब डराना होता है, तो वे सब दिमागसे बाहर निकलकर नाचते हैं। उनका ब्याह होता है, भूतोंकी भूतनी होती है, भूतका बेटा होता है; सारा भूतोंका गाँव दिखाई पड़ता है। और जहाँ मन्त्र सिद्ध हुआ, कि सब गायब। यह जो शंकर भगवान्‌का महाश्मशान चेत रहा है; और उस महाश्मशानमें यह जो मनुष्योंका, पशुओंका, पक्षियोंका,

चीटोंका, माटोंका, देवताओंका, दैत्योंका; यह जो स्वर्गलोक, पाताललोकका तमाशा चल रहा है—देखो, एक भूत पानीमें-से निकल आया, देखो एक बीजमें-से शेर निकल आया—यह जो खेल है न, यह जो जादूका खेल दिख रहा है—भूतग्राम बोलते हैं इसको। शंकर भगवान्‌का यह महाश्मशान चेत रहा है।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।

भूतग्राम—माने प्राणियोंका समूह। यह बड़ा भारी बगीचा दीख रहा है कि कहाँसे बना? यहाँ तो बगीचा ही नहीं था। जो देख-देखकर आते हैं, वे लोग हमको बताते हैं, कि यहाँ तो बगीचा नहीं था, बगीचा कैसे हो गया? जादूका खेल! यहाँ कोई प्राणी—कोई उद्भिज नहीं थे, कहाँसे हुए? तालाबमें पैदा होनेवाले कमल नहीं थे, कहाँसे आये? इसका नाम भूतग्राम है। पहले नहीं थे—पैदा हो गये; और फिर मिट जाते हैं। जैसे आपके सिरमें जूएँ पैदा हो जाती हैं—अव्यक्तमें-से व्यक्त हो जाती हैं, जैसे—आपकी खाटमें खटमल पैदा हो जाते हैं—अव्यक्तसे व्यक्त हो जाते हैं; जैसे बीजसे वृक्ष पैदा हो जाते हैं, वैसे ही सब सृष्टि हुई। वह तुम्हारे प्रत्यक्षमें हँस रहा है, बोल रहा है; महात्मा बन रहा है, दुरात्मा बन रहा है। यह तुमको चमत्कार नहीं मालूम पड़ता कि एक बूँद पानीमें-से यह हाथ, पाँव, सिर और शरीर कैसे निकल आया? क्या चमत्कार कोई दिखावेगा? सबसे बड़ा चमत्कार तो तुम्हारी आँखोंके सामने यह तैर रहा है। यह देखो न! यह मैं चमत्कार हूँ, तुम चमत्कार हो। यह ईश्वरका चमत्कार देखो, माटीमें-से जीव निकलते हैं। यह देखो न। सूर्यमें-से पानी बरसता है। यह ईश्वरका चमत्कार देखो, यह क्या है? इसीका नाम भूतग्राम है। जला देनेपर जो चीज राख हो जाती है, अगर वह राखसे न्यारी दिख रही है, तो इसका नाम चमत्कार हुआ कि नहीं? यह मनुष्यका शरीर, यह पेड़, यह पौधा, यह स्त्री, यह पुरुष-जला देनेके बाद ये क्या होते हैं? राखकी ढेरी। इसका मतलब हुआ, कि इनका जो मसाला है, वह राखके सिवाय और कुछ नहीं है। यह साधुओंके भभूतमें-से दुनिया निकली है, यह शंकरजी के भभूतमें-से यह दुनिया निकली है, इसलिए जब इसका आखिरी समय आता है, तो भभूत बन जाती है। राखके ढेरमें-से यह दुनिया निकलती है, और राखके ढेरमें समा जाती है।

पुरानी बातें याद आ जाती हैं हमें, तो सुना देते हैं; हमारे मोकलपुरके बाबा थे। वैसे तो वे विन्ध्याचलके पास रहते थे—बताया नहीं कभी उन्होंने, पर जन्मभूमि उनकी वहीं थी। बारह वर्षकी उम्रमें निकले थे, और सोलह वर्षतक नर्मदाके किनारे उन्होंने समाधि लगायी थी। चालीस वर्ष पहले जब हम लोग

उनका सत्संग करनेके लिए जाते थे, तो जब हम जाते थे, उससे चालीस वर्ष पहले वे गंगा-किनारे आये थे। वे नंगे ही रहते थे। कहते थे—कि जब मैं यहाँ आया और कुछ करनेकी जरूरत नहीं थी—वे तो अवधूत थे, मस्त थे—एक खेल सूझा। एक खुरपा रखते थे वे हाथमें। बस, यही एक खुरपा ही उनका संगह था, वह मिट्टी खोदनेका खुरपा। जब कहीं शौच जाते, तो पहले गड्ढा खोदकर शौच जाते थे, और उसमें ढँक देते थे। इसके सिवाय और कोई चीज उनके पास थी नहीं। न कुटिया, न चेला, न मददगार; कुछ नहीं। वे बोले—कि मेरे मनमें सूझा कौतुक, और मैंने 'गंगा'-'गंगा'-'गंगा' बोलना शुरू कर दिया। कोई छह महीनेके बाद एक दिन क्या देखता हूँ, कि गंगाजीकी धारामें-से लाल साड़ी पहने वह दिव्य मूर्ति गंगाजी हमारे सामने आ गयीं। ऐसा उन्होंने खुद बताया था; उनका बताया हुआ बताता हूँ। और गंगाजीने कहा—क्या चाहिए तुमको? मुझे तो कुछ नहीं चाहिए। 'तो तुम काहे को गंगा-गंगा चिल्लाते थे?' 'हमारी मौज आ गयी, हम गंगा-गंगा चिल्लाने लग गए। हमको चाहिए तो कुछ नहीं तुमसे।' बोलीं—कि देखो, एक बात मैं बताती हूँ तुमको; ये जितनी पुतलियाँ धरतीमें चलती-फिरती दिखाई देती हैं न तुमको, ये मांसके के पुतले—ये सब घासमें-से बने हैं। ये जौ, गेहूँ, मटर—ये सब घास हैं। माने, पशु दूसरे ढंगकी घास चरते हैं, और मनुष्य दूसरे ढंगकी घास चरते हैं। ये जितने मांसके पुतले हैं, ये सब मरनेपर घास बनते हैं; मांस और घास—दोनोंकी दुनिया। मांस घास हो जाती है, और घास मांस हो जाती है। और, गंगाजीने कहा—ये दोनों मेरी गोदमें हैं। अगर मैं न होऊँ जलरूपसे, तो मांसका घास भी न बने और घासका मांस भी न बने। तो मैं हूँ गंगा, जलरूपसे सम्पूर्ण मांस और घासको पैदा करती हूँ, धारण करती हूँ, और अपनेमें लीन कर लेती हूँ। और वह परमात्मा जो है न, वह बाँगड़, टुकुर-टुकुर देखता ही रहता है। न घास बनावे, न मांस बनावे; न दोनोंको काटे, न मारे; न हमसे कुछ कहे; बस, दूर खड़ा देखता रहता है निर्निमेष—माने बिना पलक गिराये, अपलक नेत्रोंसे। उसकी दृष्टिका कभी लोप नहीं होता, और हमेशा देखता रहता है।

भाई, वेदान्त सत्संग मंडलकी ओरसे जब सत्संगका आयोजन होता है, तो आपलोग बड़ी गहरी-गहरी सत्संगकी बात सुनते हैं। हम कहते हैं, भाई! शास्त्रकी बात बहुत सुनी; जरा फक्कड़ोंकी भी दो-एक सुन लो। ये फक्कड़ लोग, जहाँ शास्त्रकी पहुँच नहीं होती, वहाँ बैठकर बोलते हैं।

✯

१४

जो जीव होते हैं, उनके देहाभिमानके कारण वस्तु और भाव अलग-अलग हो जाते हैं। जब इनके भावका लोप हो जाता है सुषुप्ति अवस्थामें, तब भी बाहरके जो द्रव्य हैं—वस्तु हैं, वे सब-के-सब बने रहते हैं। लेकिन ब्रह्माजीका जो शरीर है, वह स्थूल पदार्थका बना हुआ नहीं है, वह तो सूक्ष्म है। उनको एक देहका अभिमान नहीं है। वे एक देहमें बैठकर किसीको नहीं देखते, वे तो सूक्ष्म शरीरमें बैठे हुए हैं न। जैसे स्थूल शरीरमें बैठनेवालेके लिए सृष्टि स्थूल है, वैसे ही सूक्ष्म शरीरमें बैठनेके लिए सृष्टि सूक्ष्म है। स्थूल शरीरधारी मनुष्यके लिए भावका लोप हो जानेपर भी सृष्टिके पदार्थ बने रहते हैं। सो गए, तब भी पदार्थ बने हुए हैं। और भावका लोप हो जाता है—कि यह मेरी पत्नी है और पत्नी छोड़कर चली गयी तो भावका लोप हो गया, कि अब यह मेरी कोई नहीं; और फिर भी वस्तु बनी रहती है। लेकिन ब्रह्माजीकी सृष्टिमें वस्तु और भाव—ये दोनों जुदा-जुदा नहीं होते। जो वस्तु, सो ही भाव है। इसलिए जब वे सोते हैं, तब उनका भाव सोता है, और भाव सोता है तो उनकी बनाई हुई जितनी चीजें हैं—वे भी उनके भावके साथ ही सो जाती हैं। जब वे जागते हैं, तब उनके भावके साथ सारी वस्तुएँ निकल आती हैं। **अव्यक्त** माने ब्रह्माकी सुषुप्ति अवस्थामें-से जब दिन आता है, तब सारी प्रजा प्रकट हो जाती है और जब रात आती है, तो सारी प्रजा ब्रह्माकी सुषुप्ति अवस्थामें लीन हो जाती है।

हमको याद है, एक बार हम कर्णवासमें ठहरे हुए थे। यह कर्णवास गंगाके किनारे एक स्थान है, जहाँ कर्ण बैठकर दान किया करते थे। पहले तो बड़ा जंगल था वहाँ, साधुओंके लिए कुटिया बनी हुई थीं, अब तो जंगल सब कट गये। मैं एकबार एक महीना वहाँ रहा। यह बात सन् तीसके आस-पासकी है। वहाँ एक महात्मा थे, उन्होंने समझाया—यह रुद्र जो है, यह स्थूल सृष्टिका अभिमानी है। स्थूल सृष्टिसे अवतीर्ण जो चैतन्य है—उसका नाम रुद्र है। तो जैसे भारतवर्ष रुद्रका

शरीर है, तो कन्याकुमारी उसके पाँव हैं, ब्रह्मा जो है, वह सूक्ष्म शरीर है। सम्पूर्ण स्थूल समष्टिमें विद्यमान चैतन्यको रुद्र कहते हैं, और सूक्ष्म समष्टिमें विद्यमान चैतन्यको ब्रह्मा कहते हैं। कारण समष्टिमें विद्यमान चैतन्यको नारायण कहते हैं, और कार्य—कारणातीत जो है—वह परब्रह्म परमात्मा होता है। शरीरमें, ब्रह्माण्डमें, फिर मायामें, और फिर सबसे परे। उसी समय हमारी समझमें आगया कि देखो, विष्णुका शरीर कितना बड़ा होगा। आप कल्पना करो, कि चतुर्भुज श्याम वर्ण एक तस्वीर है हमारे सामने कार्ड साइजकी, और उसपर विष्णु बने हुए हैं। ये विष्णु कार्ड साइजके नहीं हैं। ब्रह्माण्डकी जो कारण-वारि, उसमें विद्यमान चेतन कितना बड़ा होगा? और उसमें जो सूक्ष्म शरीर, उसमें विद्यमान चेतन ब्रह्मा, और स्थूल समष्टि, और उस समष्टिमें विद्यमान चेतन रुद्र कैसा होगा? जो स्थूलमें विद्यमान है—वह प्रलयका हेतु है; जो सूक्ष्ममें विद्यमान है—वह सृष्टिका हेतु है; और जो कारणमें विद्यमान है—वह पालनका हेतु है। परमात्माका जो सर्वोत्तम स्वरूप है—वह सृष्टि, स्थिति, प्रलय—तीनोंसे विलक्षण है। उसीको कहीं शिव कहते हैं तो कहीं राम कहते हैं। तब मैंने सोचा कि यह रुद्र कितना बड़ा होगा, और यह चतुर्मुख ब्रह्मा कितना बड़ा होगा।

आप सोचो—यह चौदह भुवन बनानेवाला जो ब्रह्मा है न, वह अपनी कमलकी पंखुड़ियोंपर ही सृष्टि बना लेता है, और वह कमल जिस नाभिमें अटता है, उस नाभिमें आकाश है। तो वह पेट कितना बड़ा होगा नारायणका, जिसमें वह नाभि होगी! और उस पेटवाला वह नारायण कितना बड़ा होगा!

जब हम सो जाते हैं, तो हमारे सम्बन्ध सो जाते हैं, वस्तुएँ नहीं सोतीं। परन्तु जब ब्रह्मा सोता है—सूक्ष्म शरीरधारी जो ब्रह्माण्ड-शरीर ब्रह्मा है, उनकी सुषुप्तिमें वस्तु और सम्बन्धका भेद न होनेसे वस्तु और सम्बन्ध—दोनों सो जाते हैं, और जब विष्णु योगमायामें शयन करते हैं, तब ब्रह्मा भी गायब हो जाते हैं। अब देखो, प्रलय क्या हुआ? एक तो नित्य प्रलय हमारे जीवनमें है, और एक नित्य प्रलय ब्रह्माके जीवनमें है। ब्रह्मा सोते हैं, जागते हैं, रोज प्रलय होता है, रोज सृष्टि होती है। ये दो प्रलय हुए, एक नित्य-मनुष्यके जीवनमें भी और ब्रह्माके जीवनमें भी; और एक नैमित्तिक प्रलय होता है। नैमित्तिक प्रलय क्या होता है? कि जब ब्रह्माण्डका प्रलय होता है, तब ब्रह्मा नारायणकी नाभिमें—कमलमें घुस जाते हैं। और उसको नैमित्तिक प्रलय बोलते हैं। और जब कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड एक साथ नष्ट हो जाते हैं—प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं, तब उसको प्राकृत प्रलय बोलते हैं। नित्य प्रलय,

नैमित्तिक प्रलय, और प्राकृत प्रलय; ये परमात्माकी अनन्यताको समझनेके लिए कल्पित हैं। यदि कोई प्रलयका ध्यान करने लगेगा, तो दिमाग उसका खराब हो जायेगा। प्रलयका ध्यान नहीं करना है। यह प्रलय तो अ, ब, स की तरह है। मनुष्य और ब्रह्माका नित्य प्रलय एक, नैमित्तिक प्रलय दूसरा, और प्राकृत प्रलय तीसरा—ये तीन प्रकारके प्रलय सृष्टिमें हमेशा होते रहते हैं।

अब जैसे देखो, आपके शरीरमें बाल उगते हैं, और बड़े होनेपर खुद टूटकर गिर जाते हैं, सड़कर मिट्टीमें मिले जाते हैं। आपके शरीरमें दाँत उगते हैं, और टूटकर, सूखकर धरतीमें मिल जाते हैं। अब यह शरीर बनता है और बिगड़ता है, जैसे फलता और फिर धरतीमें मिल जाता है। जैसे फूल खिलता है और फिर धरतीमें मिल जाता है। वैसे ही सारी सृष्टि खिलती है, और अपने मूल कारणमें मिलती है। जब यह सृष्टि पंचभूतोंमें मिलती है, ब्रह्माकी सुषुप्तिमें मिल जाती है, तो इसको नित्य प्रलय बोलते हैं। जब ब्रह्माण्ड न रहनेसे ब्रह्मा बेचारेको अपना सब कुछ छोड़कर विष्णुमें लीन होना पड़ता है, तब उसको नैमित्तिक प्रलय बोलते हैं। निमित्त ही नहीं रहा, ब्रह्माण्ड ही नहीं रहा तो ब्रह्मा कहाँसे होंगे? और कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड युगपत् एक साथ प्रकृतिमें लीन हो गये—मायामें लीन हो गये, प्रकृति-उपाधि परमेश्वरमें लीन हो गये, तो उसको प्राकृत प्रलय बोलते हैं। और जब आत्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान होनेसे माया और मायाका कार्य—ये सब बाधित हो जाते हैं, तब आत्यन्तिक प्रलय होता है, माने अब फिर जन्म मृत्यु नहीं ग्रहण करना पड़ेगा—मुक्ति हो गयी। मुक्ति होती है केवल ज्ञानसे, और नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय और प्राकृत प्रलय—ये सृष्टिके क्रममें स्वयं होते रहते हैं। इसकी कल्पना इसलिए की गयी है, कि मनुष्य अनन्त ब्रह्मको समझ सके, मायाके खेलको समझ सके, इनके बड़प्पन—छुटपनको समझ सके।

ये ब्रह्माकी सुषुप्तावस्थासे सारी व्यक्तियाँ निकलती हैं दिन आनेपर और रात्रि आनेपर सब उसमें लीन हो जाती हैं।

अब एक दूसरी बात बताते हैं—

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥ १९॥

भूतगामः—यह भूतोंका गाँव है। भूत माने पंचभूत—मिट्टी, पानी, आग, हवा, आकाश—इनमें जो ग्राम क्लृप्त हैं, ये मनुष्योंके शरीर हैं। आपको दर्शन शास्त्रकी बात सुनावें तो किसीको रुचे, किसीको नहीं रुचे; जहाँ पंचभूतोंका वर्णन

है, वहाँ ऐसा कहा है कि ये पंचभूत जो हैं, ये आखिरी सिद्धि हैं, सृष्टिमें आखिरी चीज हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथवी—ये आखिरी चीज हैं। बोले—कि हम लोग नहीं हैं? बोले—नहीं। तुम लोगोंका शरीर तो पंचभूतोंमें ही फूलकी तरह खिलता है, पंचभूतोंमें ही रहता है, और पंचभूतोंमें ही समा जाता है। मनुष्यका, पशु-पक्षीका, पेड़-पौधेका जो शरीर है न, यह तो पंचभूतके सिवाय कुछ है ही नहीं। बोले—नहींजी, यह है। यह मनुष्य है। अच्छा, इसमेंसे पंचभूत निकालकर दिखाओ—मनुष्य क्या है? पंचभूतका वजन करके वापसकर दो, और बताओ मनुष्य क्या है? पशु क्या है? पक्षी क्या है? अरे, माटी है। मांस है, हड्डी है—सो मिट्टीमें-से निकली है। खून जलमें-से निकलता है, इसमें जो गर्मी है, सो आगमें-से आयी है, और उसमें जो हिलना है, सो हवामेंसे आया है, और इसमें जो अवकाश है एक दूसरेसे अलग बैठनेके लिए, सो आकाशका है। इतनी चीजें हमारी लौटा दो। अब बोलो—मनुष्य क्या है? तो असलमें पंचभूतमें प्राणियोंके शरीर जो होते हैं, वे क्लृप्त होते हैं, माने घटित होते हैं। जैसे भीतपर तस्वीर गढ़ते हैं, तब वह तस्वीर भीतसे जुदा नहीं होती है, इसी प्रकार पंचभूतके भीतर (बाहर नहीं) दीखनेवाला यह जो प्राणी समुदाय है, यह पंचभूतसे बिलकुल जुदा नहीं है। इसीमें अभिमान करके बैठे हैं—कि मैं मोहन, मैं सोहन, मैं मनुष्य, मैं पशु, मैं पक्षी! बोले—**स एवायं भूत्वा**—अब **एवायं** का अभिप्राय क्या है? भूतग्राम शब्द जो है, इसका एक अर्थ यह होता है, कि जो भूतोंको निगल जाय, उसका नाम है भूत ग्राम। ग्रास शब्दके अर्थमें भी 'ग्राम' शब्द संस्कृतमें बनता है, **ग्रसु अदने, ग्रस** धातु खा जानेके अर्थमें है, और **ग्रसे आच**—इस **औणादि** सूत्रसे **आ** और **मन्** दोनों प्रत्यय हो जाते हैं, तब **ग्राम** बन जाता है, और दूसरे **ग्राम आमन्त्रणे** धातुसे ग्राम शब्द बनता है।

अब इसमें विचित्र बात क्या बता रहे हैं, यह देखो। यह हिन्दू धर्मकी विशेषता है, यह वैदिक धर्मका शोध है। इन्होंने सारी दुनियाके लिए यह संदेश-नवीन संदेश दिया है। **स एवायं**—इतनेमें जो बात कही गयी है, यह न ईसाई धर्ममें है, न मुसलमान धर्ममें है, न पारसी धर्ममें है। **भूतग्रामः स एवायं**—जैसे हम लोग शामको जब सोने लगते हैं, तो नींदके पहले हमारे माँ, हमारे बाप, हमारे बेटे; सो जानेपर उनका मालूम पड़ना बन्द हो जाता है, और जब जगे, तब वही माँ, वही बाप, वही बेटे, वही धन, वही मकान। सब वही-का-वही। ब्रह्माजी जब सोने लगते हैं न, तो उनके दिनमें जो सृष्टि रहती है, रातको लीन हो जाती है, और फिर जब जागते हैं, तब फिर वही सृष्टि आजाती है। फिर जब जागते हैं, तब फिर वही

सृष्टि आजाती है। **स एवायं** माने वही है। स माने वह, एव माने ही, अयं माने यह—वही यह।

अब ब्रह्माजीके पहले दिन जो भूतग्राम था, ब्रह्माजीके दूसरे दिन भी वही भूतग्राम रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि कोई कहे कि जब ब्रह्मजी सो गये, तो जितने भाव थे, जितनी वस्तुएँ थीं—वे ब्रह्माजीकी नींदमें लीन हो गयीं। अब न भाव रहे, न पदार्थ रहे। ब्रह्माजी फिर जगे, तो दूसरी सृष्टि हुई दूसरे भाव और दूसरे पदार्थ पैदा हुए। तो बोले—ऐसे जब नई-नई सृष्टि होती जायेगी, तो दो बात नई बनेंगी, यह ध्यानमें रखलो। एक तो अकृताभ्यागम और कृतविप्रणाश दोषकी प्राप्ति होगी। यह अकृताभ्यागम और कृतविप्रणाश दोष क्या है? शंकराचार्य भगवान् कहते हैं, कि जैसी सृष्टि ब्रह्माजीके प्रात:काल पैदा होगी, वह बिना पूर्वकर्मके बनेगी, क्योंकि नई सृष्टि पैदा हो रही है। बिना पूर्व कर्मके पैदा होगी, तब क्या होगा? बोले—कोई सुखी, कोई दु:खी, कोई काला, कोई गोरा, यह बात नास्तिकोंकी समझमें जल्दी आती नहीं है। एक सज्जन बहुत जिज्ञासु थे। उनको हमने समझानेकी बहुत कोशिश की, कि देखो, समुद्रमें जो जल है, उसमें हजार तरंगें उठती हैं। यदि हवाका दबाव न पड़ता हो, तो समुद्रमें तरंग कैसे उठ सकती है? जैसे बालू है उसमें तरह-तरहकी आड़ी, टेढ़ी लकीरें पड़ती हैं। यदि हवा न चले, तो वे लकीरें कैसे पड़ें? एक सोनेकी डली है, उसपर सुनार टाँकी मारता है। वह टाँकी न मारे, तो सोनेमें मूर्ति कैसे बनेगी? कंगन कैसे बनेगा? कुण्डल कैसे बनेगा? उनकी आकृतिमें फर्क कैसे पड़ेगा? माने, कर्म करना पड़ता है न! सोनेमें शक्ल बनानेके लिए, कुण्डल बनानेके लिए, हार बनानेके लिए टाँकी मारनी पड़ती है हथौड़ेसे। साँचेमें ढालना पड़ता है। अगर साँचा न हो, तो सोनेमें मूर्ति कैसे बनेगी? साँचा होगा न उसके लिए। मसाले तो पाँच हैं, और चीजें बनती हैं हजारों—लाखों यदि कर्मका भेद न हो, तो हजारों-लाखों चीजें पाँच चीजमें-से कैसे बन जायेंगी?

एक हमारे मित्र थे। उन्होंने नियम लिया, कि हम सिर्फ पाँच ही चीज खायेंगे। सच्ची बात आपको बताता हूँ। बनारस आये, गौरीशंकर गोयनकाके घरमें अतिथि हुए। गोयनकाजीने पूछा—कि खानेके समय पाँच चीज चाहिए तुमको बनी-बनायी, कि पाँच प्रकारके उपादान होवें—उनसे बनाना। बोले—पाँच प्रकारके उपादानसे ज्यादाकी चीज नहीं होनी चाहिए, चाहे वह कैसी भी बने। अब महाराज, उन्होंने पाँचमें-से एक चुना चना, गौरीशंकर गोयनकाजीने, और चनेकी

पकौड़ी, चनेका पेय, चनेकी सब्जी, चनेका मीठा, चनेका नमकीन, चनेका खट्टा; पचास तरहकी चीजें अकेले चनेमें-से बन गयीं। कैसे बनीं? काम करना पड़ा न! काम किया तो एक चना पचास तरहका बन गया। अब इसके बाद चावलका नम्बर ले लो। इसके बाद गेहूँका नम्बर ले हो। चौथा ले लिया आलू। अब देखो, आलूकी कितनी चीजें बनती हैं। तब कर्म करना पड़ता है। ऐसे मिट्टी, पानी, आग, हवा, आकाश—ये पाँच तत्त्व दुनियामें होते हैं, और जीवोंके जो कर्म होते हैं न, उनके अनुसार स्त्रीकी आकृति अलग, पुरुषकी अलग, पशुकी अलग, पक्षीकी अलग होती है। यह प्रज्ञा और कर्म है—**तं विद्या कर्मणि समन्वात्भ्येते पूर्व प्रज्ञा च**—जैसी जिसकी जानकारी, जैसा जिसका कर्म, जैसी जिसकी वासना—उसके अनुसार शरीरके भेदकी प्राप्ति होती है। इसलिए ब्रह्माजी जब जागते हैं, तब नये जीव पैदा नहीं होते, पूर्व-पूर्व वासना और संस्कारसे संस्कृत अंत:करणवाले जो जीव होते हैं, उन्हींका जन्म होता है। यह है एक बात।

दूसरी बात यह है कि यदि इस जन्ममें हम लोग जो कर्म करते हैं, उनका फल दिये बिना नाश हो जाय, तो कर्मका नाश हो गया न! कृतविप्रणाश दोषकी प्राप्ति हुई। तब लोग कहेंगे—बाबा, कर्म करनेसे क्या होगा, जब यह फल दिये बिना ही नष्ट हो जाय! ब्रह्माजी सोये, तो जीव ही नहीं रहता है; हम मुक्त हो जायेंगे। अब इसमें कर्मका सम्बन्ध क्या रहा? एक तो बिना कुछ भूल हुए, जन्म होता है—यह बात माननी पड़ेगी और एक किये हुएका नाश हो जाता है—यह मानना पड़ेगा। और फिर यह बन्ध-मोक्षका जो शास्त्र है न, वह भी व्यर्थ चला जायेगा। क्यों? बोले—देखो, जीव अनादिकालसे संसारमें बद्ध है। जब साधन-चतुष्टय-सम्पन्न होवे—माने उसमें सामर्थ्य आवे, और अर्थित्व-माने जिज्ञासा होवे, और गुरुकी शरण ग्रहण करे, तब तो मुक्त होगा। और न साधन चतुष्टय होवे, न श्रवण-मनन होवे, न गुरुकी शरणागति होवे, और ब्रह्माजी सोवें और मुक्त हो जायें! तब फिर बंधन-शास्त्र और मोक्ष-शास्त्रकी सफलता कहाँ रहीं?

तीसरी बात एक और देखनेमें आती है, और बिलकुल साफ देखनेमें आती है—कर्माशय उसको बोलते हैं। हम एक दिन बैठे हुए थे, तो एकाएक हमको स्मरण हो गया, कि हमारे पेटमें एक फोड़ा था, जब मैं तीन वर्षका था। कैसे हमारे मामाने हमको गोदमें लिया और हमको भुलावा दिया, कैसे नाईने उस फोड़ेको चीर दिया! वह आमका पेड़ याद आगया, वह चीरनेवाला नाई याद आगया, वह मामा याद आगया। बीसों-तीसों वर्षके बाद यह सब याद आया। अब सोचो, यह क्या

याद आया! लोग कहते हैं—ज्ञानी वह होता है, जिसको कुछ याद ही न आवे। उसको तो विस्मरणका रोग हो गया न! याद न आना तो रोगीका लक्षण है, योगीका लक्षण नहीं है। योगी तो उसको कहते हैं, कि वह चाहे, तो हजारों जन्मकी याद कर सके, यदि उसका ध्यान होवे। अब याद आयी महाराज! अब मैं यह सोचने लगा कि चालीस वर्ष बाद यह बात हमको याद आयी, तो इतने वर्ष यह कहाँ छिपी हुई थी? कहीं थी न! न वह नाई था, न वह मामा था, न वह पेड़ था, न वह गाँव था! एकान्तमें बैठे चालीस वर्ष बाद एकाएक वह आपरेशन याद आया! बोले—भाई, यह कहाँ बैठा हुआ था? यह स्मृति कहाँ रहती है? जो भी क्रिया संसारमें घटित होती है, उसका संस्कार पड़ता है और वह संसार हृदयमें एकत्र रहता है, और उस संस्कारमें-से स्मृतियाँ निकलती हैं। उसको बोलते हैं कर्माशय। जो कुछ हम करते हैं, और जो कुछ भोगते हैं, उसका प्रभाव पड़ता है।

एक बार क्या गलती हुई! कहीं आ रहे थे पहाड़में-से, तो एक बिच्छू सामने आया। उस बेचारेका कोई दोष नहीं था, वह तो बेचारा रास्तेमें सामनेसे निकला। और मेरे हाथमें जो डंडा था न, उस डंडेसे मैंने उसके डंकको दबा दिया। छपपटाया वह, और डंक टूट गया, और बिच्छू चला गया। अब हमको एक साथीने बताया कि क्या किया तुमने! अब डंक कट गया न उसका, तो उसमें कीड़े लग जायेंगे, और बड़े दुःखमें बेचारेकी मृत्यु होगी। यह तो बड़ा बुरा काम हुआ। उसमें-से पानी निकलने लगेगा। अब हम जाकर जब भजन करने बैठे एकान्तमें, तो बारम्बार वह बिच्छू और उसके शरीरका पानी याद आवे। देखो, कर्मका असर अपने चित्तपर पड़ता है, और फिर उसकी याद आती है। कोई बुरा काम करे और उसके संस्कारसे बच जाय—ऐसा नहीं हो सकता, और कोई अच्छा काम करे और उसके संस्कारसे बच जाय, ऐसा भी नहीं हो सकता। जबतक कर्तापनका भाव है तबतक ये संस्कार, ये स्मृतियाँ रहेंगी। हम स्वयं मौतसे डरते हैं, तब दूसरेकी मृत्युके जब कारण बनेंगे, तो हमको दुःखी होना ही होगा। उससे द्वेष होगा, अपने शरीरसे राग होगा—अस्मिता होगी, उसके मूलमें अविद्या होगी। ये तीन बातें—बिना किये प्राप्त होना और किये हुए का न प्राप्त होना, बंध और मोक्ष शास्त्रकी सफलता होना और कर्माशयका होना—इन तीनों युक्तियोंसे यह बात सिद्ध होती है कि **भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।**

यह जो भूतग्राम है, यह वही है जो ब्रह्माजी के पहले दिन था। वही दूसरे दिन है, वही तीसरे दिन होता है, वही चौथे दिन होता है। इसमें जो कर्तापन,

भोक्तापन, संसारीपना और परिच्छिन्नपना—इन चारोंके बन्धनसे जो छूट जाते हैं, वही इस आवागमनके चक्करसे छूटते हैं। इस बंधनसे छूटते कैसे हैं? जब अपनेको ब्रह्म जानते हैं। यह देखो, कर्तापना क्या है? अपनेको पापी, पुण्यात्मा मान बैठना। स्वामी मधुसूदन सरस्वतीने गीतापर बहुत बढ़िया, बेहद अच्छी टीका लिखी है, 'अद्वैतसिद्धि' उसका नाम है। उसको मनन बोलते हैं; वह गीताकी टीका नहीं है, उसका मनन है। अद्वैतसिद्धि उन्होंने लिखी, सब द्वैतवादियोंको हरा दिया। एक दिन एकान्तमें बैठे हुए थे। एक नन्हा अवधूत, परमहंस आ गया उनके सामने; आकर उनसे ऊँचे बैठ गया। उन्होंने देखा—यह कौन है? कि कोई अवधूत मालूम पड़ता है। अवधूत बोला—मधुसूदन, तुम एक बात हमको बताओ। जब तुम शास्त्रार्थ करते हो और कोई तगड़ा पंडित आ जाता है तुम्हारे सामने, तो तुम्हारे दिलकी धड़कन बढ़ जाती है, कि नहीं? डर लगता है तुमको, कि कहीं हार न जाएँ? बोले—कि लगता है। बोले—अच्छा, जब जीत जाते हो तब तुमको खुशी होती है, कि नहीं? —होती है। बोले—देखो, अभी जो तुम्हारा कर्तापन है, वह क्षीण नहीं हुआ। कर्तापन और भोक्तापन—बात-बातमें अपनेको पापी मानना, बात-बातमें अपनेको पुण्यात्मा मानना, दिनभरमें सत्रह बार अपनेको सुखी मानना, दुःखी मानना और संसारी, नरक, स्वर्ग, पुनर्जन्मका चक्कर; और परिच्छिन्न अणु रूपमें या विभु रूपमें अपनेको परिच्छिन्न मानना—विभुभी परिच्छिन्न, अणु भी परिच्छिन्न, मध्यम परिणाम भी परिच्छिन्न! तो बोले—चार बातें छूटनी चाहिए—कर्तापन, भोक्तापन, संसारीपना और परिच्छिन्नपना। ये कैसे छूटेंगे? अपनेको ब्रह्म जाननेसे। तब तो आदमी इस चक्करसे छूट जायेगा, नहीं तो जब-जब ब्रह्माका दिन आवेगा, तब-तब पैदा होगा और जब-जब रात आवेगी, तब-तब लीन होगा। होशमें आये और कुछ अकबक किया, हाथ-पैर पटका; और फिर रात आयी, तो बेहोश हो गये। ऐसे होशसे बेहोश में, बेहोशेसे होशमें—ऐसे चलते रहते हैं—

रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।

अवशः —अवशः माने, इसमें जीव की स्वतंत्रता नहीं है। जबतक वह अपनेको देह मानता है, कर्ता मानता है, भोक्ता मानता है, जानता है; जबतक भ्रम है कर्तापनेका, भोक्तापनेका, परिच्छिन्नपनेका, संसारीपनेका—तबतक **अपुनको आपुन ही बिसर्‌यो**। जैसे नलिनीका सुवरा अपने हाथोंसे नलिनीको पकड़कर उसके साथ चक्कर काट रहा है, ऐसे ये कर्म, कर्मके संस्कार और उनके आश्रयभूत

यह अंत:करण—इनको अपने अहंपनेके द्वारा पकड़कर जीव इनके साथ मिला हुआ है—अवश: । जब अंत:करणका जन्म होगा, तब तुम्हारा जन्म होगा, और जब अंत:करण दु:खी होगा, तब तुम दु:खी होओगे, जब सुखी होगा, तब सुखी होओगे। असलमें बंधन यही है, अंत:करणके साथ बँधना—**अवश:।**

वैष्णव लोग अवश: शब्दका अर्थ करते हैं—अ माने वासुदेव—परमात्मा; उनके वश होकर; माने यह चक्कर परमात्मा करवाता है। या तो आओ, हमसे मेल करो और नहीं तो चक्कर काटो। यह परमात्माकी जो आँख-मिचौनी है न, इसमें बस-एक खेल है। परमात्मा कहता है—जबतक हमको पहचान नहीं जाओगे, तबतक तुम्हें चक्कर काटना पड़ेगा। अब पूछो—भाई, कहाँ छिपे हो? कि तुम्हारे ही भीतर छिपे हैं। कि हमारे भीतर क्या बनकर छिपे हो? तुम्हीं बनकर छिपे हैं; जो तुम सो मैं। तुम सारी दुनिया ढूँढ़ते हो और अपने आपको नहीं ढूँढ़ते हो, इसीसे परमेश्वर नहीं मिलता।

मैंने पढ़ा था पहले; कलकत्तेसे कोई सेठ चले। बड़ी लम्बी यात्रा उनको करनी थी। रुपया उनके पास बहुत था। एक ठग लग गया उनके साथ। फर्स्ट क्लासके जिस डिब्बेमें सेठजी, उसीमें उसने भी अपनी सीट करा ली। वह सोचे—जब ये सो जायें, तब रुपये निकालें। अब जब सेठ सो जायें, तो वह उनका बिस्तर और बिस्तर ढूँढ़े, पैसा न मिले। एक दिन ऐसा किया, दो दिन ऐसा किया—नहीं मिला। जब दिन होवे, सेठजी जगें, तो रुपया निकालकर गिनना शुरू कर दें उसके सामने, और दिखावें उसको, कि कितने नोट हैं। जब रात हो, सो जायें सेठजी, तब वह ढूँढ़े। तकियातक निकालकर देख लिया, कहीं पता न चले। अंतमें उसने सेठसे कहा—सेठ, अब मैं तुमको सच्ची बात बताता हूँ। मैं चोर हूँ, और तुम्हारे साथ लगा था, इसलिए—कि रुपया चुरा लूँ। सैकड़ों रुपया तो मैंने तुमको खिलाने-पिलानेमें, आदर-सत्कारमें खर्च कर दिया, लेकिन रुपया मेरे हाथ नहीं लगा। तुम यह बताओ, कि आखिर कहाँ रखकर सोते हो? बोले—भाई, मैंने तुमको पहचान लिया शुरूमें ही, कि तुम चोर आदमी हो। दिनभर तो मैं रुपया अपने पास रखता और रातको तुम्हारी जेबमें डाल देता। तुम हमारी तलाशी तो लेते, लेकिन अपनी जेबकी तलाशी नहीं लेते। इसलिए रुपये की प्राप्ति नहीं होती। यह महाराज, बड़ा चतुर निकला न सेठ! परमेश्वर भी बड़ा चतुर है। इसने अपनेको छिपाया, तो कहाँ छिपाया? अरे, तुम्हारे ही दिलमें अपनेको छिपा लिया। यह तुम्हारे दिलकी जेबमें ही छिपा हुआ है। तुम्हारे साथ

अपनेको मिला दिया—एक हो गया। अब तुम सारी दुनियाको ढूँढ़ते हो, परन्तु अपने आपको नहीं ढूँढ़ते हो न। इसीलिए नहीं मिलता है।

यह जो सृष्टि है, यह ऐसे ही चलती रहती है। ब्रह्मा भी सोते हैं—जागते हैं; विष्णु भी सोते हैं, जागते हैं; रुद्र भी सोते हैं, जागते हैं—लेकिन यह सृष्टि चलती रहती है। इस सृष्टिमें-से निकलता कौन है? यही शर्त है इसमें—**तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म**—जिसने उसको पहचान लिया, बस, बाजी जीत गया वह। और यदि नहीं पहचाना? **न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।**

यदि इस जीवनमें परमात्माको नहीं पहचाना, तो उसी चक्करमें पड़ा। फिर घूम आओ—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥ २०॥

तस्मात् अव्यक्तात् तु। तु माने विलक्षण, भिन्न। एक अव्यक्त वह है, जिसमें सब लीन होता है, और एक अव्यक्त वह है, जिसमें न कोई लीन होता है, और न तो कोई निकलता है। यह विलक्षणता बताते हैं। अव्यक्त दो तरहका! देखो, गीतामें ही एक तो अक्षर परब्रह्मको अव्यक्त कहा गया—**अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तः। तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।** और एक आत्माको भी अव्यक्त कहा गया—**अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम्।** त्वं पदका लक्ष्यार्थ आत्मा अव्यक्त है। तत् पदका लक्ष्यार्थ जो परमात्मा है, वह अव्यक्त है। और प्रकृति जो है, वह अव्यक्त है। तो **'अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।' परस्तस्तमात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः। तस्मात् अव्यक्तात् परस्तु अन्यो भावः।** यह जो अव्यक्त है, जिसमें सब लीन हो जाते हैं—उससे परे एक अव्यक्त है। वह कैसा है? कि बिलकुल अन्य है। बिलकुल अन्य है—कहनेका अभिप्राय यह है कि कोई सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद जो प्रकृतिका है, जगत्के कारणका है—वह उसका स्पर्श नहीं करता।

एक महात्मासे किसीने जाकर पूछा—कि परमात्मा कैसा है? वे बोले—कि तू जैसा; जैसा तू है, वैसा ही परमात्मा है। जरा अपने आपको देख, तब मालूम पड़ेगा कि परमात्मा कैसा है। जो साढ़े तीन हाथके शरीरमें रहनेवाले अपने आपको ले न जाने, और कहे—कि समग्र सृष्टिके, मायाके अधिष्ठान परमात्माको हम जान लें! तो नन्हीं-सी चीज तो तुम्हारी पहचानमें आयी नहीं, इतनी बड़ी चीज कैसे पहचानमें आवेगी।

घर आए नाग न पूजिए, बाँबी पूजन जाई।

घर में नाग आया। उसकी पूजा तो नहीं करनी, बाँबीकी पूजा करनेके लिए जायेंगे। अपने हृदयमें जो परमात्मा है, उसको तो नहीं पहचानेंगे, और कहेंगे—कि उसको ढूँढ़नेके लिए हम तो धुरधामकी यात्रा करेंगे। ब्रह्मलोकमें जायेंगे।

एक बारकी बात है—हमारे एक मित्र हैं, बीस सालसे वेदान्त सुनते हैं। मैंने उनसे कहा—कि यह जो वेदान्ती लोग बोलते हैं कि सुवर्ण में कटक-कुण्डलादि कल्पित हैं, इसमें 'कटक' शब्दका क्या अर्थ है? तो बोले—कि बाबा, हम नहीं जानते। लो! कि 'सोनेमें कटक-कुण्डलादि के समान', यह 'कटक' माने क्या? अरे 'कटक' माने कड़ा—हाथमें जो पहनते हैं। जैसे सोनेमें कंगन या कड़ा गढ़ा जाता है, और वह सोनेसे जुदा नहीं होता, ऐसे परमात्मामें यह सृष्टि है। यह बताना! अच्छा, 'निर्विशेष' शब्दका अर्थ नहीं समझते हैं। देखो, घड़ीमें एक विशेषता है, इसलिए यह किताबसे अलग है। घड़ी समय बताती है और किताब समय नहीं बताती। और किताबमें एक विशेषता है कि उसमें श्लोक लिखे हुए हैं, और घड़ीमें नहीं हैं। जो विशेषता पुस्तकमें है, वह घड़ीमें नहीं है और जो घड़ीमें है, वह पुस्तकमें नहीं है। ये दोनों क्या हुए? कि ये दोनों विशेषवाले—सविशेष, पदार्थ हुए। ये दोनों जैसे अलग-अलग चीजें हैं, ऐसे परमात्मा जो हैं, वह अपनेमें कोई खास खूबी या खास सिफ्त रखकर और किसीसे अलग होवे—ऐसी कोई चीज नहीं है। परमात्मा यदि सविशेष ही होता, तो उसकी खूबी, उसकी विशेषता, उसके गुण उसमें होते; हममें, तुममें, दुनियामें बिलकुल न होते; और हममें, तुममें, दुनियामें जो खूबी—जो विशेषता होती, वह परमात्मामें न होती। दो लोग बिलकुल अलग-अलग होते। निर्विशेष कहनेका अभिप्राय यह होता है कि जो हम हैं, जो तुम हो, जो तिनका है, जो ब्रह्मा है—इससे विलक्षण परमात्मा नहीं है, और परमात्मासे विलक्षण यह नहीं है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि परमात्माके सिवाय दूसरी कोई चीज नहीं है। आँख बन्द करके जिसका ध्यान किया जाता है, वह सातवें आसमानमें होता होगा। घड़ी साकार है और परमात्मा निराकार है। परमात्मा घड़ी नहीं है और घड़ी परमात्मा नहीं है। लेकिन जो निर्विशेष वस्तु होती है, उसमें निराकार और साकारका भेद नहीं होता; उसमें निर्गुण और सगुणका भेद नहीं होता; उसमें 'मैं' और 'तू' का भेद नहीं होता; उसमें 'वह' और 'यह' का भेद नहीं होता। यह वेदान्तका सिद्धान्त है।

परसों-तरसों हमारे पास आये थे कुछ लोग—यहींके, बम्बईके बड़े-बड़े मशहूर लोग। बोले—स्वामीजी, आप पहले स्वामी प्रेमपुरीजी के समयमें वेदान्तकी जैसी ऊँची-ऊँची बात सुनाते थे, अब नहीं सुनाते हो वैसी। बोले—भाई! उस समय मैं सुनाता था स्वामी प्रेमपुरीजीकी पूजा करनेके लिए। मन में होता था न, कि ऐसा एक व्यक्ति यहाँ बैठा है, जो वेदान्तकी गहराईको आमूल-चूल समझता है। उसके सामने अगर हम कोई गहराईकी बात कहेंगे, तो उसका दिल खुश हो जायेगा।

तो 'निर्विशेष' शब्दका अर्थ क्या है—इसपर विचार करके देखो। जबतक तुम ब्रह्ममें किसी विशेषताकी कल्पना नहीं करोगे, तबतक उसको अपनेसे अलग नहीं समझ सकते। और जबतक अपनेमें किसी विशेषताकी कल्पना नहीं करोगे तबतक अपनेको उससे अलग नहीं समझ सकते। और जब विशेषता अविद्या-कल्पित, माया-कल्पित, उपाधि-कल्पित, अज्ञान-कल्पित है, तो तुम उससे अपनेको, और अपनेसे उसको कैसे अलग समझते हो? कौन-सी नयी चीज लेकर तुम दुनियामें आये हो, जो ब्रह्मके पास नहीं है, और तुम्हारे पास है? और ऐसी ब्रह्ममें क्या चीज है, जो तुम्हारे अन्दर नहीं है और ब्रह्मके अन्दर है? तब देखोगे, क्या मजा आता है वेदान्तके विचारका। और ऐसा मजा आता है—कि एक क्षणमें प्रकाश हो गया। अविद्याकी निवृत्ति हो गयी। साक्षात् परब्रह्म परमात्माका दर्शन हो गया। घोड़ेके रकाबमें पाँव, और ब्रह्मका साक्षात्कार।

अपि तुषावदलनात् अपि लोचनमीलनात्।

फूलको मसल देना सहज नहीं है; कठिन है, क्रिया करनी पड़ती है, लेकिन ब्रह्म जाननेमें क्रिया नहीं करनी पड़ती। आँख बन्द करनेमें संकल्प लगाना पड़ता है और ब्रह्मको जाननेमें संकल्प नहीं लगाना पड़ता! लेकिन तुम खुद ही अपने अन्दर यह विशेषता, उसके अन्दर वह विशेषता—अभिमान धारण करके बैठे हो। अभिमानी जो है, वह ब्रह्मके साथ एक नहीं हो सकता। वह तुम्हारा अभिमान, तुम्हारी अविद्या, तुम्हारा अज्ञान ही तुम्हें ब्रह्मसे पृथक् करता है।

विलक्षण क्या है? बोले—एक जो है, वह विनाशी, जड़, दृश्य, व्यक्त और अव्यक्त भाव है और एक सनातन, अव्यक्तसे भी परे—**अक्षरात् परतः, परस्तात्**—सबसे परे जो अक्षर है, उससे भी परे है। उसकी पहचान क्या है? बोले—उसकी पहचान ऐसी बढ़िया है! अगर आदमी अपनी बुद्धिको न बिगाड़ ले।

आपने सुना होगा—एक आदमी अपने गुरुजीको बहुत परेशान करता था, कि हमको ईश्वरके दर्शन कराओ। गुरु ने कहा कि उनका ध्यान कर, तब ईश्वरके दर्शन होवे। बोले—क्या ध्यान करें? ध्यान लगता नहीं है। देखा नहीं है, तो ध्यान कैसे लगेगा? बोले—कि तुमको मालूम नहीं है बेवकूफ! बकरा जैसा होता है न, ऐसा ही ईश्वर होता है। तू बकरेका ध्यान कर। अब वह बकरेका ध्यान करने लगा। नारायण उसके भोलेपनेपर रीझ गये—कि देखो, यह कितना भोला है! कितनी गुरुपर श्रद्धा है; विश्वास है, कि गुरुके कहनेसे बकरेका ध्यान कर रहा है। हाथमें शंख-चक्र-गदा धारण करके उसके सामने प्रकट हुए, और बोले—मैं नारायण आया हूँ तुम्हारे समाने। दर्शन करो। तो उसने कहा—कि महाराज, हमको तो गुरुजीने बताया है कि ईश्वर बकरे सरीखा होता है। तुम तो वैसे हो नहीं, तो हम तुमको ईश्वर नहीं मानते हैं। नारायण बोले—नहीं भाई, मैं ही ईश्वर हूँ। बोला—कि नहीं, हम तो बकरेको पहचानते हैं। बकरेको हम ईश्वर मानेंगे, तुमको नहीं मानेंगे। नारायण ने कहा—लो भाई, हम बकरा बन जाते हैं। बकरा बनकर प्रकट हुए और बोले—अब तो मैं ईश्वर हूँ। बोला—कि नहीं, हम तुमको कान पकड़कर ले चलते हैं अपने गुरुजी के पास। जब गुरुजी कहेंगे कि यह ईश्वर है—तब हम मानेंगे कि तुम ईश्वर हो।

ईश्वरके बारेमें जब कोई मान्यता हो जाती है न, तो नारायण भी सामने प्रगट हो जायें, तब भी उसको ईश्वर नहीं मान सकते। परमेश्वरके दर्शनमें बाधा क्या है? बाधा यह है कि बहुत सारी मान्यताएँ हमारे दिमागमें बैठ गयी हैं—कि ईश्वर ऐसा, ईश्वर ऐसा! ईश्वरकी पहचान बताते हैं; आप जरा गौर करके देखेंगे, तो आपकी पहचानमें आ जायेगा—**यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।**

देखो, जाग्रत् अवस्था आयी और गयी, स्वप्नावस्था आयी और गयी, सुषुप्ति अवस्था आयी और गयी—ये तीनों अवस्थाएँ आती हैं और जाती हैं। भूतग्राम पैदा होता है और मरता है। जो आया सो गया। अब देखो—कि जाग्रत् आया गया, स्वप्न आया गया, सुषुप्ति आयी-गयी। इन तीनोंमें कोई ऐसी चीज है, जो न आयी न गयी। उसका नाम हम आज नहीं बताते हैं, कल बतानेके लिए रखते हैं उसको।

★

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥ २०॥

योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः। सृष्टिमें कार्य देखनेमें आता है; कार्य माने—जो उत्पन्न हुआ। बनता है, बिगड़ता है; बनता है, बिगड़ता है—पर उसमें कारण धातु एक ही रहती है। उसमें बनने और बिगड़नेसे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसीको उपादान बोलते हैं। चाहे बर्तन बने, चाहे फूटे—पीतल ज्यों-का-त्यों। जेवर बने, चाहे फूटे—सोना ज्यों-का-त्यों। घड़ा बने, चाहे फूटे—माटी ज्यों-की-त्यों। जो यह कार्य-कारण-भावापन्न जो प्रपंच है, इससे परे; माने जिस दृष्टिसे कार्य-कारण भाव सत्य सिद्ध नहीं होता, वह जो एकरस सनातन भाव है—यह परे बताया। वह सबसे परे है, कार्य-कारण दोनोंसे विलक्षण। **स बाह्याभ्यन्तरो यजः। न तस्य कश्चित् जनिता**—उसका कोई कारण नहीं है, **न तस्य कार्यं**—उसका कोई कार्य भी नहीं है। जब उसका कोई कार्य नहीं है, तो वह कारण भी नहीं हुआ। **स कारणं कारणाधिया।**

उसका निरूपण यह किया कि **सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति**। सम्पूर्ण प्राणियोंमें परिवर्तन, विनाश विवर्तन होनेपर भी वह अविनाशी है—माने त्रिकालाबाध्य है। वेदान्तकी भाषामें इसको बोलेंगे—**त्रिकालाबाध्य**। तत्त्वका लक्षण है अबाधित होना—जो कभी मिटे नहीं, कभी छूटे नहीं; छूटा हुआ मालूम पड़े, पर छूटे नहीं; मिटा हुआ मालूम पड़े, पर मिटे नहीं—ऐसा। **सर्वेषु भूतेषु** कहकर यह बात बतायी, कि जो सर्वभूतमें उपादान रूपसे विद्यमान होकर भी उपादान और उपादेय भावसे रहित है, कार्य-कारण भावसे रहित है, अखण्ड सत्तारूप है—वह!

अब उसीको श्रुतिमें अक्षर कहते हैं—यह तीसरी बात आयी। सबसे परे है, सबमें विद्यमान रहकर अविनाशी है और श्रुतिमें उसीका नाम अक्षर है। अब चौथी बात बताते हैं—

परमां गतिम्—वही प्रयोजनीय है। कोई कहे—कि बाबा , वह सबसे परे होवे और वह हमेशा रहे, वह सबमें होवे और वह अविनाशी, अबाधित होवे, उसका नाम श्रुतिमें ‘अक्षर’ बताया होवे—सब ठीक; परन्तु हमारे साथ उसका क्या सम्बन्ध? अगर हमारे साथ रिश्ता न जुड़ता हो, तो वह हमारे लिए बेकार है! माने,

मानव जगत्के साथ, जीव जगत्के साथ उसका कोई समबन्ध जुड़ता है कि नहीं? बोले—**परमां गतिम्**—असली घर वही है। **परमां गतिं** का अर्थ है—चलते-चलते अन्तमें वहीं पहुँचना पड़ेगा। गतिकी परम सीमा, गतिकी चरम सीमा वही है। माने, तुम्हारे जीवनका मुख्य प्रयोजनीय पदार्थ वही है। इसके मिले बिना न धर्म पूरा पड़ेगा, न अर्थ पूरा पड़ेगा, न भोग पूरा पड़ेगा, न मोक्ष पूरा पड़ेगा! इसका मतलब हुआ कि इसी जीवनमें उसको प्राप्त करना। **न चेदिदावेदी महती विनष्टिः**। यदि इस जीवनमें उसको नहीं जान लिया, तो बड़ा विनाश हुआ।

एक होती है गति और एक होती है परमा गति। गति वह है, जहाँ चलकर जाना पड़े; चलनेका नाम गति है। और परमागतिका क्या अर्थ है? कि चलना तो पड़े नहीं, लेकिन मिले तो वही चीज, जो चलनेके बाद मिलती है। **तद्दूरे तद्वन्तिके**। एक आदमी चल पड़ा आकाशकी नीलिमाका पता लगानेके लिए, आकाशका छोर पानेके लिए, आकाशकी सूक्ष्मताको जाननेके लिए। लेकिन उसने यह पता नहीं लगाया कि हमारे हृदयके भीतर जो आकाश है—वही मकानमें है, वही मकानके बाहर भी है; और वही हमारे दोनों गालोंके बीच भी है। गालोंके बीचमें पोल है न—उसमें भी वही है, और गाल अलग-अलग होनेसे, और भीत अलग-अलग होनेसे उस आकाशमें कोई फर्क नहीं पड़ा। उसको महाकाशमें उड़कर, ब्रह्मलोकमें जाकर पहचाना जाए, या उसको इसी मकानके भीतर पहचान लिया जाये या उसको अपने आत्माके रूपमें ही पहचान लिया जाए! तो प्रयोजनकी सिद्धि होगी कैसे? जहाँ जाओगे, वहाँसे तो लौटना पड़ेगा। सच्ची गति, सच्ची उपलब्धि, सच्चा ज्ञान, सच्ची प्राप्ति वह है, जहाँ जाकर लौटना नहीं पड़ता। जीवका परम गन्तव्य वही अक्षर तत्त्व है।

अब बताया, कि—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥२१॥

अब देखो! अधिष्ठान है वह, पुनरावर्जित अधिष्ठान है—माने वहाँसे लौटना नहीं है, और वह परम धाम है। जाना और आना, गति और अगति, प्रवृत्ति और निवृत्ति—इसमें शान्त पुरुषको बड़ा कष्ट मालूम पड़ता है। शान्त पुरुषको जब दौड़-धूप करनी पड़ेगी न, तो मालूम पड़ेगा—कि अरे, यह तो विक्षेप है। असलमें मनुष्यकी प्रकृतिको समझना चाहिए। मनुष्य जब प्रकृतिको न समझे, तो तकलीफ पाता है। तो—यं प्राप्य न निवर्तन्ते।

अब देखो, हमारा मन हृदय—देशमें-से निकलकर आँखमें आया—एक प्रवृत्ति; और आँखमें-से विषयमें गया—दूसरी प्रवृत्ति। और निवृत्ति क्या हुई? कैसा भी बाहरका विषय होवे, उसके पास जानेके बाद लौटना ही पड़ेगा—चाहे गुलाबकी पंखुड़ी देखो, और चाहे इन्द्रादि देवताका दर्शन करो, चाहे विष्णु आदि ईश्वरके जो गुणावतार हैं, उनको देखो। कहो, कि देखते-देखते उन्हींमें लीन हो जायेंगे; नहीं, लीन होओगे। फिर वहाँसे लौटकर आना पड़ेगा। यह तो—

यथा सूत्रेण प्रबद्धो शकुनिः दिशं दिशं पतित्वा
अन्यत्राऽऽयतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयते॥

उपनिषद्‌में बताया कि जैसे एक लकड़ीमें सूतसे एक चिड़ियाको बाँध देते हैं, और वह चिड़िया इधर गयी, उधर गयी—तड़फड़ाई खूब। लेकिन जब तड़फड़ाते-तड़फड़ाते थक गयी, तो जहाँ बँधी थी, उसी लकड़ीपर लौटकर बैठ गयी। इसीका नाम निवृत्ति है। जो मनीराम हैं—वे कभी कानके रास्ते संगीत सुनने जाते हैं, कभी आँखके रास्ते रूप देखने जाते हैं, कभी नासिकाके द्वारा गंध सूँघने जाते हैं, कभी जिह्वाके द्वारा रस लेने जाते हैं। यह बाहर जाना नहीं; यहीं-यहीं रहकर इन्द्रियाँ सब मजा ले लेती हैं। कान शब्द-देशमें नहीं जाता है, आँख रूप-देशमें नहीं होती है, नाक गंध देशमें नहीं जाती है, जिह्वा रस-देशमें नहीं जाती है; अपने स्थानमें रह कर ही तत्—तदाकार हो जाना, विषयसे अभेद प्राप्त कर लेना—यही तो भोग होता है न! चाहे कोई भी आकार धारण करे तुम्हारा मन, तुम्हारी इन्द्रिय—उसको छोड़ना पड़ेगा। यह भी नहीं रहेगा; यह भी नहीं रहेगा। संसारके इस सत्यको, उस रहस्यको जो लोग समझ लेते हैं, वे मौजमें रहते हैं।

अब देखो, रेलगाड़ी चल रही है और उसमें एक बच्चा बैठा है। स्टेशनपर कोई आदमी आया और बच्चेको मिठाई खिलाने लगा, बहुत प्यार किया। अब गाड़ी छूटने लगी, तो बच्चेने कहा—नहीं, हमको तो यही स्टेशन अच्छा लगा, हम तो यहीं रहेंगे। रोवेगा न बच्चा! और जो सयाना है, वह जानता है कि भाई, जब गाड़ीमें बैठे हैं, तो सब स्टेशन छूटते जायेंगे। ये सब स्टेशन हैं—माँ-बाप भी एक स्टेशन हैं, पति-पत्नी भी एक स्टेशन हैं, बाल-बच्चे भी एक स्टेशन हैं। ये जिन्दगीमें थोड़े समयके लिए आते हैं, और फिर चले जाते हैं। इनको अगर कोई पकड़कर बैठ जायेगा—कि हम दुनियामें इस चीजको नहीं छोड़ेंगे—तब वे दुःखी होंगे। यही बन्धन है। आप जानते हैं, बन्दरको लोग कैसे फँसाते हैं? छोटे मुँहके बर्तनमें चना डालकर धरतीमें गाड़ देते हैं। बन्दर उसमें अपना हाथ डालकर चना मुट्ठीमें ले लेता है। और जब चना

सहित हाथको खींचता है, तब नहीं निकलता। अब वह चना छोड़ता नहीं, और बन्दरका हाथ निकलता नहीं; और मदारी पकड़ लेता है। और, बेचारा बाँधा जाता है; उसको नचकैय्या बनना पड़ता है मदारीका। यह जो जीव है, यह संसारमें जब इन्द्रियोंके द्वारा बाहर जाकर किसी चीजको पकड़ लेता है, और उसको छोड़नेके लिए राजी नहीं होता, तब यह डंडा खानेका अधिकारी हो जाता है। मार इसको पड़ती है। पराधीनता तभी इसके जीवनमें आती है।

मैंने एक पुस्तकमें पढ़ा था कि संसारमें जितने तथागत आये (तथागत माने बुद्ध होता है), उन्होंने यही उपदेश किया है, यही अनुभव किया है—कि संसारके किसी भावको पकड़ों मत। अगर संसारके किसी भावको पकड़ोगे, तो दुःख-ही-दुःख होगा, क्योंकि वह भाव तो जायेगा, क्षणिक है। तुमको दुःख होगा; इसके लिए तैयार रहो। अब कहो, कि भाई! आत्मा भी वैसा ही है; बोले—नहीं, आत्मा ऐसा नहीं है। क्यों? कि वृत्तिको आँखके द्वारा निकलकर विषयके देशमें जाना पड़ा, वहाँसे लौटकर आना पड़ता है। जैसे आदमी कोई घरसे बाहर गया। दूसरेके घर खाने गया, होटलमें खाने गया—तो लौटकर अपने घर आना पड़ता है। अपने घरमें ही है, तो वहीं सो जायेगा; उसको फिर लौटकर आनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। अपना जो आत्मा है, वह कोई पराये घरमें नहीं है। यह तो पराया आमन्त्रण नहीं है न। देखो, एक काम करनेवाली स्त्री है, मजदूर है। दिन भर दूसरोंके घर काम करती है, लेकिन शामको वह अपने घरमें लौट आती है और अपने पतिके पास सोती है। है न यह बात। अपने घरमें लौट आना, और अपने पतिके पास सोना! ये जो हमारी इन्द्रियाँ हैं, हमारी जो वृत्तियाँ हैं, ये दिनभर विषयोंमें काम करती हैं। लेकिन इनको जो मजदूरी मिलती है, जो सुख मिलता है। वह सुख भी अपने अधिष्ठान, अपने प्रकाशक, अपने पतिको देती हैं; और रातमें आकर सोती है अपने पतिके पास। इसलिए दूसरोंके घरमें जब जाओगे, जब प्रवृत्ति होगी—जिसको पराया समझकर मिलोगे—उसको छोड़ करके लौटना पड़ेगा। और जिसको अपने आत्म-रूपमें देखोगे, उसको छोड़ना नहीं पड़ेगा। उपनिषद्में क्या बढ़िया इसका निरूपण किया है—

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म वेद।
क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः क्षत्रं वेद।
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो लोकान् वेद।
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो देवान् वेद।
सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः सर्वं वेद।

जो अपने-से अलग ब्राह्मणको जानेगा—ब्राह्मण उसका तिरस्कार करेगा; जो अपनेसे अलग क्षत्रियको जानेगा क्षत्रिय उसका तिरस्कार करेगा। उसने घेरा बना दिया न—कि तुम अलग, तुम अलग। **सर्वं परादात्**—सब उसका दुश्मन है, जो अपनेसे जुदा सबको जानता है। लौटकर अपने घरमें आ जाओ, तो आने-जानेका चक्कर नहीं रहेगा।

यं प्राप्य न निवर्तन्ते, परमां गतिम्।

यह यात्राकी समाप्ति, सम्पूर्ण साधनोंका पर्यावसान, सम्पूर्ण फलोंका रस; और यहाँसे फिर बाहर जानेकी जरूरत नहीं—निवृत्तिमें। यह कौन है? कि **तद्धाम परमं मम**—यह मेरा परम धाम है। **तद्धाम परमं मम** का अर्थ शंकराचार्य करते हैं—**तद्धाम धाम परमं प्रकृष्टं तद् विष्णोः परमं पदं इत्यर्थः**—मैं विष्णु हूँ, और **तद् विष्णोः परमं पदं तदा पश्यन्ति सूर्यः जिजीवं चक्षुरातकं**। ऋग्वेदमें विष्णुके नामसे सोलह मन्त्रके लगभग प्राप्त होते हैं। **श्रीपदा विचक्रमे, विष्णुर्गोपा अदावयः। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रिधा भेषजम्। समूदस्यमांकुरे**। यह जो विष्णु है, इसका परम पद क्या है? शंकराचार्य भगवान्ने कहा—वह विष्णुका परम पद है— **तद् विष्णोर्परमं पदं**। कठोपनिषद्में भी यह मंत्र है, और ऋक् संहितामें भी यह मंत्र है।

यह भगवान्का **तद्धाम परमं पदम्**—यह भगवान्का परमधाम है, माने सर्वोत्कृष्ट पद है, सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है। श्रीरामानुजाचार्यजी महाराजने इसका अर्थ ऐसा किया है—कि एक तो मैं अचेतन प्रकृतिमें बैठकर सबका नियमन करता हूँ; दूसरे-उस प्रकृतिसे संसृष्ट जो जीव है

उसमें बैठकर सबका नियमन करता हूँ। यह दूसरा नियमन स्थान है। तीसरे, उचित प्रकृतिके संसर्गसे जीवका अपने स्वरूपमें अवस्थित जो मुक्त स्वरूप है—वहाँ बैठकर नियमन करता हूँ अचित् प्रकृतिका नियमन और तत् संसृष्ट जीवनका नियमन जहाँतक करते हैं—माने प्रकृतिका नियमन, प्रकृतिके कार्यका नियमन और उनमें संलग्न है जो जीव, उसका नियमन—यह तो इस मर्यादासे करते हैं, कि उनको बारम्बार आना पड़े। और जो प्रकृति और प्राकृतके संसर्गसे विनिर्मुक्त हैं, अपने स्वरूपके ज्ञानमें स्थित हैं जो मुक्त पुरुष—वे कैसे हैं? कि अपुनरावृत्ति रूप हैं, उनको फिरसे आना-जाना नहीं पड़ता। तो 'तद्धाम परमं मम'—वह मेरा सबसे बढ़िया स्थान है। इसका थोड़ा-सा अभिप्राय देखो। कहते हैं, कि आचार्य लोग जो एक बार बोल जाते हैं न, फिर लौटते नहीं हैं। अद्भुत गति है आचार्योंकी? यह क्या विचित्र बात बता रहे हैं। कहते हैं कि प्रकृति तो बीजात्मिका है। जब उसका नियमन मैं करता

हूँ, तो उसके बीजको ध्यानमें रखकर करता हूँ। जैसे चनेके बीजका नियमन भगवान् करते हैं। जब पानीमें पड़ा तो फूल गया। उसमें अंकुर निकला, पौधा निकला, पत्ते निकले, फूल निकले, फल निकले; परन्तु वे चनेके बीजके अनुरूप ही होंगे न! उसमें चनेका ही फल लगेगा। चनेके पेड़में भगवान् आमका फल नहीं लगा सकते, इमली नहीं लगा सकते। और इमलीके पेड़में चना नहीं लगेगा। यह क्यों? कि वहाँ बीजका अनुसरण करके तब भवागन् उसका नियन्त्रण करते हैं।

अच्छा, जीव प्रकृतिका नियमन करते हैं, जो प्रकृति-संसृष्ट जीव हैं न, वे सब अपने-अपने कर्म-जनित संस्कारसे युक्त आशयको—अन्तःकरणको—पकड़े हुए हैं। भगवान् उनका भी नियन्त्रण करते हैं। वे अमुक वासनावालेको अमुक जगह भेजते हैं। मांस खानेकी ज्यादा वासना हो, तो गीध बना दिया। दूसरेको खानेकी वासना हो, तो शेर बना दिया। शक्कर खानेकी ज्यादा वासना हो, तो चींटी बना दिया। जीवका भी नियन्त्रण जो करते हैं, वे तत्तत् कर्मजनित जो वासना है जो संस्कार है—उसके अनुसार करते हैं। परमात्माका शुद्ध नियमन वहाँ नहीं हुआ, क्यों? कि वहाँ जीवके अन्दर लगी हुई कर्म-वासना, और प्रकृतिके अन्दर लगी हुई बीज-वासना है। वहाँ चलाते तो ईश्वर हैं, लेकिन अपने मनसे नहीं चलाते। काम तो बिजली सब करती है, लेकिन पंखेमें आकरके पत्तोंको घुमाना शुरू करती है, जो हवा पैदा हो, और बल्बमें आकर जलना शुरू होती है, जिससे रोशनी हो जाय। हीटरमें गर्मी पैदा कर देती है और रेफ्रिजरेटरमें जाकर ठंड पैदा कर देती है एयर-कंडीशनमें ठण्डा पैदाकर देती है। है तो बिजली, लेकिन शुद्ध बिजली हुई क्या? हमको एक अच्छे कारखानेदारने—जिनके अनेक कारखाने चलते हैं—बताया, कि महाराज, यह जो बिजलीसे रोशनी होती है न, यह बिलकुल शुद्ध होवे—विज्ञानमें यह बात नहीं आयी है। जो भी रोशनी होवे, उसमें रंग जरूर होवे है। सूर्यकी जैसी रोशनी है—निर्मल, बिजलीसे अभी वैसी निर्मल, स्वच्छ, बिना रंगके रोशनी विज्ञानमें नहीं बनायी जा सकी।

यह देखो, ईश्वरका नियंत्रण आममें भी है, इमलीमें भी है, आँवलेमें भी है, चनेमें भी है, जौमें भी है; मिट्टी, पानी, आग-हवा—सबमें है, परन्तु बीज जैसा है, उसके अनुसार है। और जीवका नियंत्रण कैसा है? बोले—जैसी इसकी वासना, जैसा इसका संस्कार, जैसा अभिमान, जैसी उसकी प्रज्ञा, जैसी उसकी विद्या। प्रज्ञा, विद्या और कर्म—संस्कार-इन तीनोंके द्वारा ईश्वर जीवका नियन्त्रण करता है। ईश्वर किसीको सुखी बनावे, किसीको दुःखी बनावे, किसीको नारा बनावे, किसीको

बड़ा बनावे; किसीकी नाक चिपकी होवे, किसीकी नाक ऊँची होवे। ये सब कैसे बने? देखो, मसाला एक पंचभूतका, उसमें-से बिना संकल्पके और बिना कारणके कैसे भेद हो सकता है? ईश्वर उसका नियन्त्रण कर रहा है।

अब तीसरी बात देखो—मुक्त पुरुषका नियन्त्रण। बोले—मेरे नियमनका वह मुख्य स्थान है। एक बीज होता है और एक जीव होता है। एक ही चीजके दो नाम हैं; बीजको उलटो, तो जीव हो जायेगा और जीवको उलटो तो बीज हो जायेगा। अपरा प्रकृतिमें बीज होते हैं और चेतन प्रकृतिमें जीव होते हैं—

जीवभूता महाबाहो ययेदं धारयते जगत्।

बीज संस्कारसे युक्त जीवका नियन्त्रण बीजानुसार होता है और जीव संस्कारसे युक्त प्रकृतिका नियन्त्रण बीजानुसार होता है। श्रीरामानुजाचार्यजी महाराजकी बात भी आपको उसी ढंगसे बताते हैं; मुक्त जीवने अपनी अपरा प्रकृति और परा प्रकृति—दोनोंको अपने भगवद् चिन्तनसे अभिभूत कर दिया है। माने, भगवान्‌के द्वारा अनुग्रहीत जो जीव है, उसने जीव प्रकृति और बीज प्रकृति—दोनोंका परित्याग कर दिया है। इसलिए मुक्त पुरुषके द्वारा जो आचरण होता है, उसके बिलकुल सोलह आने भगवान् जिम्मेवार होते हैं। यहाँ उनका शुद्ध नियमन है, क्योंकि वहाँ न बीजत्व है और न जीवत्व है। बोले कि—**तद्धाम परमं मम। यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।**

जिसको प्राप्त हो करके, जिस भावको प्राप्त होकर निवृत्ति नहीं होती, वह मेरा परम धाम है। माने वह हमारी असली कचहरी है और वहाँ हमारी ठीक हुकूमत जाहिर रहती है।

ज़ब हम सत्संग करने गंगा-किनारे घूमते थे, तब की बात है, एक महात्मासे बात हुई। कई महात्मा बैठे हुए थे उस दिन मेरियामें, ऐसा संयोग हुआ। मेरिया एक कुरुक्षेत्र है गंगातट पर। मैंने पूछा—कि यह कैसे पता चले, कि यह ईश्वरकी प्रेरणा है, और यह हमारी वासना है? वासनामें और ईश्वरकी शुद्ध प्रेरणामें भेद कैसे किया जाय? हरिबाबाजी कहते हैं—कि जब अपने मनसे काम होता है, अपने मनके अनुसार काम होता है—तब तो थोड़ी शंका हो जाती है कि कहीं ईश्वरने हमारी बात मान करके तो यह काम नहीं किया। लेकिन जिस समय हमारी वासनाके विपरीत कोई काम होता है, तब ऐसा लगता है, कि यह काम तो हमारे प्यारेने किया है। मेरे मनका तो नहीं हुआ, उसके मनका हुआ है। तब? तो बोले—हमको खुश कब होना चाहिए? अपने मनका हो, तब-खुश होना चाहिए, कि उसके मनका हो, तब

खुश होना चाहिए? बोले—देखो, भक्त वह है, प्रेमी वह है—जो उसके मनकी होनेपर खुश होवे। अपने मनकी करके तो अभिमानी लोग खुश होते हैं, और उसके मनकी करके भक्त लोग खुश होते हैं।

उड़िया बाबाजी महाराजका कहना था—कि ईश्वरका जो असली स्वरूप है, वह सर्वज्ञ नहीं है। यह तो हम लोग कहते हैं कि हे प्रभु! तुम सर्वज्ञ हो और हमारे दिलकी जानते हो। उसका असली स्वरूप अंतर्यामी भी नहीं है कि वह सबका नियंत्रण करता होवे। बोले—हे प्रभु! तुम बड़े दयालु हो; वह नहीं, उसका स्वरूप दयालु भी नहीं है। वह तो बिलकुल ठसाठस ठोस भरा हुआ है। उसमें निग्रहकी—ईश्वरने हमको दण्ड दिया, और अनुग्रहकी कि उसने हमारे ऊपर कृपाकी और यह—कि उसने हमारी वासना पूरीकी और यह—कि उसने हमारी वासना नष्ट कर दी—ये सारी बातें अज्ञानी ही उसके ऊपर आरोपित करते हैं। असलमें परमात्माकी ओरसे किसीको कोई प्रेरणा नहीं प्राप्त होती, सब लोग अपने-अपने होनेके संस्कारानुसार ही उसके ऊपर प्रेरकत्वका अध्यारोप करके, यदि अनुकूल करे तो हाथ जोड़ते हैं और प्रतिकूल करे तो गाली देते हैं। यह अनुकूल और प्रतिकूलकी कल्पना जीवकी है सर्वथा, अज्ञानी जीवकी है। और उसमें सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, दयालुता, अन्तर्यामित्व आदिका अध्यारोप करके, कल्पना करके फिर उसको गाली देना शुरू कर देते हैं।

देखो, दो महात्माओंकी बात बता दी न! यह महात्माओंकी सभामें जो बात हुई न, वह सुनाया आपको। तीसरे महात्मा बोले—कि देखो, जबतक कोई काम हुआ न हो, तबतक तो जो अपनेको अच्छा लगता हो, वही चाहें। अपनी बुद्धिसे, शुद्ध बुद्धिसे जो ठीक मालूम पड़ता हो—कि ऐसा हो, ऐसा हो, उसको चाहें। और जब हो जाय, तब जैसा हो, उसमें हाँ-में-हाँ मिला दो। क्योंकि जब हो गया तब उसमें ईश्वरकी इच्छा जरूर थी। नहीं हुआ—उससे पहले हाथ-पाँव जरूर पीट लो, लेकिन हो जानेके बाद—**देवो यदेव कुरुते तदेव मंगलाय।** हो गया भाई! अब तो सपना हो गया, बीत गया। अब क्या! ठीक ईश्वरकी इच्छाके अनुसार काम करनेवाला कौन? बोले—कि मुक्त पुरुष। और ये जो वासना—वासित अज्ञानी जीव हैं, वे अपनी वासनाकी पूर्तिके लिए छटपटाते हैं, हाथ-पाँव पीटते हैं, और दु:ख-भाजन बनते हैं।

श्रीरामानुजाचार्यजी महाराजने दूसरा अर्थ इस प्रसंगमें किया—**तद्धाम परमं मम—बोले—अत्र प्रकाशवाची धाम शब्द:।** यहाँ धाम शब्दका अर्थ है प्रकाश। और

प्रकाशं च ज्ञानमभिप्रेतं—और प्रकाश माने ज्ञान। प्रकृतिसे संसृष्ट परिच्छिन्न ज्ञानरूप जो जीव है, उसकी अपेक्षा अपरिच्छिन्न ज्ञानरूप उक्त स्वरूप जो है जीव; जीवका जो मुक्त स्वरूप है, वह मेरा परम धाम है। माने उसमें मैं बिलकुल प्रकट होकर रहता हूँ। मेरा निवास-स्थान तो परम धाम है। परम धाम माने परम निवास स्थान है।

श्रीमध्वाचार्यजी महाराज कहते हैं—कि धाम माने तेजस्वरूप।

हमारे एक मित्र टीकाकार हैं। वे कहते हैं कि जैसे भागवतमें '**धाम्ना स्वेन सदा निरस्तं कुहकं सत्यं परं धीमहि**'—**स्वेन धाम्ना, स्वस्वरूपेण** उसका अर्थ है, इसी प्रकार 'तद्धाम परमं मम' का अर्थ है—मेरा वह स्वरूप है। '**यं प्राप्य न निवर्तन्ते तत् मम परमं धाम**'—वह मेरा परम धाम है।

अब यह प्रश्न हुआ—कि एक आप और एक आपका धाम। बोले—कि ऐसा नहीं; संस्कृत भाषामें यह बन्धन नहीं है। 'अहं धाम' कहनेके स्थान पर 'मम धामः' भी संस्कृत भाषामें बोलते हैं। कैसे बोल सकते हैं? ऐसे बोल सकते हैं, जैसे '**राहुः शिरः**'—राहुका सिर। इसको विकल्प बोलते हैं। **पुरुषस्य चैतन्यम्**—पुरुषकी चेतनता। **ब्राह्मणकुमारस्य शरीरम्**। अब ब्राह्मणकुमार और शरीर, पुरुष और चैतन्य, राहु और सिर—ये जैसे अलग-अलग नहीं होते वैसे यहाँ तो 'मम' बोल रहा है, वह परमात्मा श्रीकृष्ण और उसका धाम—ये दोनों जुदा नहीं हैं, एक ही हैं। शास्त्रोंका यह अर्थ तो आपको सुनाया ही था कि यह अक्षर ब्रह्म जो है—यह धाम है, और मैं श्रीकृष्ण धामी हूँ। पुरुषोतम। उसी पुरुषोत्तमके लिए अगले श्लोकमें यह बात कही जा रही है—

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥ २२॥

'हे पार्थ!' भगवान्को भी रिश्तेदार अच्छे लगते होंगे—ऐसा लगता है। देखो, जो हमारे बड़े लोग होते हैं न, उनको भी अपने सम्बन्धी बहुत अच्छे लगते हैं। जो ऊँची कुर्सीपर लोग बैठते हैं, तो उनको कभी-कभी भाई-भतीजे-जमाई-बहनोई—का पक्षपात करना पड़ता है न, ममताभूलक पक्षपात! एक तो होता है योग्यतामूलक पक्षपात और एक होता है ममतामूलक पक्षपात। जब भगवान् कौन्तेय बोलते हैं, पार्थ बोलते हैं—ममतामूलक पक्षपात प्रतीत होता है। मेरी बुआका लड़का और, मेरी बुआका लड़का नहीं—मेरा बहनाई! ऐसा भी तो है न। सुभद्राका विवाह तो अर्जुनसे ही हुआ है न। देखो, तभी तो घुल-घुलकर इतनी बातें कर रहे हैं, जिससे उसका भला होवे।

पर पार्थ शब्दका एक अर्थ और भी है। जिसकी बुद्धि बड़ी विशाल हो, उसको पार्थ बोलते हैं। **प्रथना पृथा**—विशाल बुद्धिका नाम पृथा है; प्रथना-जो प्रथित होवे, विश्वविख्यात होवे। और यह तद्वान् है, इसलिए इसको पार्थ बोलते हैं, हे विशाल बुद्धिसे युक्त पार्थ! केवल रिश्तेदार होनेसे हम तुम्हारा पक्षपात नहीं करते; तुम्हारी बुद्धि बड़ी विशाल है।

देखो, **पाः पातीति पा, पः परमेश्वरः। स एव अर्थः प्रयोजनं यस्य स पार्थः।** प माने-परमेश्वर ही है जिसके जीवनका अर्थ, समग्र अर्थ—पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। अर्जुन, तेरा धर्म कौन है? कि कृष्ण। कृष्ण कहदे, तो गोवध करनेमें, ब्राह्मण-वध करनेमें भी हमको आपत्ति नहीं है। हमारा धर्म तो कृष्ण! कि तेरा धन कौन है? कि कृष्ण। तेरा वर कौन है? कि कृष्ण। तेरा काम क्या है? कि कृष्ण। तेरा मोक्ष क्या है? कि कृष्ण! मुझे नारायणी सेना नहीं चाहिए एक अक्षौहिणी, मुझे तो कृष्ण चाहिए।

पातीति पः—जो सबकी रक्षा करे; पति बोलो, पिता बोलो—दोनों चलता है। पति है—तो कृष्ण, पिता है—तो कृष्ण, हमारा रक्षक—सर्वस्व है, तो कृष्ण—बस, वही पार्थ; परमेश्वरार्थ।

स परः पुरुषः—अब वह जो है, वह परम पुरुष है। देखो, यहाँ बड़ा विलक्षण अभिप्राय निकालते हैं। क्या? कोई—कोई तो कहते हैं, कि जिस अक्षर ब्रह्मका वर्णन किया न, **अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तः तमाहुः परमां गतिम्।** अथवा जिस भावका वर्णन किया—

यं प्राप्यं न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

उसीका नाम यहाँ स पुरुषः है—वह पुरुष। यह पुरुष क्या है? पुर माने होता है शरीर—**पुरं शरीरं। तस्मिन् शेते वसति इति पुरुषः**—जो इस शरीरमें शयन करे—रहे, उसका नाम पुरुष। **नव द्वारं पुरं पुण्यं एतैर्भावसमन्वितम्।** बताया महाभारतमें, कि नव द्वारं पुरं पुण्यं—यह नौ दरवाजे वाला जो पुर-नगर है, यह बड़ा पवित्र है।

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्।

इसमें जो रहे, सो पुरुष।

और दूसरा अर्थ इसका कहते हैं, कि **पुराति अस्ते। पुराति असति। पुराति अस्तीति पुरुषः**—ऐसी व्युत्पत्ति निकालते हैं। अस् धातुसे यह बना—जो पहले भी था, यह शास्त्रमें इसकी व्युत्पत्ति दी हुई है। **पूर्वमेवं इहासं इति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्**—पहले भी यह शरीरधारी था, अब भी शरीरधारी है, आगे भी शरीरधारी

रहेगा। जबतक यह अपने आपको अशरीर ब्रह्मके रूपमें नहीं जान लेगा, तबतक इसका नाम पुरुष और शरीरधारी रहेगा, वह पुरुष **पुरीषु उत्कर्षशालीषु सत्त्वेषु सीदति इति पुरुष। पुरुः भुवनानि समार समये अस्यति इति पुरुषः। पूर्वत्वात् पुरुषः। पूर्णात् पुरुषः। साधनात् पुरुषः।**

निरुक्तमें पुरुष शब्दकी बड़ी-बड़ी व्युत्पत्ति रखी हैं। वैयाकरण लोग जो हैं, **ये पुर अत्रे गमने** धातुसे पुषं प्रत्यय करके उणादिमें, तब पुरुष बनाते हैं।

यह पुरुष कौन है? बोले—एक पुरुष है, एक पर-पुरुष। अब यह पर-पुरुषवाली चर्चा बड़ी विचित्र है—**पुरुषः सः परः पार्थ।** भागवतमें पर-पुरुषका वर्णन आवे, कई लोग महाराज, चिढ़ जावें—कि राम-राम, यह क्या पर-पुरुषका वर्णन है। अब गीतामें पर-पुरुषका वर्णन है, तो इसका क्या करोगे? अरे, गीतामें जो गति है इसकी, वही भागवतमें है। लेकिन जो लोग भागवतपर श्रद्धा नहीं रखते, उनको बुरा लगता है। असलमें पर-पुरुषका अर्थ क्या है? हमको भ्रम हो गया है न! क्या भ्रम हो गया है? कि हमारी आँख-रूप स्त्रीका प्यारा कौन है? आप बताओ। बोले—जो खूब सुन्दर हो, वह आँख-रूप स्त्रीका प्यारा, और पति; उसीको देखकर हमारी आँखें जीती हैं, उसीको देखकर खिलती हैं, उसीको देखकर उल्लसित होती हैं। ये जो हमारे नेत्र हैं; एक इन्द्रियका नाम लेकर हम बताते हैं—ऐसे कान, ऐसे नाक, ऐसे जीभ—तो इन्होंने क्या किया? अपना ब्याहता किनको माना? अपना ब्याहता इन्होंने माना विषयोंको। इन्द्रिय विषयके साथ संयोग करती है और उसका अपना पुरुष, अपना पति मानती है। तब शास्त्रने कहा—कि अच्छा भाई, रहने दो अपने ब्याहतोंको तुम दुनियामें! एक पर-पुरुषको ही तुम स्वीकार करो। पर-पुरुष क्या है? कि जो विषयोंसे परे है, जो इन्द्रियोंसे परे है। यह बोलनेका ढंग है; इसीको काव्यमें बनाते हैं न!

देखो, एक गोपी है। कहते हैं, कि गोपीका विवाह किसी सायण—मायणसे, किसी सैना-मैना-रैना नामके आदमीसे हुआ है, किसी ग्वालेसे हुआ है। पर यह भ्रम है। क्यों भ्रम है? हमारे भी भ्रम है क्या? कि हमारी आँखोंका प्यारा यह रूप है—यह हम सब लोगोंका भ्रम है। जीभका प्यारा भोजन है, नामका प्यारा गन्ध है, कानका प्यारा शब्द है—यह भ्रम है, बिलकुल भ्रम है। क्योंकि देखो, कानको शब्द सुनकर उसका मजा जो उसको मिलता है न, रस; वह किसको देता है? कान शब्दको रस देता है, कि कानवाले पुरुषको रस देता है? आँखको जब रूप देखकर मजा आता है, तो वह मजा आँख विषयको देती है, कि भीतर जो छिपा बैठा है—उसको देती

है? नेत्रोंके विषयके सम्बन्धसे जो रसकी उत्पत्ति होती है, वह हमारी इन्द्रियाँ विषयोंको अर्पित नहीं करतीं, वह आनन्द स्वयं नहीं भोगतीं; वह तो भीतर बैठे हुए अन्तरात्माको ही लाकर दे देती हैं! भले चाहे जहाँ-जहाँसे रस इकट्ठा करें। जैसे कोई भीलनी, कोई किरातिनी जंगलमें गयी, यहाँ-वहाँसे शहदका रस इकट्ठा किया, वहाँसे फूल लिया, और वहाँसे बहुत बढ़िया आवाजवाली चिड़िया पकड़ी—और सब लाके शामको अपने पतिके चरणोंमें अर्पित कर दिया; बोले—यह लो शहद, यह लो सुगन्धित फूल, यह लो बढ़िया फल! यह सुगन्धित पुष्प, यह रस, बहुत श्रेष्ठ स्पर्श—ये हमारी इन्द्रियाँ किसको लाकर अर्पित करती हैं? जो यह मालूम पड़ता है, कि हमारी इन्द्रियोंका प्यारा बाहरी विषय है; वह तो हुआ भ्रम। असलमें हमारी इन्द्रियाँ अपने भीतर बैठे हुए आत्मदेवको प्यार करती हैं—यह हुई असलियत।

जो लोग ऐसा मानकर बैठे हुए हैं कि हमारा तो ब्याह हो गया, किससे? बोले—विषयोंके साथ; उनके लिए यह परमात्मा कौन है? यह पर-पुरुष होगया। विषयोंसे परे है, इन्द्रियोंसे परे है, सबके भीतर है; और असली है, परम है वह। सच्चा यही है; और सब झूठा है।

पिपर्तीति परः। पालन पोषण ही देता है। अब यह कहो—कि आँखमें देखनेकी जो ताकत है, वह क्या गुलाबमें-से आती है? बोले—अरे, गुलाबका फूल देखे बिना आँख नहीं रह सकती। हमारी आँख तो गुलाबके फूलके साथ ब्याही गयी। लेकिन आँखको देखनेकी ताकत कौन देता है? गुलाब देता है, कि भीतर बैठा हुआ जो चैतन्य, ज्ञान-स्वरूप आत्मा है, वह देता है? यह पर हुआ। पर माने पिपर्ति, भीतर बैठकर आँखकोदेखनेकी, कानको सुननेकी, नाकको सूँघनेकी, जिह्वाको रस लेनेकी जो शक्ति दे रहा है—यही उसका परत्व है; पालकत्व और पोषकत्व। **प्रि पालन-पूर्णयो**—यही उसको पूर्ण करता है, यही उसका पालन करता है। जो स्त्रीका पालन-पोषण करनेवाला भीतर बैठा हुआ है, वह असली है; वह परम पुरुष है। बोले—तो बाबा! आओ, फिर उसीसे सम्बन्ध जोड़ें, उसीसे मिलें।

आओ, आपको सुनाते हैं—**भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया**। शंकराचार्य भगवान्‌ने अनन्य भक्तिका अर्थ यहाँ दूसरा किया है। असलमें उपलब्धि जो होती है—किसी भी चीजका मिलना—वह तनसे नहीं होता। आदमीको बेहोशकर दिया जाय, और उसके बाद तनसे कोई चीज मिला दी जाय, तो मिलना हुआ? बिना होशके शरीरसे मिलनेका कोई अर्थ है? किसीको करोड़ों रुपया हो, और मालूम न हो—तो उसके पास करोड़ रुपया मिलनेका कोई अर्थ है? उपलब्धि, प्राप्ति, ज्ञान—ये पर्यायवाची

शब्द हैं। संसारमें जितने कर्म हैं, जितनी उपासना है और जितने योगाभ्यास हैं, जितना संग्रह-परिग्रह है-सबका फल है उपलब्धि। उपलब्धि माने मालूम पड़े।

बहुत पुरानी बात है, बीस तीस वर्ष पहले, सन् छब्बीसमें पहले पहल गया था वृन्दावनमें। साधु नहीं था तब। हमारे एक मित्र थे लालबिहारी सिंह—उनके साथ मैं गया था (आज मालूम हुआ, कि वे मर गये।) हम रास्तेमें चल रहे थे, तो एक नन्हा-सा बालक आया। एक भी कपड़ा उसके शरीरपर नहीं; नंगा। अब वह कभी आगे चले, कभी पीछे चले। मैंने पूछा—कौन है भाई? क्या नाम है तुम्हारा? बोला-मेरा नाम साँवरा! ब्रजकी बोली; फिर मुस्कुराकर, हाथ नचाकर बोला—मोरमुकुटवाला। ब्रजभाषामें उसने बताया—कि मेरा नाम तो साँवरा है, पर मेरी मय्या मुझे मोरमुकुटवाला कहकर पुकारती है। अब कभी हँसे, कभी बोले; बिना परिचयके! थोड़ी देर बाद साथ छूट गया। जबतक वह साथ था, तबतक तो मनमें यही था, कि किसी ब्रजवासीका, किसी गाँवका यह बालक होगा। और जब चला गया, तब मनमें आया—कहीं यह सचमुच साँवरा, नन्दनन्दन ही तो नहीं था न। मान लो—सामने आया; लेकिन हमको मालूम नहीं पड़ा। जिन लोगोंको भगवान्‌का दर्शन होता है न, उसमें एक शर्त यह भी है, कि जिस समय दर्शन हो रहा हो, उसी समय मालूम पड़े—कि यह भगवान् है!

घूम रहे थे पैदल, ब्रजभूमिमें। कहीं जगह न मिले ठहरनेकी। जिस गाँवमें जायँ, लोग कहें, कि डाकू है। आजकल हम नहीं ठहरने देते। अंग्रेज सरकारका बोल-बाला था। महाराज, कहीं ठहरनेकी जगह नहीं मिली, तो चलते-चलते कोई अट्ठाईस मील धरती हम लोगोंने पार की। दस-ग्यारह बज गए रातके। राजगीरिसे चले थे सबेरे, और रातके दस बजे हम लोग हरनौत स्टेशनपर पहुँचे, बख्तियारपुरके पास। भूखे-प्यासे बिलकुल! और उस स्टेशन पर तो कोई नहीं, महाराज! कोई दुकान नहीं, कोई मकान नहीं, आदमी नहीं। जो चादर बिछाकर बैठे, तो दो बालक आये—बिलकुल निर्मल, गौर वर्ण, स्वस्थ, स्वच्छ वस्त्र पहने। आकर हमारे चदरेपर पैठ गये; बोले—कि तुमलोग भूखे हो। कुछ खाओगे? यहाँ क्या मिलेगा? बोले—देखो, अभी हम लाते हैं। जाकर खोआ ले आए। हम दोनोंने खोआ खाया। हम लोगोंने पूछा—कहाँ रहते हो? बोले—यहीं रहते हैं। हमने सोचा, यहाँ कोई डाक्टर होंगे या किसी स्टेशन-मास्टरके लड़के होंगे। अब रातको तो सो गये। जब सबेरा हुआ, तब फिर मनमें कृतज्ञताका भाव उदय हुआ—कि जरा पता लगावें, कि वे कौन? तो न वहाँ पुलिस-स्टेशन—कि किसी दारोगाका लड़का हो; न कोई

अस्पताल, न डाक्टर। स्टेशन-मास्टरके कोई बच्चा ही नहीं। कोई पता नहीं लगा। अब बादमें यह ख्याल आया—कि कहीं ये भगवान् ही तो नहीं थे।

देखो, भगवान्का मिलना कब होता है? ऐसे नहीं होता; भगवान्का मिलना तब होता है, जब उनके सामने ही हमको मालूम पड़े—कि ये भगवान् हैं। यदि भाव न हो, तो भगवान् नहीं बने। उपलब्धि नहीं हुई न! मिलन नहीं हुआ। देखो, सारे काम तुमने किये और सुख नहीं मिला। बुरे काम करोगे, तो दु:ख मिलेगा, और अच्छे काम करोगे तो सुख मिलेगा। सुख भी उपलब्धिरूप होता है और दु:ख भी उपलब्धिरूप होता है। ज्ञानसे भिन्न दु:ख नामकी कोई चीज नहीं है। हृदयमें—यह सुख है—ऐसा ज्ञान ही असलमें ज्ञान है। पर यह सुख है—ऐसे ज्ञान नहीं होता। वह वेदान्तकी प्रक्रिया दूसरी है; मैं सुखी हूँ—ऐसा ज्ञान होता है। अब जिसको वह संवित् नहीं होती—कि मैं सुखी हूँ, उसको नोटपर तो सुलाओ और पकवान खूब खिलाओ; और खूब पंखा झलो, खूब संगीत सुनाओ और खूब तारीफ करो। उसके मनमें—मैं सुखी हूँ—यह ज्ञान ही न होवे, तो तुम्हारा कोई उपचार चला? नहीं चला। 'मैं दु:खी हूँ'—यह संवित् जिसके चित्त में बैठ गयी, वह यदि महलमें रहे और सोनेकी सेजपर सोवे, हजारों आदमी हाथ जोड़े उसके सामने खड़े होवें, तब भी उसको कोई सुखी कर सकता है? कानून सुखी कर सकता है? पुलिस-फौजकर सकती है? कुर्सी, रुपये-पैसे सुखी कर सकते हैं? मैं दु:खी हूँ—यह संवित् जिसके दिलमें बैठ गयी, जबतक वह निकलेगी नहीं और—मैं सुखी हूँ—यह संवित् जबतक उदय नहीं होगी, तबतक कोई सुख देनेवाला है? अब यह बात मैंने क्या कही? असलमें चाहे धर्म करो, चाहे योग करो, चाहे उपासना करो—जबतक यह संवित् नहीं होगी न—कि यह परमात्माका दर्शन है, यह परमात्माका साक्षात्कार है—इस संवित्‌के बिना काम नहीं चलेगा। यही जो प्रेमसे युक्त संवित् है न; उल्लसित ज्ञानको भक्ति बोलते हैं। भक्ति माने—नाचता हुआ ज्ञान, और समाधि माने—शान्तज्ञान। ज्ञानकी शान्त अवस्थाका नाम समाधि है और ज्ञानकी फड़कती हुई अवस्थाका नाम, नाचती हुई अवस्थाका नाम भक्ति है। नाचती हुई दशा भी ज्ञानमें विवर्त है और शान्त दशा भी शुद्धज्ञानमें विवर्त है। यह ज्ञानकी महिमा बड़ी विलक्षण है।

अब कल फिर भक्तिकी बात आपको सुनाऊँगा—**भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।** यह भगवान् कैसे मिलता है। कि अनन्य भक्ति से।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

☆

१६

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥ २२॥

हे पार्थ! **स परः पुरुषः तु भक्त्या अनन्या लभ्यः**—हे पार्थ, हे अर्जुन। वह तो परम पुरुष है, भक्तिसे प्राप्त होता है वह। **पुरुषः स परः** का अभिप्राय आपको सुनाया—कि जो सबसे परे है, अव्यक्त है, सबके नाश होनेपर भी जिसका नाश नहीं होता। सबसे परेका अर्थ है—सम्पूर्ण कार्योंका जो कारण है—उस कारणका भी जो अधिष्ठान और प्रकाशक है। यह तो सबसे परे हुआ। वह कारण नहीं है—क्योंकि कारण तो जबतक फूले नहीं, पटके नहीं, अवस्थान्तरको प्राप्त न होवे, तबतक कारण नहीं हो सकता। इसीलिए श्रुतिमें परमात्माको जगत्का कारण तो बताते हैं, परन्तु **स कारणम्** और **कारणाधिपाधिप**—एक ही श्रुतिमें कहते हैं—कि वह जगत्का कारण है और कारणाधिपका भी अधिप है। **न तस्य कार्यं**—परमात्माका कोई कार्य ही नहीं है—और यह भी श्रुति है—न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते। और उसीको श्रुतिमें अव्यक्त अक्षरके नामसे कहा गया है—माने वह प्रमेय रूप भी नहीं है, विनाशी रूप भी नहीं है, कार्यकारण रूपी भी नहीं है। सबके नष्ट हो जानेपर नष्ट नहीं होती, अबाधित है। वही सबके जीवनका परम प्रयोजनीय है, और उसकी प्राप्ति हो जानेपर संसारमें आवागमनके चक्करमें नहीं पड़ना पड़ता—**यं प्राप्य न निवर्तन्ते, पुरुषः स परः पार्थ**। उसीका नाम है परम पुरुष।

आपको कल सुनाया, कि पुरुषको पुरुष इसलिए कहते हैं, कि **स यत् पुर्वस्मात् सर्वस्मात् सर्वां पाप्मना औषत् इति पुरुषः**। शंकराचार्य भगवान् ने विष्णुसहस्र नामके भाष्यमें जब भगवान्के पुरुष नामकी व्याख्या की तो उन्होंने बताया कि वह सबसे पहले मौजूद था। इसलिए भी उसको पुरुष कहते हैं। उसमें कर्म-संस्कारका बिलकुल भी लेप नहीं होता है, इसलिए भी उसको पुरुष कहते हैं। **तत् पुरुषस्य पुरुषत्वं**—यह पुरुषकी पुरुषता है। तो वह परम पुरुष है। अब वह

मिलता कैसे है—यह बात है। आपको यह बात मालूम है कि गीतामें ईश्वरका चाहे कोई भी रूप होवे—साकार रूप होवे कृष्णका, विराट् रूप होवे और परम पुरुष रूप होवे और ब्रह्मरूप होवे प्रत्यक् चैतन्याभिन्न—सबकी उपलब्धिमें भक्तिको साधन मानते हैं। जैसे देखो, ग्यारहवें अध्यायके अन्तमें विराट् रूप देखकर अर्जुन भीत हो गया, चकित हो गया। और फिर मनुष्य शरीर देखा। भगवान्‌को ऐसा देखना कैसे शक्य है—यह अर्जुनके मनमें प्रश्न हुआ। तो वहाँ भगवान्‌ने कहा—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

यह भक्तिका माहात्म्य हुआ न।

अनन्य भक्तिसे मुझे जान भी सकते हो, दर्शन भी कर सकते हो—**ज्ञातुं द्रष्टुं च, तत्त्वेन प्रवेष्टुं च।** अपरोक्ष रूपसे हमको जान सकते हो। **द्रष्टुं**—सगुण साकार रूपसे हमारा दर्शन कर सकते हो और **तत्त्वेन प्रवेष्टुं**—मेरे अन्दर प्रवेश करके बिलकुल अद्वितीय रूपसे अपनेको जान सकते हो। इसमें साधना क्या है? बोले—अनन्या भक्ति, अनन्य भक्ति। बोले—कि अच्छा, भगवान् सुलभ किसके लिए है?

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

भगवान् सुलभ हैं अनन्य—चित्तके लिए।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

उनके लिए भगवान् क्या करते हैं? कि—

योगक्षेमं वहाम्यहम्।

अच्छा, जो प्रेमसे भगवान्‌का भजन करते हैं, उनको भगवान् क्या करते हैं? **भजतां प्रीतिपूर्वकं ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते**—भगवान् बुद्धियोग दे देते हैं। इससे भगवान् के निर्गुण रूपका साक्षात्कार हो जाये। पहले भजन किया, फिर भगवान्‌ने बुद्धियोग दिया, फिर बुद्धियोगसे भगवान् मिले। देखो, ज्ञानका जब नक्शा बताने लगे, तब भगवान्‌ने कहा—

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।

अनन्ययोगेन भक्तिः—ज्ञान क्या है? कि अनन्य योगसे भगवान्‌की भक्ति। जब गुणातीतका निरूपण करने लगे, तब बोले—कि गुणातीत मनुष्य कैसे होवे? कि—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

गुणातीत भी होंगे, तो अनन्य भक्तिसे। सबसे बढ़कर जहाँ निर्गुण ब्रह्मकी बात कही गई है अट्ठारहवें अध्यायमें—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

महावाक्यके अर्थका निरूपण है वहाँ—बिलकुल स्पष्ट रूपसे; पर वहाँ भी **भक्त्या मामभिजानाति**—भक्ति है। गीतामें भक्तिको बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।

अब देखो! भक्ति है उपाय, भक्ति है साधन, और भगवान्‌की उपलब्धि है साध्य। भगवान् की उपलब्धि—अनुभूति, और वह जो भगवान्‌की उपलब्धि है, वह अविद्याको—भगवद् विषयक अविद्याको निवृत्त करती है। भक्तिसे विद्या और विद्यासे अविद्याकी निवृत्ति। तो विद्याकी प्राप्तिमें—माने उपलब्धिकी प्राप्तिमें भक्ति साधन है। **ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।**

भक्त्या मामभिजानाति—भक्तिसे मेरा अभिज्ञान होता है। हमारे जीवनमें, हमारे हृदयमें भक्ति आनी चाहिए।

अब भक्ति कैसी आनी चाहिए? आपको कल सुनाया था—यह जो हमारे हृदयमें ज्ञान होता है; कैसा ज्ञान होता है? कि यह कार्ड है। कार्ड तो हाथमें है और 'कार्ड' शब्द मुखमें है। इस शब्दका यही अर्थ है—इसका ज्ञान कहाँ है? हृदयमें है। कार्ड हाथमें, कार्ड शब्द मुँहमें, और शब्द और अर्थके सम्बन्धका ज्ञान हृदयमें है। ज्ञानका विषय कौन हो रहा है? कि कार्ड हो रहा है। कार्डका विषय कौन है? कि ज्ञान शब्द हो रहा है।

अब आप क्या करें—कि ज्ञानका विषय परमात्मा होवे? आपका जो इष्टदेव है—राम है, कृष्ण है, शिव है, निराकार है, साकार है; निर्गुण है, सगुण है; तो जैसे यह कार्ड शब्द और कार्ड वस्तु—ये दोनों हमारे हृदयमें ज्ञानके विषय हो रहे हैं—इसी प्रकार 'भगवान्'—ऐसा नाम, 'ॐ' ऐसा नाम और ओंकारका अर्थ परमात्मा—ये दोनों हमारे हृदयमें ज्ञानके विषय बने दिखाई पड़ें। दिलमें भगवान् दिखें। कैसा भगवान्? कि जैसा आप जानते हैं—वैसा। जितनी जानकारी है—उतनी। उसमें जानकारी उधार लेकर नहीं, ईश्वरके बारेमें जैसी आपकी जानकारी है—वही ईश्वर आपनी जानकारी के अनुसार हृदयमें दिखाई पड़े! देखो भाई! हृदयमें तो दुश्मन भी कभी-कभी दिखाई पड़ता है। जब किसीसे बहुत दुश्मनी

होती है, तो उसको दुश्मन-ही-दुश्मन दिखाई पड़ता है। दुश्मन हृदयमें दिखे, तब तो भक्ति नहीं होगी। अच्छा, संसारका दोस्त भी दिखे और उसमें ईश्वर-बुद्धि न हो, तो भक्ति नहीं होगी, क्यों? कि ईश्वर-बुद्धि हृदयमें होना मुख्य है। पतिको लेकर ईश्वर-बुद्धि हुई, मूर्तिको लेकर ईश्वर-बुद्धि हुई, पत्थरकी मूर्ति लेकर ईश्वर-बुद्धि हुई, कागजकी तस्वीर लेकर ईश्वर-बुद्धि हुई, खुदा-खुदा बोलकर ईश्वर-बुद्धि हुई, ॐ-ॐ बोलकर ईश्वर-बुद्धि हुई; हृदयमें ईश्वर-बुद्धि होना आवश्यक है। वह किस निमित्तसे हुई—इसकी खोज नहीं है। वह निमित्त तो बाहर रह जाएगा और ईश्वर-बुद्धि भीतर होगी। लेकिन, वह भी जैसे रावण, शिशुपालके हृदयमें होती थी, वैसी नहीं; दुश्मनीसे नहीं, दोस्तीसे ईश्वर-बुद्धि होवे।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।

अनुकूल भावसे भगवान् हृदयमें दीखे! हृदयमें भगवान्का दर्शन होवे और हम उनके अनुकूल होवें; उनकी सेवा करनेके लिए अपनेको छोटा बना करके। नारायण—भक्ति तब होती है, जब अपनेको छोटा बनाते हैं। अब कहो—कि नहीं, हम तो जिसकी सेवा करते हैं, उससे बड़े हैं—तो भक्ति नहीं होगी। भक्त लोग ऐसा कहते हैं—कि ईश्वरके साथ, ईश्वरका ज्ञान—कि यह ईश्वर है; ईश्वरकी स्मृति, ईश्वरकी प्रीति, ईश्वरकी सेवा—सबकुछ भुक्त है। सब मिलाओ एकमें! देखो, क्या बढ़िया भक्ति बनती है। भक्ति नहीं—भात बनेगा बढ़िया। भक्तं बन जायेगा; बिलकुल उज्ज्वल, निर्मल। लाल चावल अच्छा नहीं; सफेद चावलका भात है यह! (लाल चावल तो बीमारोंके लिए है।) उसमें अभिमानकी कणिका न हो बिलकुल! सबसे बढ़िया भात कौन-सा होता है? जैसे हलवा बना देते हैं भातका? वह नहीं; सब चावल अलग-अलग होवें। वह कैसे होता है? या तो बनाते समय थोड़ा घी पड़े, या तो नींबू निचोड़ दें। चावल पकते समय नींबू निचोड़ दें, तो सब चावल अलग-अलग होंगे। उज्जवल हो और परिपक्व हो, उसमें अभिमान की कणिका न हो, और अलग-अलग हो। क्या उज्ज्वल, क्या निर्मल—यह कौन होता है? बोले—भक्त होता है। संस्कृतमें भातको 'भक्तम्' बोलते हैं। तो भक्तम् बनो। भक्तम्की सार्थकता कब है? जब भगवान् उसका भोग लगावें। भगवान् खायें, तब न भक्तकी सार्थकता है! अपने आपको भक्तम् बनाकर, चावल बनाकर—बिलकुल निर्मल, उज्ज्वल, अभिमानके कणसे रहित, मीठा-मीठा; और अपने अलगावको भगवान्का भोग लगा दो। तो **भक्तं अस्य अस्तीति भक्तः। भक्तवत् आचरति।** जो बिलकुल चावलकी तरह बन जाता है उसका नाम भक्त है।

अब देखो—भगवान्‌की भक्ति! भक्ति क्या है? ऐसा कहते हैं—भगवान्‌में प्रेम, और परम प्रेम, इसका नाम भक्ति है। नारदजीने भक्तिका लक्षण किया—**सा तु अस्मिन् परम प्रेमरूपा अमृत स्वरूपा च।** भक्ति कैसी है? कि परमात्मामें परम प्रेम। प्रेम दुनियामें किसीसे नहीं होता। यह तो वहम होता है प्रेमका; अपनेसे प्रेम होता है। और अपने शरीरसे जितना प्रेम होता है, इससे ज्यादा भगवान्‌से प्रेम करना—इसका नाम परम प्रेम है। भक्तिका रूप है—परम प्रेम-रूपा। और भक्तिका स्वरूप क्या है? **अमृत स्वरूपा च।** अमृत जो है रस—यह भक्तिका स्वरूप है। परम प्रेमरूप है और परमामृत भक्तिका स्वरूप है।

अब देखो अपने हृदयमें। वैष्णव लोग कहते हैं—भगवान्‌के प्रति ममताका नाम प्रेम है। गोड़ेश्वर लोग कहते हैं—कि नहीं, ममता, नहीं; अखण्ड ममता, अनन्य ममताका नाम प्रेम है। पहली शर्त प्रेमके साथ नहीं है, कि बाहरी दुनियामें कैसी भी परिस्थिति आ जाय—वह टूटे नहीं, भगवान्‌से जुड़ा रहे! यह प्रेमका स्वरूप है। फिर विश्वास आता है। फिर स्नेह आता है। फिर वह जीवनका प्रणयन करता है—प्रणय आता है। प्रेम, विश्वास, स्नेह, प्रणय; भाव, महाभाव, राग-अनुराग—ये सब प्रेमकी अवस्थाएँ होती हैं। यह भक्ति महारानी जो तरह-तरहकी पोशाक पहनती है न अपने जीवनमें ये सब भक्तिकी पोशाकें हैं।

एक बात आपको यह सुनाते हैं कि जब परमेश्वरका ज्ञान होता है और परमेश्वरके ज्ञानमें शान्त स्थिति होती है—वृत्तिके उदय और अस्तसे विरहित, उसको समाधि बोलते हैं। परमात्मामें वृत्तिकी शान्त स्थिति समाधि है और परमात्मामें वृत्तिकी जो नृत्यन्ति अवस्था है, उल्लसित होता हुआ जो ज्ञान है—कि यह नाक है, और यह आँख, यह होंठ, ये दाँत, ये कपोल—इस तरहसे फिर-फिर-फिर निरंतर, चाहे जैसा इष्टदेव हो—निराकार हो तो निराकार, साकार हो तो साकार—निरंतर इष्टदेव—ईश्वरमें नाचती हुई जो चित्तवृत्ति है—उसका नाम भक्ति है। तो भक्ति और समाधि—ये दोनों अवस्थाएँ किसकी हैं? कि ज्ञानकी। ज्ञान दोनोंमें है—शांतमें भी, और नृत्यत अवस्थामें भी। भक्ति कैसी होनी चाहिए—इसके लिए भगवान् एक खास बात कहते हैं; अनन्या। जब मनुष्य किसी कामनासे भक्ति करता है और वह कामना पूरी नहीं होती, तब उसकी भक्ति डावाँडोल हो जाती है। भक्तिको डावाँडोल करनेवाली चीज क्या है? कामना। **न स कामयमाना निरोधरूपत्वात्।**

नारदजीने जो भक्तिकी व्याख्याकी, तो उन्होंने बताया कि दुनियाकी ओरसे मनको खींचकर एक की ओर लगानेका नाम भक्ति है। हमको यह

चाहिए, हमको यह चाहिए—माँगकी पुञ्जका नाम भक्ति नहीं है। निरोधका नाम भक्ति है। भक्ति माने—हमारी यह माँग, हमारी यह माँग—माँगकी लिस्टका नाम भक्ति नहीं है; निरोधका नाम भक्ति है। अपने मनको दुनियाकी ओरसे हटा करके एक परमेश्वरमें स्थापित करना—**निरोधरूपत्वात्**। फिर बोले—कि महाराज, भक्तिकी व्याख्या करने लगे और निरोध बता दिया। योगी लोग निरोध-निरोध बोलते हैं—चित्त-निरोध, चित्त-निरोध, यह भक्तिमें निरोध कहाँ? नहीं, कहते हैं कि सम्पूर्ण वैदिक और लौकिक कर्मका जो परमेश्वरके लिए विन्यास है, न्यास है, समर्पण है—माने जो कुछ करें—सो; संध्यावन्दन करें, माला फेरें; पूजा करें, दुकान करें, नौकरी करें, आफिसका काम करें तो वह परमेश्वरके प्रति करें—**लोकं वेदं निरोधतु। निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः।** निरोध क्या है? अपने लौकिक और वैदिक व्यापारका भगवान्‌के प्रति न्यास। न्यास शब्दका अर्थ त्याग नहीं है। त्याग वहाँ होता है, जहाँ ईश्वर नहीं होता है। न्यास माने समर्पण ईश्वरको—**यत्करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत्। यत् करिष्यामि भगवन् तत्करोमि त्वदर्पणम्।।** पहलेसे ही यद्‌का करिष्यामि भगवन्, तत्करोमि त्वदर्पणम्। जो करूँगा, सो तुम्हें अर्पण। जो करता हूँ, जो खाता हूँ, जो देता हूँ—सब तुम्हारे लिए। तुम्हारे लिए सोता हूँ, तुम्हारे लिए जागता हूँ, तुम्हारे लिए बैठता हूँ तुम्हारे लिए लघुशंका करने जाता हूँ, तुम्हारे लिए शौच जाता हूँ, तुम्हारे लिए पानी पीता हूँ, तुम्हारे लिए जीता हूँ, तुम्हारे लिए खाता हूँ; सम्पूर्ण वेद व्यापारका परमात्माके लिए होना—इसका नाम न्यास है। और न्यासको ही भक्ति—सिद्धान्तमें निरोध कहते हैं—**तदर्पिताखिला-वारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलता।**

भक्तिमें कामना नहीं है। है कामना, तो अपने सुख-स्वार्थके लिए नहीं है, अपने इष्टदेवके सुख-स्वार्थके लिए है। यह 'भक्ति' शब्द यहाँ आगया, तो थोड़ा उसका व्यास कर दिया, थोड़ा विस्तार कर दिया।

अब अनन्यता क्या है? भक्ति कैसी? तो भक्ति शब्दका अर्थ भक्त लोग करते हैं—**प्रेम लक्षणया भक्त्या।** यह अनन्या शब्दमें-से निकालते हैं—अनन्यया भक्त्या। शंकराचार्य भगवान् भक्तिका अर्थ करते हैं—**ज्ञानलक्षणया अनन्यया आत्मविषयया।**

अनात्म-विषय न हो, आत्म-विषयक होवे। ऐसी हो चित्तकी स्थिति। भक्ति कैसी? भक्ति ऐसी, जो दूसरेकी न होय और जिसमें परमात्माका पूरा ज्ञान होवे।

ऐसी भक्तिसे परम पुरुषका साक्षात्कार होता है। भक्त लोग कहते हैं—कि नहीं, प्रेम लक्षण होवे। अब देखो, अनन्य शब्दपर विचार करो, अपने आप ही बात निकल आवेगी। अनन्य शब्दका अर्थ है—

नास्ति अन्यद् वस्तु यस्यां सा अनन्या।

भक्ति ऐसी हो, जिसमें दूसरी कोई वस्तु ही न हो। माने परमात्माके सिवाय दूसरी कोई वस्तु अपनी प्रीतिका विषय न हो, भक्तिका विषय न हो।

यह दूसरी वस्तु क्या है? अब इसपर जरा विचार करो। यह ज्ञान होता है न ज्ञान, तो इसमें एक दूसरी वस्तु आ जाती है। क्या? इसका ज्ञान हुआ, इसका ज्ञान हुआ! देखो, आयी न दूसरी वस्तु! ज्ञान हुआ? कि हाँ, हुआ। कि किसका हुआ? रुमालका हुआ। अब यह ज्ञानके पेटमें क्या दिख गया? कि रुमाल घुस गया न ज्ञानके पेटमें। तो ज्ञान अनन्य कहाँ रहा? अन्यद् वस्तुरूप जो रुमाल है, उस रुमालको अपने पेटमें लेकर ज्ञान खड़ा हुआ; ज्ञान अनन्य कहाँ हुआ? एक और इसके साथ विपत्ति लगी है; बड़ी भारी विपत्ति है। जहाँ रुमालका ज्ञान होगा; ज्ञानके पेटमें जहाँ रुमाल आवेगा, वहाँ ज्ञानके पेटमें जाननेवाला मैं घुस जावेगा। यह रुमाल मैं जान रहा हूँ। ज्ञान बेचारा मैं और रुमालके बीचमें कट-पिटकर अधूरा-सा हो जायेगा। इधर मैं बैठा, उधर रुमाल बैठा; बीचमें आया ज्ञान! यह क्या ज्ञान रहा। यह तो ज्ञानका उपहास हो गया। इसीसे भागवतमें बताया—कि परमात्माका स्वरूप जो ज्ञान है, वह अद्वय ज्ञान है।

यत्र द्वयं नास्ति तत्। किं तद् द्वयम्? ज्ञातृज्ञेयरूपम्।

यह नन्हा मुन्ना अभिमान जो है न, यह ज्ञातापना; ज्ञातापना जो अहं है और ज्ञेयपना जो रुमाल है—इन दोनोंसे रहित जो ज्ञान है, वह ज्ञान क्या है? कि—

वदन्ति तत्तत्त्वविदः। तत्त्वं यद् ज्ञानमद्वयं ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते।

इस ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे रहित; जहाँ देश-काल वस्तु-रूप ज्ञेय नहीं है और जहाँ चिज्जड़ ग्रन्थि-रूप अहं ज्ञाता इत्याकारक अभिमानवान चेतन नहीं है; चेतन तो है, परन्तु अभिमानवान् नहीं है—ऐसा ज्ञान। इसको क्या बोलेंगे? कि अनन्य बोलेंगे।

अब भक्ति—अनन्य भक्ति कैसी हैं? कि जिसमें भक्त और भगवान्—यह भजनीय है और मैं भक्त हूँ—दोनोंका लोप हो गया, वह अनन्य भक्ति है। इसीको ज्ञान बोलते हैं। इसको सोचनेका ढंग है; गुर है इसको सोचनेका। जब सत्‌को सोचते हैं न, तब सोचते हैं—यह घट जो है, यह कार्य-सत्य है और मृत्तिका

कारण-सत्य है। सत्के दो विवर्त हैं—कार्य और कार्यापेक्ष कारण। ज्ञानके दो विवर्त हैं—ज्ञेय और ज्ञेयापेक्षी ज्ञाता। और आनन्दके दो विवर्त हैं—यह भोग्य है और मैं भोक्ता हूँ। भोक्ता और भोग्य आनन्दके विवर्त हैं, ज्ञाता और ज्ञेय ज्ञानके विवर्त, कारण और कार्य सत्के विवर्त हैं। विवर्त माने विपरीत वर्णन—**विरुद्धं वर्तते, विपरीतं वर्तते**। अधिष्ठानके विपरीत; भोक्ता और भोग्य, ज्ञाता और ज्ञेय, कार्य और कारण—ये अधिष्ठान सत्ताके विपरीत भास रहे हैं।

अब देखो, परमात्माकी प्राप्तिके रास्तेमें चलना हो, तो कैसे चलना? भोक्ता—भोग्यकी शांति होती है वैराग्य-प्रधान ज्ञानसे; ज्ञाता-ज्ञेयकी शांति होती है द्रष्टा-दृश्यके विवेकसे—चित्-प्रधान विवेकसे; और कार्य-कारणकी शांति होती है एक अद्वय सत्में। कार्य-कारण तो कालिक हैं। एक कालमें कार्य हुआ, एक कालमें नहीं था। एक कालमें कारणता आरोपित हुई, एक कालमें नहीं है। कार्य-कारण भाव अबाधित नहीं है, ज्ञाता-ज्ञेय भाव अबाधित नहीं है, भोक्ता—भोग्य भाव अबाधित नहीं है; और सत् चित् आनन्द भाव बाधित है। इसलिए वह परब्रह्म परमात्माका—आत्माका स्वरूप है।

अब देखो, करना क्या है! रास्तेमें चलना भी तो है न! इसीसे वेदान्तको हम सम्प्रदाय मानते हैं और वेदान्तको प्राप्त होनेवाली—साक्षात्कार जिस वस्तुका होता है न—उस वस्तुको सम्प्रदायातीत असाम्प्रदायिक मानते हैं। यह बड़ी विचित्र बात है; जल्दी समझमें नहीं आती। लोग कहेंगे—वेदान्त तो सब सम्प्रदायोंसे परे है। अरे भाई, ब्रह्म सब सम्प्रदायोंसे परे है; उसकी प्राप्तिका जो उपाय है—वेदान्त, वह तो तत् पदार्थ और त्वं पदार्थके अनुसंधानकी जो प्रक्रिया है—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीयका विवेक; अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमयका विवेक, कार्य-कारणका विवेक, द्रष्टा-दृश्यका विवेक, भोक्ता-भोग्यका विवेक—इसी प्रक्रियासे विचार करनेपर ब्रह्मात्मैक्य बोध होता है, यन्त्र-प्रक्रियासे नहीं। यदि कहो—कि हम आँख बन्द करके सोचते हैं, कि सब ब्रह्म है—तो भावाद्वैत हो जायेगा। गणेशाद्वैत, सौराद्वैत, निराकारीश्वराद्वैत—ऐसे ही यह भावाद्वैत है। सम्पूर्ण जगत्के मूलमें एक कारण था; आँख बन्द करके सोचने लगे—भावाद्वैत है। और बोले—नहीं, मशीनसे परीक्षा करें। तब? कि मूलमें एक मसाला है। बोले—यन्त्रसे जो मिला, यह क्या मिला? बोले—जड़ाद्वैत। बुद्धिसे विचार किया, बोले—अरे, कुछ नहीं; यह तो अन्तःकरणके सम्बन्धसे एक चैतन्यका उदय हो गया है। अन्तःकरणरूप दीपकमें घृतवर्तिके संयोगसे जैसे

दीपक प्रज्ज्वलित होता है, चैतन्य ज्योति प्रज्ज्वलित हो गयी है। जहाँ इसका उत्छेद हुआ—वासना-रूप घृतका उच्छेद हो जानेसे यह दीपकलिकाका उच्छेद हो गया। फिर कौन कहेगा—कि यह सत्ता है, कि असत्ता है? भाव है कि अभाव है? वह प्रक्रिया ही दूसरी है—शून्यद्वैत। यदि बुद्धिसे विचार करोगे, तो शून्याद्वैत खतम। उसमें वेदान्त सम्प्रदाय नहीं है। यदि केवल भावना करोगे—तो भावाद्वैत और यन्त्रसे परीक्षा करोगे—तो जड़ाद्वैत। मतलब, आत्मा और ब्रह्म एक है—इसको जाननेकी एक वेदान्त सम्प्रदायकी प्रक्रिया है। यदि यह प्रक्रिया सच्ची होवे, तो द्वैत ही सिद्ध होगा, इसलिए यह तत्त्वज्ञानके पूर्व कल्पित है और तत्त्वज्ञानके अनन्तर बाधित है। इसलिए वेदान्त भी एक सम्प्रदाय है। जो परम सत्य वस्तु है, वहाँ उपनिषद् ऐसे बोलते हैं न—**न तत्र वाग्गच्छति। न मनोगच्छति। न विद्मो न विजानीमहे।**

श्रुति भी बाधित हो जाती है वहाँ। **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा परम्।**

प्रक्रिया क्या है? कि सब आदमियोंके मनमें, प्राणियोंके मनमें आनन्द-प्राप्तिकी इच्छा होती है, इसलिए जहाँ जिससे आनन्द मिले—उससे प्रेम करना और जिससे आनन्द न मिले—उससे वैराग्य करना—यह पहली बात हुई। अच्छा, वैराग्य करते-करते भी जब जड़ रह गया न! वैराग्य तो हो गया; राग-द्वेष छूट गये। अब एक जड़ रहा और एक तुम रहे। तुम जड़ दृश्यके द्रष्टा हो। पहले आनन्दका विवेक करके अपने लक्ष्यका निर्धारण करना और फिर जड़से असंग हो जाना, और फिर यह निश्चय करना—कि जब द्रष्टा देश-काल-वस्तु—तीनोंके सम्पूर्ण कार्य-कारणावस्था—बीजात्मक अवस्थाका साक्षी है, तो देश-काल-वस्तुसे यह परे है। इसलिए अदेश, अकाल और अवस्तु, अद्रव्य होनेके कारण यह स्वयं-प्रकाश अधिष्ठान है। पहले प्रयोजनकी दृष्टिसे आनन्दकी चाह और आनन्देतरसे वैराग्य, फिर द्रष्टा-दृश्यका विवेक, उसके बाद सत्-असत्का निर्णय हुआ; और सारा मसला हल हो गया। और यह भी वेदान्त सम्प्रदायकी बात है; जो कायदेसे नहीं चलेगा, जाग्रत्-सुषुप्तिका विवेक नहीं करेगा, अन्नमय-प्राणमयका विवेक नहीं करेगा, कार्य-कारणका विवेक नहीं करेगा, द्रष्टा—द्रश्यका विवेक नहीं करेगा, पंचीकरण त्रिकका विवेक नहीं करेगा। अकार, उकार, मकार द्वारा प्रतिपाद्य जो वस्तु है—उसका विवेक नहीं करेगा, तो उसको चेतनाद्वैतकी प्राप्ति नहीं होगी, जड़ाद्वैतकी प्राप्ति होगी। तो **भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया**—आभावाद्वैतकी प्राप्ति होगी या शून्याद्वैतकी प्राप्ति होगी, लेकिन

'अहं ब्रह्मास्मि' —यह जो तत्त्वज्ञान है, इसके निरूपणकी यह प्रक्रिया है। अहं अर्थ भोग, तो **भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया**—अनन्य भक्ति!

अब देखो, भक्त लोग 'अनन्य' शब्दका बड़ा विचित्र अर्थ करते हैं। नारदजीसे किसीने पूछा—महाराज! यह अनन्य-अनन्य करते हो—कि भक्तको अनन्य होना चाहिए, भक्ति अनन्य होनी चाहिए—जब दूसरी कोई वस्तु ही नहीं रहेगी, तब कैसे खिलावेंगे? मक्खन लेंगे, तब न कन्हैयाके मुखमें डालेंगे! बोले—कन्हैयाके सिवाय कोई वस्तु ही नहीं, तो कैसे मक्खन खिलावेंगे?

जो मुख नाहिन हुत्यो, कहो किन माखन खायो।

अब देखो! मक्खन भी चाहिए, खिलानेवाला भी चाहिए, मुख भी चाहिए! भक्त लोग हैं न; बड़े आनन्दसे सोचते हैं। तब अन्य तो है वहाँ। मक्खन है—और हम ठाकुरजीको खिलाते हैं, चन्दन है—लगाते हैं, फूल है—माला पहनाते हैं! एक ठाकुरजी हैं, एक फूल है; वह उनको चढ़ाते हैं। सेवा कैसे बनेगी? अनन्यका मतलब अगर यह हो, कि अपने ठाकुरजीके सिवाय दूसरी कोई चीज ही न हो दृष्टिमें—तो सेवा कैसे बनेगी? देखो, सब जगहकी अलग-अलग भूमि होती है न! नारदजीने अनन्यताकी व्याख्याकी

अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता।

अनन्य माने क्या? कि दूसरेका सहारा मत लो। एक घरमें एक पति-पत्नीमें झगड़ा हो गया। पत्नीने कहा—ऐ, तुम हमको डाँटते हो? हमारा एक कालेजमें पढ़ते समयका मित्र है, हम उसके घरमें जाते हैं। लो, एक आश्रम बना हुआ है। अब वह स्त्री अपने पतिकी भक्त हुई? यह अन्याश्रय हो गया। बोले—मित्र तो नहीं है; हमारा बाप बड़ा धनी है। तुम नहीं रोटी दोगे खानेको, तो हम अपने बापके घरमें जाके रहेंगे। अन्याश्रय हुआ न! बोले—नहीं, नहीं! तुम क्या हमको रोटी खिला सकते हो? हम खुद नौकरी करके कमा सकते हैं। हमारे बल-पौरुष नहीं है? यह क्या हुआ? यह भी अन्याश्रय हो गया। बोले—नहीं, हमारे पास रखा हुआ है पहलेसे धन। हम अलगसे, उसीसे गुजर कर लेंगे। हमको तुम्हारी क्या जरूरत है? यह क्या हुआ? कि यह भी अन्याश्रय हो गया। दूसरे मित्रका आश्रय लेना, सहेलीका आश्रय लेना, माँ-बापका आश्रय लेना, अपने बल-पौरुषका आश्रय लेना, अपनी पूँजीका आश्रय लेना—वह भी अन्याश्रय है।

आपने सुना होगा—एक बार गाँधीजी और कस्तूरबा, दोनोंमें मतभेद हो गया। लड़ाई हो गयी। गाँधीजीने हाथ पकड़ा कस्तूरबाका और घरके दरवाजेसे

बाहर कर दिया; बोले—निकल जाओ। अब वे बैठ गयीं चुपचाप। थोड़ी देर बाद फिर गाँधीजी निकले, बोले—गयी नहीं? तो बोलीं—कि तुमको शर्म नहीं आती। तुम तो घरसे चले जाओ, तो जाके किसी मित्रके घर सो जाओगे। तुम्हारी रात बीत जायेगी; तुमको कोई कुछ नहीं कहेगा। मेरे तो यह घर छोड़कर दूसरा कोई घर ही नहीं है। तुम्हारे तो हजार घर। निकलना हो, तो तुम निकलकर चले जाओ। यह तो हमारा घर है, यह छोड़कर हम कैसे जायेंगे? यह छोड़कर हम किसके घर जायेंगे? देखो न! क्या बात कही! ऐसे आता है न!

जो तुम छोड़ो पिया मैं नाहीं छोड़ूँ रे।

तुम मुझे छोड़ दो, तो छोड़ दो, परन्तु मैं तुम्हें छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ?

दूसरेका आश्रय—माने अपने इष्टके अतिरिक्त अपने आपका भी, अपनी पूँजीका भी, अपने बल-पौरुषका भी, अपनी बुद्धिका भी आश्रय नहीं लेना।

बुद्धिर्विकुण्ठिता नाथ समाप्ता मम युक्तयः।
नान्यद् किंचित् विजानामि त्वमेव शरणं मम॥

प्रभु! हमारी बुद्धि तो कुण्ठित हो गयी, और हमारी युक्तियाँ समाप्त हो गयीं। मैं और कुछ नहीं जानता। बस, तुम्हारे सिवाय और किसीका आश्रय नहीं है।

अब कैसे दूजे हाथ बिकाऊँ!
मन मधुकर कीन्हों वा दिन ते, चरन कमल निज ठाउँ।

यह अनन्यताका अर्थ देखो। वेदान्त सिद्धान्तमें अनन्यताका अर्थ है प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्म तत्त्वके सिवाय और कोई भी वस्तु वृत्तिमें न हो। और भक्ति सिद्धान्तके अनुसार उसका अर्थ हुआ—कि अपने परमेश्वरको छोड़कर और दूसरेका आश्रय और दूसरेका बल अपने चित्तमें न हो। तो—

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।

कल हमको किसीने कहा—कि महाराज! वेदान्त सत्संग मण्डलके लोग तो पुराने सत्संगी हैं। उनको तो आप कितनी भी ऊँची बात कहो, तो उनके लिए तो वह कई बारकी सुनी हुई पुरानी होगी। वे तो सब समझते हैं और हम लोग जो नये-नये आते हैं, उनकी समझमें कुछ आवे—ऐसी भी तो बात कहो। कोई पुराने वेदान्त सत्संग मण्डलके जो सदस्य हैं, वे तो समझें, और उनकी उन्नति हो और हम लोग जो नये आये, उनका क्या होगा? हमारी समझमें नहीं आता है, सरल करके बोलो। हमारे कामकी कोई बात सुनाओ। देखो भाई—

पुरुषः स परः पार्थ

उससे प्रेम तुम्हारा? उससे मिलना चाहते हो? कि हाँ, मिलना चाहते हैं। कि मिलेगा। कैसे मिलेगा? कि भक्तिसे। भक्ति क्या है? अनुकूल होकर, अभिमान छोड़कर प्रेम-पूर्वक सेवा करनेका नाम भक्ति है। और यह कैसी होनी चाहिए? कि अनन्य होनी चाहिए।

एक आदमीको बेटा चाहिए था। पति-पत्नी दोनों बेटेके लिए जगह-जगह जाते। मैंने एक महात्मासे कहा—कि ये आपके इतने भक्त हैं, और आपके पास पुत्रकी लालसासे आते हैं; आप आशीर्वाद दे दो इनको! बोले—कि ये इतने महात्माओंके पास जाते हैं कि कोई-न-कोई दे ही देगा। इसमें हमको देनेकी क्या जरूरत है?

अब देखो न। बेटा जैसी चीज, जरा-सी! लेकिन वे महात्मा यह अपेक्षा रखते थे, कि यदि हमसे ही चाहते हों, तो हम आशीर्वाद दें। यह भी पता नहीं, कि उनके आशीर्वादसे होता, कि नहीं होता। लेकिन वे भी अपेक्षा रखते थे कि ये जब हमारे प्रति अनन्य होवें, तब हम इसको आशीर्वाद दें। अब ईश्वरकी भक्ति करने जायँ, उस परम पुरुषको प्राप्त करनेके लिए जायँ और कहें—तुम नहीं, तो वह! बोले—भाई, फिर वही। हम काहेको?

अब वह परमेश्वर कैसा? यह बड़ा विलक्षण वर्णन है—**यस्यान्तःस्थानि भूतानि**—जितनी वस्तुएँ और जितने प्राणी जन्म लेते हैं, उन सबको भूत बोलते हैं—**भवन्ति इति भूतानि**। यह नहीं कि जो पैदा पहले हुए, उनका नाम भूत; जो आज हों, सो नहीं। जो पहले पैदा हुए—उनका भी नाम भूत, जो अब पैदा हो रहे हैं—उनका नाम भी भूत और जो आगे पैदा होंगे—उनका नाम भी भूत। **भवन्ति**—जो 'है' से होनेकी स्थितिमें आता है, उसको भूत बोलते हैं। 'है' और 'होना'—दो चीज होती है न। देखो, चनेका बीज था और तना हो गया। तना था और उसमें चना हो गया। पहलेसे मौजूद चीजको 'है' बोलते हैं और उसमें जो नयी चीज निकलती है, उसको 'होना' बोलते हैं। मुर्गी थी—और अण्डा नहीं था। शंकराचार्य भगवान्‌ने इसका एक जगह उल्लेख किया है। वे बोलते हैं—कि एक सज्जन कहते हैं, कि प्रकृति नित्य है और वही यह पंचभूत और शरीर—ये बच्चे देती रहती हैं; अण्डे देती रहती है। बोले—कि प्रकृति नित्य भी है, और बदलती भी रहती है।

नित्यं च परिणामी च।
प्रदानं इति विप्रतिषिद्धं नित्यं।

प्रकृति नित्य भी है, और परिणामी भी है। यह प्रतिषिद्ध है। प्रकृति नित्य भी होवे, और कार्यके रूपमें परिणत भी होती रहे—यह बात किसी भी प्रकार शक्य नहीं है।

अब देखो, क्या बढ़िया बात बताते हैं—**यस्यान्तःस्थानि भूतानि**—परमेश्वर कौन है? भूत—माने जो हुए, जो हैं, और जो होंगे—ये सब जिसके पेटमें हैं, जिसके अन्तःकरणमें हैं, जिसके संकल्पमें हैं। जैसे, दृष्टान्त देखो—हमारे संकल्पमें सपनेका मीलों लम्बा स्थान, बरसों लम्बा काल, हजारों चीजें; सपनेके सूर्य और चन्द्रमा, सपनेका भारतवर्ष, और सपनेका कुम्भ मेला, और सपनेके साधु—कहाँ होते हैं? **यस्यान्तःस्थानि**—हमारे मनमें फुरते हैं। इसी प्रकार जिसके मनमें हुए, हैं और होंगे जितने भूत—वे सब-के-सब जिसके संकल्पमें फुर रहे हैं स्वप्नवत्—हमारे स्वप्नके समान, और **येन सर्वमिदं ततम्**—और मूल मसालेके रूपमें जिसके सिवाय दूसरी कोई चीज नहीं है; जैसे सूतसे सारा कपड़ा, ताना और बाना दोनों बुना है, इस प्रकार जिससे यह सम्पूर्ण विश्व बना है, इसमें चर और अचर, जड़ और चेतन—जो भी पदार्थ मालूम पड़ते हैं—वे सब-के-सब उसीसे बने हुए हैं।

अब **येन सर्वमिदं ततम्**—यह कृष्णको बहुत प्यारा है। गीतामें यह कई बार है—**यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्**। ऐसे! आत्माके लिए आया है—**येन सर्वमिदं ततम्। ईश्वरके लिए आया है—येन 'सर्वमिदं ततम्', 'त्वया ततं विश्वमनन्तरूपम्'**—अर्जुनने कहा भगवान्‌से और **मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना**। लो, ततम् अर्थात् वह चीज, जिसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है—उसका नाम परम पुरुष है। और वह कैसे मिलेगा? कि अनन्य भक्तिसे।

अब यह प्रसंग फिर कल सुनावेंगे।

✮

१७

यह जो आध्यात्मिक चर्चा है, यह श्रवण मात्रसे ही शान्ति देनेवाली है। जैसे कामिनीकी चर्चा श्रवण मात्रसे ही चितमें क्षोभ देनेवाली है; जैसे धनकी चर्चा श्रवण मात्रसे लोभ देनेवाली है, शत्रुकी चर्चा श्रवण मात्रसे क्रोध देनेवाली है, इसी प्रकार आध्यात्मिक चर्चा श्रवण मात्रसे ही चित्तमें शान्तिका संचार करती है। जो लोग प्रपंचके दावानलसे दग्धान्तःकरण हैं, शोक-संतप्त जिनका मानस है, उनके लिए तो यह अद्वैतामृतवर्षिणी भगवती गीता तत्काल साक्षात् शान्ति देनेवाली है।

आओ, '**पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।**' इसपर आपको एक बात सुनावें। इसमें उपास्य ईश्वरका वर्णन है। ईश्वर तो एक है, पर उसका वर्णन दो ढंगसे किया जाता है। जैसे चीज एक हो और दो कोणसे उसकी फोटो ली जाय। यदि उसके पाँवके पाससे फोटो लेंगे, तो लम्बा दिखेगा, और उसके सिरके पाससे फोटो लें, तो वह छोटा दिखेगा। दाहिनेसे फोटो लें—तो दूसरा, और बायेंसे फोटो लें—तो दूसरा। पहले पट चित्र बनाते थे न! कपड़ेपर तस्वीर बनाते थे; तो उसको पटो पटो बोलते थे। बंगाली लोग इसीको पोटो-पोटो बोलते थे। बंगालमें उसका उच्चारण होगा—फोटो। यह फोटो जो है, पर चित्र जो है—**पटे चित्रमिवार्पिता**; यह प्रपंच कैसा है? कि जैसे कपड़ेपर तस्वीर। परमात्माका वर्णन दो ढंगसे किया जाता है—अव्याकृत, और अननुगत। यह हम वेदान्तमें प्रयुक्त जो शब्द है न, वे बोल रहे हैं। अव्यावृत्त, अननुगत—क्या मतलब हुआ? कि जो किसीसे परे नहीं है, और किसीमें व्याप्त नहीं है—माने जिसके सिवाय दूसरी कोई चीज नहीं है। परे तो वह होगा, जिसके कोई दूसरी चीज होगी। उससे वह परे होगा। व्यापक वह होगा, जिससे भिन्न दूसरी कोई चीज होगी। असली जो परमात्माका स्वरूप है, वह न तो किसीसे परे है, न तो किसीमें व्याप्त है। वह आत्मासे जुदा नहीं है; उससे आत्मा जुदा नहीं है, उससे जगत् जुदा नहीं है। यह नहीं—कि वह जगत्से परे है, कि उसके भीतर जगत् है। ऐसा नहीं—कि वह आत्मासे परे है, कि उसके अंतरंगमें आत्मा है। यह तो वेदान्तकी एक

बहस है; फैसला नहीं है। जैस वकील लोग अपने पक्षमें बहस करते हैं, वैसे—परमात्मा सबमें व्यापक है, परमात्मा सबसे परे है—यह तो एक फैसलेपर पहुँचनेके लिए बहस है। जो जजका निर्णय है, उसमें तो अव्यावृत्त और अननुगत—जो किसीमें व्यापक नहीं है और किसीसे परे नहीं, और जिसमें आत्मा, जगत्, सत्य, ऋत—ये सब शब्द केवल समझानेके लिए होते हैं। उसका नाम ब्रह्म भी नहीं है, उसका नाम आत्मा भी नहीं हैं, उसका नाम सत्य भी नहीं है, उसका नाम तत्त्व भी नहीं है; ऐसी वस्तु! ज्ञानके लिए उसको लखाते हैं। ज्ञानके लिए दूसरे ढंगसे वर्णन करते हैं और ध्यानके लिए दूसरे ढंगसे वर्णन करते हैं। विष्णु पुराणमें यह प्रसंग बिलकुल स्पष्ट है। ज्ञेय परमात्मा और ध्येय परमात्मा—ये दो विभाग करके वर्णन किया हुआ है। यहाँ जिस परमात्माका वर्णन किया हुआ है, वह ध्येय परमात्मा है—

पुरुषः स परःपार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।

देखो, सारी संगति अब बैठ जाएगी श्लोकमें । **पुरुषः स परः पार्थ**—पर माने व्यावृत्त—यह सबसे परे है। बोले—परे भी होवे, और अभेद भी हो—ऐसा कोई दृष्टान्त आपको सुनावें। दस रुपयेसे परे सौ रुपये हैं कि नहीं? लेकिन दस रुपया क्या सौ रुपयेसे जुदा हैं? सौके भीतर दस समाया हुआ है। सौ-में दस भी होता है, परन्तु दसमें सौ नहीं होता। यह जब नाना विकार, संस्कार, आकार और प्रकारसे युक्त प्रपंचका वर्णन करते हैं, तो यह दसके समान है। परमात्मा इससे परे है। परन्तु जैसे दससे सौ पर नहीं; जैसे एक मीलके आकाशमें घरके सौ फुटका जो आकाश है—वह उससे न्यारा नहीं है। सौ फुटसे न्यारा है एक मील, परन्तु एक मीलसे न्यारा सौ फुट नहीं है। एक सेकेण्डसे न्यारा है एक घंटा, परन्तु एक घण्टेसे न्यारा एक सेकेण्ड नहीं है। कालकी महत्तामें छोटा काल जो है, वह व्याप्य होता है और व्यापक काल जो है—वह उससे परे होता है। देशकी महत्तामें छोटा देश, छोटा आकाश व्याप्य होता है, और बड़ा आकाश व्यापक होता है। इसी प्रकार ये जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-रूप समष्टि—समष्टि माने बीज, बीजमें स्थित जो चैतन्य है, वह सबसे परे भी है, और सब उसके पेटमें भी है। लेकिन नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त जिस परब्रह्म परमात्मासे अभेदका प्रतिपादन वेद करते हैं, वह अद्वितीय महावाक्यैक, वेदान्तयैकगम्य जो परमात्मा है—वह न्यारा है। यह उपास्य परमात्माका वर्णन है, क्योंकि जो परमात्माका असली रूप है, उसमें तो लब्ध और लभ्यका भेद भी नहीं है। क्या किसीकी आत्मा अपने लिए लभ्य होती है?

किसीकी आत्मा अपने लिए लभ्य नहीं होती है; वह तो अज्ञात होनेपर ही लभ्य होती है। हमें ईश्वरको पाना है। कब? कि जबतक ईश्वर अज्ञात है। यदि ईश्वर ज्ञात होवे, तो पाना न होवे; वह तो मिला-मिलाया होवे। हाजरा हजूर होवे। न नजदीक न दूर होवे। सर्वत्र भरपूर होवे। ऐसा जो आत्मा है, ब्रह्म है—वह लभ्य नहीं होता। यह जो अनन्या भक्ति है, उस कारणोपाधिक परमेश्वरका चिन्तन और दिलचस्पीसे, प्रेमसे, रुचिसे चिन्तन—इसीसे एहैव चैतन्य कारणोपाधिक जो ईश्वर चैतन्य है, सबसे परे—उसकी प्राप्ति होती है।

यस्तान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।

उसकी पहचान करो, वह ईश्वर कैसा है! उसके भीतर यह सारी दुनिया है और जिसके द्वारा यह सारा प्रपंच-तत्-है। तो महात्मा लोग कहते हैं, कि पहले जो वर्णन किया—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।

मरते समय योगी लोग परमात्माका चिन्तन करके कैसे उसको प्राप्त करते हैं। वह तो मृत्यु कालके चिन्तनीयकी प्रधानतासे वर्णन किया। अब जीवनकालमें उसकी भक्ति कैसे करना उसका वर्णन है। परःका अर्थ बड़ा विलक्षण होता है—**पुरुष स परः पार्थ।**

एक आदमीको पानी चाहिए था और एक आदमीको मोती चाहिए था। मोती चाहिए था जेवर बनाकर गलेमें हार पहननेके लिए और पानी चाहिए था पीनेके लिए। प्यास लगी थी, पीनेके लिए पानी चाहिए था। ज्यादा महत्त्वपूर्ण पीनेके लिए पानी है, कि गलेमें पहननेके लिए हार है? देखो, हार तो शोभाके लिए है और पानी पीनेके लिए—शरीरके लिए है। अब एक आदमी ऐसा है , जिसे न शोभाके लिए कुछ पहननेकी जरूरत है, और न तो प्यास लगी है, और न तो जीनेकी इच्छा है। उसके लिए मोती और पानी—दोनों बराबर! एक सरीखा हो गया न! कारण दृष्टि जब होती है, परमेश्वरपर जब दृष्टि जाती है, तब इस दुनियामें बढ़िया-से-बढ़िया चीज, और घटिया-से-घटिया चीज-दोनों एक सरीखी हो जाती हैं। जिसको प्यास नहीं लगी है, उसके लिए क्या पनालेका गंदा पानी और क्या कुएँका स्वच्छ जल! क्योंकि उसको प्यास ही नहीं है। जिसको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, उसकी स्थिति बड़ी विलक्षण हो जाती है।

अब परः पुरुषः का देखो, क्या अभिप्राय है? कि ये जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं न, ये जिनके एक-एक रोमकूपमें हैं और जब आँख खोलते हैं, तब ये

सब जाहिर हो जाते हैं और आँख बन्द करते हैं, तो ये सब-के-सब लुप्त हो जाते हैं। ये हम लोगोंके पिण्ड जो हैं—स्त्री पिण्ड, पुरुष पिण्ड, पशु पिण्ड, पक्षी पिण्ड—ये सब पिण्ड हैं और इन सबका जो समूह है, वह ब्रह्माण्ड है। और कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिसमें हैं—वह माया है। जो पिण्ड देशका अतिक्रमण करके माया देशमें, और ब्रह्माण्ड देशमें और ब्रह्माण्ड देशका आतिक्रमण करके माया देशमें और फिर मायाको भी छोड़कर उसमें जो विशुद्ध चैतन्य है—भक्तिके द्वारा उस विशुद्ध चैतन्यको प्राप्त किया जाता है। यह देह ब्रह्म है। आप लोग यदि किसी सम्प्रदायके पक्षपाती न होवें, तो हम आपको यह बात सुनाते हैं, कि कबीर स्वामी, रैदास, चरणदास, दादू दयाल, सुन्दरदास, आपा पंथी, राधा स्वामी—ये लोग जो कहते हैं, कि अपनी सुरतको अपने प्यारेके पास ले चलो; ये लोग इसीपर पुरुषके पास अपनी सुरतको ले जाना चाहते हैं। इसको राधास्वामी वाले बोलते हैं—पिण्डदेश, ब्रह्माण्डदेश और दयालदेश। वैष्णव लोग इसको दिव्य देश बोलते हैं। कोई वैकुण्ठ कहता है, कोई साकेत कहता है, कोई गोलोक कहता है, कोई ब्रह्मलोक कहता है। कोई निराकार ईश्वरसे सायुज्य बोलता है—वह पर पुरुष है। उसमें परत्व क्या है? परत्व यह है, कि वह लभ्य है। उसके लिए थोड़े दिनतक अभ्यास करना पड़ेगा। इसके लिए थोड़ी दूर चलना पड़ेगा, उसके लिए सम्पूर्ण वृत्तियोंको समेट कर तदाकार करना पड़ेगा। तब उस ईश्वरकी प्राप्ति होगी।

अद्वैत वेदान्तमें पर शब्दका अर्थ ऐसा नहीं होता, क्योंकि वेदान्तका परम तात्पर्यमें ही है। वहाँ 'परम' शब्दका अर्थ क्या होता है? पर माने अन्तरंग। यह जो तस्वीर दीख रही है, इससे परे कौन है? कि इससे परे घड़ी है; नहीं, इससे परे आँख है—यह वेदान्तका अभिप्राय होगा। और आँखसे परे मन है, मनसे परे बुद्धि है, बुद्धिसे परे कौन है? कि प्रमाता है। परमात्मासे परे कौन है? कि द्रष्टा है। द्रष्टासे परे कौन है? कि द्रष्टा तो देश काल वस्तुका साक्षी है, अधिष्ठान है। वह तो ब्रह्म है। तो

पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः।

आप गीतामें भी पढ़ते हैं न—

इन्द्रियेभ्यः परं मनः मनसस्तु पराः बुद्धिः।
यो बुद्धेः परतस्तु सः। इन्द्रियेभ्यः परतोऽर्थः।
अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु पराः बुद्धिः।
बुद्धेरात्मा महान् परः। महतं परमव्यक्तम्।

अव्यक्तात् पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किंचित्।
सा काष्ठा सा परा गतिः।

तो वेदान्तमें परः शब्दका अर्थ होता है दीखनेवाली चीजकी अपेक्षा, जिसका-जितना आत्म-सान्निध्य होगा—अपने पास लौटेंगे, उतना-उतना परत्व बढ़ता जायेगा। और सबसे परे अपना आत्मा है। और अपना आत्मा तो नित्य प्राप्त है, उसमें अप्राप्तपनेकी भ्रान्ति है। जब उसके स्वरूपका ज्ञान हो जायेगा, तो अप्राप्तिका जो भ्रम है, वह मिट जायेगा।

यह वेदान्तकी बात सुनाई। वेदान्तका परत्व, वेदान्तमें परे जिसको बोलते हैं—वह दूसरी दृष्टि है और भक्ति सिद्धान्तमें जिसको परे बोलते हैं, वह दूसरी दृष्टि है। केवल ज्ञानमात्रसे प्राप्त कौन होता है? कि अपना स्वरूप। अगर दूसरेको पाना हो, तो जान लेनेसे नहीं मिलेगा। जान लिया—कि बहुत भलेमानुस हैं, तो मिल जायेगा? कि नहीं, प्रेम करना पड़ेगा, तब मिलेगा। अपनेको जान लिया कि भलेमानुस हैं, तो क्या बनना पड़ेगा? वह तो बने-बनाये हैं। अब साकार, सगुण दृष्टिसे भी उस श्लोकका अर्थ बताते हैं। अब **यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्**—यह ब्रह्मका लक्षण नहीं है। ब्रह्मका लक्षण होगा, तो यह तटस्थ लक्षण ही होगा, यह स्वरूप लक्षण नहीं होगा। ब्रह्मका लक्षण भी दो तरहसे बताते हैं, एक तटस्थ लक्षण और एक स्वरूप लक्षण। इस जगत्का जन्म जिससे होता है, इस जगत्का पालन जो करता है, यह जगत् जिसमें लीन होता है और जो इस जगत्में भरपूर है—वह क्या हुआ? कि यह जगत्को हाथमें लेकर उसके द्वारा ब्रह्मको लखाया जा रहा है। यह कौन-सा लक्षण हुआ? बोले—यह तटस्थ लक्षण हुआ; यह ब्रह्मका स्वरूप लक्षण नहीं हुआ। बोले—इसे हम बोलते हैं—ब्रह्म सत् है, ब्रह्म चित् है, ब्रह्म आनन्द है। यह तो ब्रह्मका लक्षण हुआ? कि हाँ, हुआ। स्वरूप लक्षण ब्रह्मका हुआ। पर स्वरूप यह भी नहीं है। स्वरूप कैसा है? बोले—**अलक्षणं अचिन्त्यं अव्यपदेश्यम्**—उसमें लक्षण और लक्षणा दोनों नहीं हैं। सत्-चित्-आनन्द, यह स्वरूप नहीं, स्वरूप-लक्षण है; लक्षण होना और लक्ष्य होना! लक्षण-लक्ष्यका भेद है उसमें और यह जो जगत्की उत्पत्ति-स्थिति—प्रलय है, यह तटस्थ लक्षण है। यह तो जैसे किसीको बतावें—कि भाई, उस पुरुषको तुम पहचानते हो? कि हम तो नहीं पहचानते। अरे, वह मेमसाहबको पहचानते हो? कि हाँ, मेमसाहबको तो पहचानते हैं। उन्हींके पति हैं। मेमसाहबके द्वारा पतिको बताया—यह कौन-सा लक्षण हुआ? यह तटस्थ

लक्षण हुआ; यह जहत् लक्षणा हो गयी। कोट कुर्तेके द्वारा पहचान बताना भी तटस्थ लक्षण है। नाक और चमड़ी और फलाना और ढिकाना—ये सब भी वही हैं। यह परमेश्वर कैसा है? बोले—

यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्। जिसके भीतर ये सब-के-सब प्राणी हैं। तो कैसे भीतर हैं? देखो, हम सब लोग कहाँ हैं? मनुष्यके रूपमें, स्त्री पुरुषके रूपमें, धरतीके रूपमें, आकाशमें हैं कि नहीं? आकाशमें हैं। जैसे आकाशके भीतर धरती और पानी है, इसी प्रकार अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड—जो पहले हो चुके, अब हैं और आगे होंगे—ये सब जिसके भीतर हैं—**येन सर्वमिदं ततम्**—वही कपड़ेमें सूतकी तरह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके रूपमें दिखाई पड़ रहा है। बोले—आओ, **पुरुषः स परः।**

श्रीवल्लभसम्प्रदायके आचार्य, श्रीरामानुजाचार्य तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर कारण रूप है। और जैसे सब कार्य-कारणके भीतर होते हैं, वैसे यह सम्पूर्ण प्रपंच परमेश्वरके भीतर है। श्रीवल्लभाचार्यके अनुयायी कहते हैं कि **पुरुषः स परः** का अर्थ है—पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तम माने नन्दनन्दन श्रीकृष्ण गोकुलेश्वर। परः पुरुषः—वह कौन? कि गोकुलेश्वर, वे नन्हें मुन्ने यशोदोत्संगलालित, जसोदा मय्याकी गोदमें जिनका लालन-पालन होता है, वह परपुरुष है। गोपियाँ कहती थीं—कि कृष्ण कौन? कि परपुरुष। पर पुरुष माने समझते ही हैं आप लोग। वह गोकुलेश्वर, वह यशोदोत्संगलालित, वह नन्दनन्दन, वह बाँसुरी वाला—उसका नाम है परपुरुष। वह कैसे मिलता है? कि **अनन्यया भक्त्या लभ्यः।** आज भी वह मिलता है; इसी धरतीपर, इसी जीवनमें मिलता है। यह नहीं समझना कि काल-विशेषमें, द्वापरमें ही वह मिलता है। सबके सब महात्माओंका अनुभव है कि आज भी उसका दर्शन होता है। बोले—भाई, कैसे मिलता है? कि अनन्या भक्त्या उसीसे प्रेम होवे, उसके सिवाय दूसरे किसीसे भक्ति, प्रेम न होवे यह तो यहाँ रोज ऐसा है कि ***'निकले थे हरि भजनको, ओटन लगे कपास'***—क्या साधू और क्या गृहस्थ! निकलते तो हैं घरसे भगवान्‌का भजन करनेके लिए! एकान्तमें बैठते हैं, लेकिन फिर वही संसारका ताना-बाना बुनने लगते हैं। वही काम, उड़ी, लेकिन उसकी नजर मांसपर। ऐसे दुनियादार लोग है; कितने भी ऊँचे उड़ें, वे कहीं न कहीं भोगकी भूमिमें फँस जाते हैं। तब कहते हैं, कि हम भावभेदसे प्रेम करते हैं। एकसे मैंने पूछा—कि तुम्हारा दो-चारसे प्रेम है, कि नहीं है? बोले—हाँ, है। लेकिन एकको बेटा मानकर है, एकको भाई मानकर है, एकको पति मानकर है, एकको माँ—

बाप मानकर है; एकको देवर मानकर है, एकको ससुर मानकर है। प्रेम बेचारा तो—कुछ मानकर करो—वह तो टुकड़े-टुकड़े होकर 'कुछ यहाँ गिरा, कुछ वहाँ गिरा' हो गया न। **भक्त्या लभ्य स्त्वनन्यया** का अर्थ है—जो सबके प्रति कर्तव्य-प्रेम है, वह पतिसे करो। जैसे देवरसे हँसी-विनोद करते हैं—वह पतिसे करो। जैसे सास-ससुरके प्रति श्रद्धा करते हैं—वह पतिसे करो। भाईके प्रति जो कर्तव्य है, जो ममता है—वह भी पतिसे ही करो। अनन्ययाका अर्थ है—दूसरे किसीसे रिश्ता मत जोड़ो। जितने रिश्ते हों—***सब कै ममता ताग बटोरी, मम पद कमल बाँध बटि डोरी।*** सारी ममता भगवान्‌से जोड़ना। बोले—यह सब तो ठीक बन जायेगा, लेकिन यह जो नन्दनन्दन श्यामसुन्दर मुरली-मनोहर हैं, इनके भीतर **यस्यान्तःस्थानि भूतानि**—यह कैसे बनेगा? **येन सर्वमिदं ततम्**—यह कैसे बनेगा? ये परपुरुष बनकर, आये, ये स्वयं परम पुरुष हैं, पुरुषोत्तम हैं; इनके भीतर दुनिया कैसे? बोले—कौशल्याजीसे पूछो, कि तुमने रामजीके मुँहमें क्या देखा था? जसोदा मय्यासे पूछो, कि माटी खानेके बाद तुमने कृष्णके मुँहकी तलाशी ली, तो उसमें क्या दिखाई पड़ा? अर्जुनसे पूछो, कि तुमने विराट् रूपमें क्या देखा? धृतराष्ट्रसे पूछो, कि तुमने विराट् रूपमें क्या देखा?

अब देखो, कि जो लोग साकारके उपासक हैं, उनके लिए इसका अर्थ क्या हुआ? **यस्यान्तःस्थानि भूतानि**—जिसके भीतर, जिसके पेटमें ये सारे प्राणी! अरे बाबा, जब ध्यान करते हैं, न, तो विश्व मर जाता है। कागभुशुण्डि जब रामके पेटमें घुस गये थे, तो उन्होंने क्या देखा? यस्यान्तःस्थानि भूतानि देखा न! यह जो परम पुरुषका लक्षण है, यह राममें है कि नहीं? अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड! यह तो बड़ा भारी बुनकर है।

एकने थीसिस लिखी। अंग्रेजी पढ़ा-लिखा आदमी भला थीसिस लिखेगा? उसने लिखा—मालूम होता है, ये पहलेके जितने वेदान्ती थे, उनमें-से कुछ तो जुलाहे थे, कुछ कुम्हार थे, कुछ सुनार थे, कुछ लोहार थे! ये खास करके चार जातिके लोग वेदान्ती हुए हैं। क्यों? कि जो कुम्हार हुए, घड़ा और मिट्टी—बस, यही उनको सूझता है। जो लोहार थे, उनको औजार और लोहा; जो सुनार थे, उनको जेवर और सोना; जो जुलाहे थे, उनको सूत और कपड़ा! इन लोगोंको और कुछ आता ही नहीं है। यह उन्होंने अनुसंधान किया! आजकल जब कोई नयी बात-उलटी बात खास करके; जैसे पहले कही हुई बात है—अगर उससे उलटी बात कोई ढूँढ़ निकाले—तो बोलते हैं—बड़ी भारी खोज की!

ईश्वरको, ब्रह्मको, परमात्माको जब पहचानना है, तो चाहे उनको नन्हें-मुन्नेके रूपमें देखो—मित्रके रूपमें देखो, और स्वामीके रूपमें देखो और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें व्यापक रूपसे देखो—और कारण रूपसे परम पुरुषको देखो—यह तो देखना ही पड़ेगा, कि सारी सृष्टि उनके भीतर, उनमें-से निकली; उनमें है। क्योंकि राग-द्वेष जो है न, वह सब जगह ईश्वरको देखे बिना मिट नहीं सकता। और यदि राग-द्वेष नहीं मिटेगा, तो चित्तको शान्ति नहीं मिलेगी। शान्ति-पाठ बोलनेसे शान्ति नहीं मिलेगी! बड़े प्रेमसे कथा सुनी; और उसके बाद जब कथा सुनकर उठे, तो भीतर जो कथा सुनते समय अशान्ति बैठी हुई थी न। अब बेचारी कथा कानमें कैसे घुसे? दिलमें तो कथाका जो दुश्मन है न—अशान्ति—वह बैठी हुई है। जो भीतर भरा हुआ होता है आदमीके, वह उगल देता है। कथा बेचारी क्या करे? कहाँ तक घुसे? ***भरी सराय रहीम लखि, आपु पथिक फिरि जाय।*** जब कोई कामोंके रास्ते पथिक आता है, और देखता है, कि इसके घरमें तो बाबा! आग लगी हुई है; तो अब क्या करे? कहाँ जाय?

बिना ईश्वरका ध्यान किये, बिना ईश्वरका ज्ञान प्राप्त किये, बिना ईश्वरकी उपासना किये—जिसमें सब है, उस ईश्वरकी उपासनाके बिना शान्ति नहीं मिलती। अब ईश्वरका रूप चाहे कोई भी हो! हम साकार—निराकारकी बात नहीं करते। जब साकारके पेटमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड देखोगे, तो साकार क्या आँखसे तौलने लायक रह जायेगा? जैस सूतसे कपड़ा बनता है न। यह देखो, पहले स्त्रियाँ पहनती थीं साड़ी। हमने देहातमें देखा था; किनारी जो बनती थी न उनकी—उसपर काले-काले सूतोंको, हरे-हरे सूतोंको या लाल-लाल सूतोंको ऐसे ढंगसे बैठा देते थे बुननेमें—कि उससे हरिण बन गया, घोड़ा बन गया, औरत बन गयी, मर्द बन गया! और वह किनारे किनारे सर्वत्र लगा हुआ है! वह घोड़ा या वह हरिण या वह हाथी या वह औरत या वह मर्द—जो सूतसे ही साड़ीमें बने हुए हैं, वे क्या सूतसे न्यारे हैं? यह जो सूअर बना हुआ है; इसपर हरिण बना हुआ है, इसपर घोड़ा बना हुआ है—इनमें कौन बढ़िया है, कौन घटिया है? सब सूत ही तो है न।

यह जितनी दुनिया दिख रही है—वह सब ईश्वरमें है। यह चाहे साकार उपासना करो, निराकार उपासना करो, और प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मको जानो, तो—सबमें एक तत्त्वको जानना पड़ता है। योगी लोग एक तत्त्वका अभ्यास करते हैं, और भक्त लोग सर्वत्र भगवद्भाव करते हैं। वेदान्ती लोग विवेक करके सर्वत्र अभिन्न-निमित्तोपादान कारणके रूपमें विराजमान जो विवर्ती परब्रह्म है—उसको

देखते हैं। लेकिन कुलका मतलब यह होता है कि जो इस रास्तेमें चलता है, उसको संसारसे राग-द्वेष छोड़ना पड़ता है। अगर राग करोगे तो संसारमें फँसोगे; द्वेष करोगे, तो तुम्हारे दिलमें जलन होगी। अपनी भलाई तुम नहीं चाहते, क्योंकि राग करोगे, तो फँस जाओगे—यह तो अपनी भलाई चाहना नहीं हुआ; और द्वेष करोगे, तो जल मरोगे—यह भी भलाई चाहना नहीं हुआ। अपने हृदयको राग-द्वेषसे मुक्त करके परमात्मामें लगाओ।

महाभारतमें बहुत बढ़िया प्रसंग है, यह भारत—सावित्रीका। माने महाभारतकी सावित्री—माने गायत्री। जैसे वेदोंमें गायत्री है— '**तत्सवितुर्वरेण्यम्**'—ऐसे महाभारतमें गायत्री है। महाभार की गायत्री क्या है? उसमें मूढ़ और पंडितका लक्षण लिखा है—मूर्ख कौन है, और समझदार कौन है! कि—

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढं आविशन्ति न पण्डितम्॥

यह भारतकी गायत्री है। दिन भरमें हजार बार दुःखी होना और हजार बार डर जाना, भय और शोक—यह तो दिन भरमें हजार बार शोक आता है, और हजार बार भय आता है—यह किसको आता है? कि **मूढं आविशन्ति न पंडितम्।** यह शोक और भयने अपने रहनेकी जगह ढूँढी। बोले—हमलोग कहाँ रहें मजेसे? बोले—कोई मूर्ख ढूँढो, कोई बेवकूफ निकले! जैसे गन्दे आदमीपर भूत-प्रेतका आवेश होता है। पवित्रात्मापर भूत-प्रेतका आवेश कभी नहीं होता, वैसे ये शोक और भय ढूँढ ढूँढकर मूर्खोंके शरीरमें प्रवेश करते हैं, और जो समझदार होते हैं, उनके शरीरमें ये प्रवेश करते ही नहीं। हो गया; उसके लिए रोना बेकार! अब तो हो गया! जो मरना था, सो मर गया, और जो आगे मरेगा, उसके लिए अभीसे क्यों दिमाग खराब करना? जब मरेगा, तब मर जायेगा! अरे, इस समय तो अपने चित्तको ऐसे आनन्दसे भरपूर करो, कि परम पुरुषको लालच आजाय। ललचा जाए परमात्मा! बोले—देखो न! इसके दिलमें किसीसे राग नहीं, द्वेष नहीं, शोक नहीं, भय नहीं। कैसा बढ़िया इसका दिल है। परमात्माने कहा—भाई, ऐसी बढ़िया जगह तो कम मिलती है रहनेको। आओ, आज तो यहीं रह जाएगे।

हम लोग कहीं यात्रा करते न! पहले पैदल; पैदल बहुत घूमे हैं। हजारों मील पैदल चले हैं। सोचते थे कि आज इतने मील चलेंगे। लेकिन जब रास्तेमें चलते और कहीं नदियाके किनारे बढ़िया वन मिलता या कुटिया मिलती; भिक्षाकी

सुविधा मालूम पड़ती, तो बोले—भाई, बस! आज तो यहीं रह जाओ। ऐसे यह परमेश्वर सबके दिलको देखता रहता है; लेकिन जिसके दिलको देखकर लुभा जाता है—इसमें राग नहीं, द्वेष नहीं; इसमें शोक नहीं, भय नहीं। उसके दिलमें कहता है कि भाई, अब मिल गयी जगह रहने लायक। हम पहले पहल जब गये थे न, भारतवर्ष घूमनेके लिए; पहले पहल मैंने सन् अड़तीसमें सारे देशकी यात्राकी थी—उस समय साधु नहीं हुए थे उस समय मनमें क्या था कि जो जगह देशमें सबसे अच्छी लगेगी, वहाँ बादमें रहनेकी कोशिश करेंगे। ढूँढते थे। कन्याकुमारी बहुत अच्छी लगी, वृन्दावन बहुत अच्छा लगा, हरिद्वार बहुत अच्छा लगा। तजबीज करते थे। एक बात और बताऊँ—कि जब चलते-चलते किसी बगीचेमें जाते न, तो जो पेड़ सबसे बढ़िया लगता—कि यह पेड़की छाया बहुत बढ़िया, और स्वच्छता इसके नीचे बहुत बढ़िया—तो वहीं बैठनेको मन करता था! परमेश्वर भी देखता रहता है—कि इसका दिल बहुत अच्छा है। इसका दुनियामें किसीके साथ पक्षपात नहीं! फँसाव नहीं है। इसके दिलमें किसीके साथ जलन नहीं है, इसके दिलमें शान्ति है। इसके दिलमें हमारे प्रति प्रेम है। यहाँ कैसे फूल खिल रहे हैं, यहाँ कैसे फल लग रहे हैं; यहाँ कैसी नदी बह रही है, यहाँ कैसा बगीचा है; यह देखकर परमात्मा अपना डेरा डालता है।

पहले यह देखो, कि सर्वत्र परमात्मा परिपूर्ण है, और उसीके भीतरसे ये सब प्राणी हैं। उसको पानेके लिए कोई यज्ञ करनेकी जरूरत नहीं, योग करनेकी जरूरत नहीं। अनन्य प्रेम करते ही वह मिल जाता है और उससे बड़ा और कोई नहीं है।

देखो, कितनी बात इसमें हुई! एक तो—सब उसके भीतर हैं। दूसरे—वही सब है, और वही सबसे बड़ा है। तीन बात तो ईश्वरके बारेमें मालूम हुई। वह मिलता कैसे है? अनन्य प्रेमसे। मरनेके समय **कविं पुराणमनुशासितारं** का चिन्तन किया जाता है और जीवन कालमें इस परम पुरुषसे प्रेम किया जाता है।

बोले—वह तो बताया, लेकिन जिस रास्तेसे योगी लोग ऊपरके लोकोंमें जाते हैं, वह रास्ता नहीं बताया। उस रास्तेकी भी जानकारी होनी चाहिए। आपको यह बात सुनाते हैं कि यह जो रास्ते की जानकारी है, यह चलनेके लिए नहीं है। यह नहीं, कि आपको इस रास्तेसे जाना पड़ेगा। इस रास्तेकी जानकारी हो जानेसे ही मनुष्यको बड़े भारी पुण्यकी प्राप्ति होती है। चलकर पहुँचने वालेको जो चीज मिलती है, वह चीज जाननेवालेको घर बैठे मिल जाती है। वह बात आप देखेंगे—

नैति सृती: पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।

श्रीमद्भागवतमें तो इसका ऐसा बढ़िया वर्णन है; बृहदारण्यकमें इस गतिका वर्णन है, छान्दोग्योपनिषद्में इस गतिका वर्णन है; गीतामें इसका वर्णन है, और पुराणोंमें वर्णन है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

वेदका असली अर्थ समझना हो, तो उसके लिए इतिहास और पुराण-ज्ञान भी आवश्यक होता है। बोले—अब जो योगी लोग हैं उनके आवृत्ति और अनावृत्तिका जो मार्ग है, वह मार्ग हम बताते हैं। वह कौन-सा कालाभिमानी देवता है, जो योगियोंको उठाकर ऐसी जगह पहुँचा देता है जहाँसे लौटना न पड़े! ये दलाल दो तरहके हैं; एक तो ऐसा ब्याह करा देते हैं, कि फिर इसमें तलाक बिलकुल न हो; जन्म-जन्मके लिए मिल जायँ। और एक ऐसे ब्याह करानेवाले होते हैं, कि ब्याह कराया और तलाक हो गया। यह आवृत्ति मार्ग जो है—वह जिसमें तलाक नहीं, जिसमें छूटना नहीं—ऐसा मार्ग है; विवाह-विच्छेद जिसको बोलते हैं न! तो विच्छेद नहीं। अनावृत्तिका मार्ग यह है, कि एक बार चलकर परमात्माके पास पहुँच गये, और फिर वहाँसे लौटकर आये नहीं। नरकका मार्ग दूसरा है, उसमें योगी थोड़े ही जाता है! स्वर्गमें भी योगी नहीं जाता। नरकमें जाता है पापी, और स्वर्गमें जाता है वासनावान्। लेकिन कोई योगी होवे, और सकाम भावसे योग करे, और निष्काम भावसे योग करे? एक आदमी योग करता है—हमको यह चीज मिले। कुछ लेनेके लिए किसीके पास गये और नहीं मिला तो? बोले—बैरंग लौट आए। और कुछ नहीं लेनेके लिए गये तो? कि लौटनेका कोई कारण ही नहीं रहा। तो,

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ॥ २३ ॥

यह पापीकी कथा नहीं और यह पुण्यात्माकी कथा नहीं है। माने कई लोग तो ऐसे हैं—आप देखना विचार करके कि हाय-हाय करते हुए मरते हैं, दुःखी होकर। तो जो मरते समय हाय-हाय करते हुए मरते हैं, उनकी संवित् दुःखाकार हो जाती है। वह दुःखाकार संवित् जबतक टिकी रहती है अंतःकरणमें, तबतक उनको नरकका डर बना रहता है। यह कोई आपको अमनोवैज्ञानिक बात नहीं बता रहा हूँ। मरते समय हाय-हाय करते, हाथ-पाँव पीटते, पापकी तरह छटपटाकर जो मरेगा, दुःखकी दशामें जो मरेगा, वह दुःखकी दशा उसकी बनी रहेगी, वह जल्दी नहीं छूटेगी। वह कैसे छुड़ाई जाएगी? यह गतिका जो रहस्य है, वे बताते हैं। या तो उसकी जो दुःखकी पकड़ है न, वह ढीली पड़ जाये—माने उसमें योग थोड़ा रहा हो और बादमें बन्द हो जाये और या दूसरा आदमी कोई प्रबल संकल्प करे, कि

उसकी यह दशा मिट जाये—जैसी योगी लोग संकल्प करके अपने संकल्पका प्रभाव दूसरेके ऊपर डालते हैं, वैसे कोई पुत्र होवे, कोई स्त्री होवे, कोई माता होवे, कोई पिता होवे, कोई सम्बन्धी होवे—ऐसा संकल्प करे, कि उसको दु:खसे हम छुड़ा लें। वह भी महाराज, केवल संकल्प करनेसे काम नहीं चलेगा। हम पक्के सनातनी हैं- यह बात आप ध्यानमें रखना। हमको बचपनमें एक महात्माने यह बात बैठा दी थी मनमें, कि शास्त्रमें जो बात लिखी है, वह जबतक झूठी मालूम पड़े, तबतक समझना, कि शास्त्रका रहस्य समझमें नहीं आया।

बोले—कि अच्छा, हम सोचते हैं कि वे जो हमारे दु:खी रिश्तेदार मर गए हैं, उनको सुख मिलें। उनको तो सुख मिलता है तब, जब नोटका बण्डल मिलता है और तुमको सुख मिलता है तब, जब पेट भरता हैं और बढ़िया कपड़े मिलते है, तो दूसरेको सुख केवल ख्याली पुलावसे कैसे पहुँचा दोगे? तुम्हारे संकल्पमें बल कहाँसे आवेगा? संकल्पमें बल होना चाहिए। बल तब आता है, जब उसके लिए कुछ दान करते हैं, कुछ तपस्या करते हैं; जब उसके लिए कपड़ा, थोड़ा जेवर, थोड़ा भोजन, थोड़ी वस्तु देकर संकल्प करते हैं—कि उसको इसका फल मिले; उसको इसका सुख मिले। बिना वस्तुके और बिना क्रियाके केवल मन-मनमें सोचनेसे संकल्पमें बल नहीं आता। जब बल नहीं आता, तो मृतात्मा-जो छटपटाता हुआ मरा है—उसकी मन:स्थितिपर, उसके अंत:करणपर अपने संकल्पका फल नहीं होता। इसलिए विधिपूर्वक वेदीपर कुछ बिछाकर शास्त्रोक्त विधिसे जब पिण्डदान करते हैं, तब अपने संकल्पमें बल आता है। गयामें पिण्ड-दान करते हैं, ब्रह्म-कपालीमें पिण्ड-दान करते हैं, ब्राह्मण-भोजन कराते हैं, दान करते हैं—तब संकल्पमें बल आता है।

अब दूसरी बात देखो, इनके लिए श्राद्धकी आवश्यकता हो गयी। मरनेकी बात है न, इसलिए आपको सुनाते हैं। अब एक आदमी जो है, वह मरते समय बेहोश हो गया; उसकी क्या गति होगी? बाहरसे मालूम नहीं पड़ता, वह होशमें है, कि बेहोश है—लेकिन बेहोश हो गया, तो जड़ हो गया। अब उसके अंत:करणकी जड़ अवस्था जबतक बनी रहेगी, तबतक वह जड़से एक रहेगा। उसकी वह जड़ अवस्था भंग करनी चाहिए। कोई ऐसा काम करना चाहिए, जिससे वह जड़ अवस्था भंग हो; तो उसको हाथसे तो जगा नहीं सकते; नाम लेकर , पुकारकर तो उसको जगा नहीं सकते। तब फिर उसको जगानेके लिए संकल्प करना पड़ता है, और संकल्पमें बल जैसे आता है शास्त्रोक्त विधि से, वह पहले बता चुके हैं।

अब कोई होशमें रहते हैं, तो 'मैं पापी हूँ'—यह संवित्, उनको रहती है। 'मैं दु:खी हूँ', यह संवित् दूसरी है और बेहोश हो गये—यह स्थिति दूसरी है। और मरनेके समय जब बंधन ढीले पड़ने लगते हैं—हाय रे! जिनके लिए पाप किया, वे छूट रहे हैं! अरे, वह धन छूट रहा है, वह मकान छूट रहा है, रिश्तेदार छूट रहे हैं—मैं पापी हूँ—इस भावमें जो डूब गये न, उनके लिए क्या करो? कि उनके लिए भगवान्‌का नाम सुनाओ; भागवतका सप्ताह सुनाओ, गरुड़ पुराण सुनाओ। अपने मनमें संकल्प करो, कि इसमें जो बात लिखी हुई है, वह उसको प्राप्त होवे। पापीके लिए दूसरी गति है।

फिर कई लोग नरकको जाते हैं और कई लोग पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं। पुनर्जन्ममें भी कई लोग पशु-पक्षी आदि हो जाते हैं। वैसे तो हमको उड़िया बाबाजी महाराज ने कहा कि अपनी बुद्धि और अपनी युक्ति यह समझने-समझानेमें लगानी चाहिए, कि आत्मा नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त है ब्रह्म है। उसमें लगाना ही ठीक है। अपने लोगोंकी जो पार्टी है—यह जो महात्माओंका, वेदान्तियोंका, ब्रह्मज्ञानियोंका जो खण्ड है, भाग है, विभाग है—यह विभाग ब्राह्मण पुरोहितवाला विभाग नहीं है; यह तो जन्म-मरणकी भ्रान्ति छुड़ानेवाला विभाग है। जहाँ लोग शास्त्रकी बात नहीं समझते हैं न, तो कभी-कभी मनमें ऐसा वेग आता है कि उतनी बढ़िया बात इतने अच्छे ढंगसे शास्त्रमें लिखी हुई है और ये इसको समझते नहीं हैं। यह तो मरणोत्तर आत्मा है, मरनेके बादकी आत्मा है। मुसलमान लोग जो दोजख और बहिश्त मानते हैं—वह क्या है? मरनेके बाद आत्मा ही तो है न! ईसाई लोग स्वर्ग का राज्य मानते हैं, जहाँ जाया जाता है आत्मा, वह आत्मा रहता है, तभी तो जाता है ना। पारसी, सिक्ख, जैन लोग तो कर्मपर बड़ा भारी जोर देनेवाले हैं। कर्म-सिद्धान्तके अनुसार जीव नाना प्रकारकी योनियोंमें जाता है, यह बात बौद्ध भी मानते हैं, और जैन भी मानते हैं। केवल पृथुके पुत्र वेनके जो अनुयायी हैं, उनको छोड़ करके और कोई ऐसा नहीं है सृष्टिमें, जो मरनेके बाद आत्माका अस्तित्व न मानता हो। उसमें आत्माकी कैसे-कैसे गति होती है; वह ऊपर जाता है, ब्रह्मलोकमें कैसे जाता है और वहाँ अमानव पुरुष कैसे उस आत्माको अनावृत्तिमें जहाँसे जन्म नहीं होता है—पहुँचा देता है और कैसे पितृयान मार्गसे जानेवालोंको लौटना पड़ता है। अब इसका विस्तार हम कल सुनावेंगे आपको।

☆

१८

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥ २३॥

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको देवयान और पितृयानका निरूपण करके बता रहे हैं—

हे भरतर्षभ-भरतवंशमें तुम श्रेष्ठ हो; ऋषभ माने श्रेष्ठ पुंगल। भरतवंशमें तुम ऋषभ हो, वृषभ हो, पुंगल हो माने सर्वश्रेष्ठ हो। **पाण्डवानां धनंजय** पांडवोंमें धनंजय, तुम मेरे स्वरूप हो, इसलिए तुमको यह गुह्य बात बताता हूँ, कि मरनेके अनन्तर जाना-आना और जाना ही जाना ये दो गति हैं। यह यान शब्द है न! देवयान, पितृयान्। यान में जो 'य' है न उसको 'ज' बोलो, तो क्या हो ज़ायेगा? जाना ही तो हो जायेगा न। एक में जाना आना दोनों है-पितृयान मार्गमें, और देवयान मार्गमें जाना-ही-जाना है। तो किस प्रकार कालाभिमानी देवता योगियोंको ले जाते हैं—इसका वर्णन करते हैं।

काल माने घंटा, मिनट, रात, दिन—यह काल नहीं है। काल हम उसे सिर्फ भाषामें कहते हैं। जैसे आप कोई शब्द बोलें—मनुष्य। तो 'म' एक कालमें बोला गया, 'नु' दूसरे कालमें बोला गया, और 'ष्य' तीसरे कालमें बोला गया। यह 'म' पहले है, 'नु' बादमें हैं और 'ष्य' उसके बादमें है। यह जो 'मनुष्य' शब्द बोलनेमें आगे-पीछेकी संवित् हुई न! कि यह पहले और यह पीछे, यह क्रमका मालूम पड़ना, कालका मालूम पड़ना है। पहले बाप हुआ, पीछे बेटा हुआ। पहले वह बेटा ही पैदा हुआ था, लेकिन पीछे बाप हो गया। उसका नाम काल हुआ। पहले रात, पीछे दिन, पहले दिन पीछे रात—इसका नाम काल होता है। काल माने क्रम संवित्का हेतु। जो क्रम मालूम पड़ता है, उसके कारणको काल कहते हैं। यह है अखण्ड; यह दिन होवे चाहे रात होवे, घड़ीमें चाहे सेकण्ड चले, चाहे मिनट चले, चाहे घण्टा चले, चाहे न चले—सब घड़ियाँ बन्द हो जाएँ, सूर्य-चन्द्रमा चलना बन्द हो जाएँ और दिन-रातका होना बन्द हो जाये; लेकिन यह काल तो अखण्ड है। अखण्ड रूपसे यह काल ईश्वर है। परन्तु कालकी कल्पना तो व्यवहारको

देखकर की जाती है। इसलिए अधिष्ठान, जो स्वयं-प्रकाश परमात्मा है—ब्रह्म, उसमें यह कल्पित है। ब्रह्ममें काल-कल्पित है और कारण रूपसे यह ईश्वर है, ईश्वर चैतन्य है, और बदलते हुए रूपमें यह प्रकृति है कार्य-काल, कारण-काल—ऐसे इसके विभाग होते हैं। ये जो कालके टुकड़े होते हैं, इसमें एक-एक देवता बैठते हैं। बैठनेवाला जो देवता है, उसको काल-देवता बोलते हैं। जैसे, देखो-पंचभूतके टुकड़े हैं ये सब-पशु भी, पक्षी भी, मनुष्य भी। ये सब वस्तुके टुकड़े हैं न! इन वस्तुओंको टुकड़ेमें एक-एक चैतन्य बैठा हुआ है, उसे जीव बोलते हैं। ऐसे एक-एक मकानके टुकड़ेमें जो बैठता है, उसको वास्तु-देवता बोलते हैं। जो पहाड़में बैठता है उसे पहाड़का देवता बोलते हैं। एक-एक वस्तुमें बैठकर जो चैतन्य उसको अनुग्रहीत कर है, उस अनुग्रहीत करनेवाले चैतन्यको देवता बोलते हैं। देशमें भी होता है, यह प्राची-पूर्वका देवता इन्द्र है, यह प्रतीचिका देवता वरुण है, यह उदीचिका देवता कुबेर है, यह अवाचिका—दक्षिणका देवता यम है—ऐसे। देशमें विभाग करके उसमें जो अनुग्राहक चैतन्य है, उसको देवता मानते हैं और वस्तुओंका विभाग करके उसमें जो अनुग्राहक चैतन्य है, उसे देवता मानते हैं। इसी तरह कालका विभाग करके भी जो उसका अनुग्राहक चैतन्य है, उसको देवता, मानते हैं। दिनका देवता, रातका देवता, कृष्णपक्षका देवता, शुक्ल पक्षका देवता, फिर मासका देवता, ऋतुका देवता, अयनका देवता, फिर संवत्सरका देवता; इस तरहसे जैसे एक-एक शरीरमें अनुग्राहक चैतन्य होता है, उसी प्रकार कालके एक-एक अवयवमें अनुग्राहक चैतन्य होता है। देशके एक-एक अवयवमें अनुग्राहक चैतन्य होता है। एक अखण्ड चैतन्यके बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता-स्फूर्ति नहीं हो सकती। इसको अपरिणामी, एकरस, परिपूर्ण अविनाशी, आत्मचैतन्य बोलते हैं। इसमें तो कालकी दाल नहीं गलती। इसमें तो काल कल्पित है और ईश्वर स्वयं महाकाल बनकर बैठा हुआ है। **कालकालं नमाम्यहं**—वह काल-काल है, महाकाल है।

इसलिए जब कालका वर्णन करते हैं, तब कालयुक्त चैतन्यका ही वर्णन करते हैं। चैतन्यरहित कालका वर्णन नहीं करते हैं, चैतन्य-युक्तकालका वर्णन करते हैं। **कालोपाधिक चैतन्य**—काल-युक्त चैतन्यका वर्णन करते हैं। इसी तरह विभाग करते-करते जो योगियोंकी दो प्रकारकी गति—आवृत्ति और अनावृत्ति होती है, उसमें यह खण्ड-काल जिस प्रकार एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचाता है, जिसमें आवृत्ति माने आना पड़ता है और अनावृत्ति—माने नहीं आना पड़ता है—ये

दोनों बातें होती हैं। जिस कालमें गमन करनेके कारण आवृत्ति और अनावृत्ति—ये दो स्थितियाँ प्राप्त होती है—उसका मैं अब तुमसे वर्णन करूँगा।

मनुष्यको ऐसी स्थिति प्राप्त करनी चाहिए कि हम अपने प्रीतमके घर जब जायेंगे, तब लौटकर नहीं आवेंगे। देखो, जो धर्म—विवाह होता है, उसमें भी यह होता है कि जो लड़की है न, उसका माता-पिताकी सेवा करना—ऐसा कहीं धर्मशास्त्रमें नहीं बताया हुआ है। उनसे सीखे वह कि माँकी सेवा कैसे करना—क्योंकि साससे काम पड़ेगा; ससुरकी सेवा कैसे करना—वह बापसे सीखे; लेकिन माँ-बापकी सेवामें ही वह प्रीति उत्पन्न नहीं करे, क्यों? कि उसको पतिके घर जाना है। वह भाईसे ही इतनी प्रीति न करले कि पतिके घर जानेकी इच्छा ही न हो। स्त्री-धर्ममें यह बात आवेगी न। स्त्रीका धर्म सर्वथा पति-कुलमें वास है और पति-कुलकी सेवा है। इसी तरहसे कोई जीवात्मा है और वह ईश्वरसे प्रेम करता है। यह जो प्रकृतिका राज्य है—यह तो उसका मायका है और ईश्वरका जो राज्य है—वह उसकी ससुराल है। जो ईश्वरका प्रेमी होता है, वह ऐसे बोलता है—**नैहरवा हमका न भावे।**

ये हमारे संतोंके वचन हैं; कबीर साहब बोलते हैं। नैहर माने मायका; माँ-बापका घर। वे कहते हैं—हमको यह संसार अच्छा नहीं लगता। कहा—कि गये कहीं ईश्वरके दरबारमें, तो क्या करोगे?

बोले—

अबकी गवनवा बहुरि नहि अवना।

अबकी अगर मैं वहाँ पहुँच गया, तो फिर लौटकर नहीं आऊँगा। गाँवके लोग जो होते हैं न, वे जैसे बोलते हैं—भाई, बनारसी बोली है—

नैहरवा हमका न भावे।

और

अबकी गवनवा बहुरि न अवना।

मनुष्यको ऐसे ढंगसे चलना चाहिए कि वह उस रास्ते जाये, और उन आदमियोंके साथ जाय, और वहाँ पहुँचे—जहाँसे लौटकर आना नहीं होता। वह हमेशाके लिए अपने इष्टदेवसे मिल जाय; अपने परम प्रियतमके साथ मिल जाय। इसके लिए मार्ग बताते हैं—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लःषण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥ २४॥

यह आपको कल सुनाया था कि जो दुःखी होकर मरेगा—'मैं दुःखी हूँ'—यह भाव उसके मनमें पक्का हो जायेगा। शरीर तो छूट जायेगा, लेकिन 'मैं दुःखी हूँ'—यह भाव नहीं छूटेगा। मरनेके बाद भी उसको यह भाव बना रहेगा। शरीर तो पता नहीं, कब छूट जाय, इसलिए 'मैं दुःखी हूँ'—यह जो ख्याल है अपने मनमें, उसको निकाल देना चाहिए। और जान-बूछकर तो बुलाना ही नहीं। दुःखीपनेकी नकल करना पागलपन है। समझना, कि वह पागल हो गया है, जो दुःखीपनकी नकल करता है।

वैसे मैंने एक अच्छे महात्माको रोते देखा। क्या हुआ, कि उनके लड़केका चार बरसका लड़का मर गया था और हम वहीं थे; उनके घरमें थे। वे तो धाड़ मार-मारकर रोने लगे॥ वह छाती पीटें—हाय-हाय! हम जानते थे, कि वे बहुत अच्छे, समझदार महात्मा हैं। उन्होंने लड़केको खुद गोदमें उठाया—मरनेके बाद; और लेकर गये, जमीन खोदी। हम भी गये थे साथ-साथ। हम तीन ही चार मुर्दनीमें गये हैं—उनके साथ हम भी गये थे। अब मिट्टी खोदी गयी, और लड़केको उन्होंने अपने हाथसे दफनाया; और खूब रोवें। जब दो एक दिनमें स्वस्थ हुए, तब मैंने उनसे पूछा—कि यह क्या? इतना रोना कैसे आया? बोले—कि आपने यह देखा, कि मेरे घरमें और कोई रो रहा था? मैंने कहा—कि न। जिसका बेटा था, वह नहीं रोता था; जो मर गया था, उसकी माँ नहीं रोती थी, घरके कोई लोग नहीं रोते थे। रोते थे, तो वही रोते थे। बोले—कि देखो, हमने तो अपना जंजाल छुड़ाया। अगर मैं न रोता, तो घरके और सब लोग रोते और उनको हमें समझाना पड़ता—कि भाई, रोओ मत, यह मरना तो हमेशा आता ही है। उनको समझाओ, उनको समझाओ—एक-एकको समझाते-समझाते हम परेशान हो जाते। जब मैं रोने लगा, तो हमारे घरके और सब ज्ञानी हो गये और हमको समझाने लगे—कि आप महापुरुष हो, आप रोओगे तो आदर्श बिगड़ जायेगा। आप मत रोओ; यह मरना-जीना तो घरमें लगा ही रहता है।

ऐसे अगर कभी नाटक करना पड़े रोनेका, तो दूसरी बात है, लेकिन 'मैं दुःखी हूँ'—यह अगर दुःखको मैं, मेरा मानकर, दुःखके साथ तादात्म्य करके बैठ जाओगे और कहीं उस हालतमें मौत हो गयी, शरीर तो छूट जायगा यहीं, लेकिन 'मैं दुःखी हूँ'—कि 'मैं दुःखी हूँ'—यह अभिमान शरीर छूटनेसे नहीं छूटेगा। उस भवमें—कि 'मैं दुःखी हूँ' इसमें जितनी गहराई होगी, उतने कालतक नरकका दुःख भोगना पड़ेगा। इसलिए अपने चित्तमें 'मैं दुःखी हूँ'—यह संवित् कभी नहीं बनाना।

अच्छा, अब कहो—भाई, मरते समय बेहोश ही हो गये, तब? कि नहीं, चेतना जागती रहे, तो बहुत बढ़िया। यह दूसरी बात सुनाते हैं। आपको श्लोककी अपेक्षा कामकी बात मैं ज्यादा बता रहा हूँ। यदि बेहोश हो गये और बेहोशीमें शरीरका सम्बन्ध छूट गया, तो? जैसे बिजलीके तार फैले हों घरमें, वैसे नसें—ताँतें फैली हुई हैं शरीरमें; और उनमें जो अन्तःकरणको पकड़े रखनेका—उसके साथ सम्बन्ध, उसकी बिजली ग्रहण करनेका स्थूल सामर्थ्य जबतक बना रहता है, तबतक आदमी जिन्दा रहता है। और स्थूल शरीरके तन्तुओंमें—नस-जालमें, कलेजेमें जब अन्तःकरणके साथ सम्बन्ध रखनेकी शक्ति नहीं रहती, तब मर जाता है आदमी। अन्तःकरण तो ज्यों-का-त्यों है न! बोले—वह भी बेहोश हो गया। बेहोश हो गया, तो जड़ हो गया। तो अब यह शरीर तो छूट गया, परन्तु उसकी बेहोशी कब दूर होगी—इसका कोई गणित नहीं है। कितनी गाढ़ी बेहोशी होगी, कितने दिनतक बेहोश रहना पड़ेगा! पत्थर होकर रहना पड़ेगा, पेड़ होकर रहना पड़ेगा, बेहोश होकर रहना पड़ेगा।

मरते समय 'मैं दुःखी हूँ'—यह भाव बिलकुल न हो। सारे दुःख जीवनमें दूर कर लो, और 'मैं सुखी हूँ'—यह संवित् उत्पन्न करो। सुखी नहीं, सुख—स्वरूप हूँ। और मैं जड़ हूँ, बेहोश हो गया—यह ख्याल छोड़ करके मैं चिन्मात्र हूँ, चेतन हूँ—यह संवित् उत्पन्न करो। यह मौत बहुत डराती है। यह बिलकुल विभीषिका है। हमने मौत देखी है। मौतका आधिदैविक रूप भी मैंने देखा है और आध्यात्मिक रूप भी देखा है और मृत्युका आधिभौतिक रूप भी देखा है। बार-बार मैंने मौतको देखा है। यह आपको मैं घटना बता रहा हूँ—मौतकी घटना। मृत्युको राक्षसीके रूपमें भी देखा है, आँख बन्द करने पर—कि वह हमको मारनेके लिए आ रही है; और प्राणोंके खिंच जानेपर—सम्पूर्ण प्राण जब शरीरसे खिंच करके सिरमें चले गये, तब ऐसा मालूम हुआ—कि अब शरीर छूटा, अब शरीर छूटा। छूट गया शरीरके साथ सम्बन्ध—ऐसा भी देखा है। प्राणोंके उत्क्रमणसे जो मृत्यु होती है, वह भी देखा है और उसकी जो डरावनी सूरत है—वह भी देखी है। और ऐसा जब लोगोंका ख्याल हो गया—कि मर गये—वह भी देखी है। तो आपको मैं सच बताता हूँ, मृत्युमें कोई कष्ट नहीं है। मृत्युमें कष्ट केवल उन्हीं लोगोंको होता है, जो स्थूल देहको 'मैं' मानकर और इसके सम्बन्धियोंको मेरा सम्बन्धी मान करके, और इसकी कमाई हुई मिल्कीयतको अपनी मानकर, यह सोचने लगते हैं—कि हाय रे! हमारा धन छूट जायेगा। हमारे रिश्तेदार छूट जायेंगे। हमारा यह सोनेका-सा शरीर

छूट जायेगा। मृत्युका डर उन्हींको होता है। मृत्युका भय उनके लिए है, जो देहात्म-बुद्धिके पक्के दास हैं। नहीं तो यह तो—

दास कबीर जतनसे ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया।

आत्मा अमृत है। आत्मा दुःखी नहीं है; आत्मा जड़ नहीं है; और आत्मा मृत्यु-ग्रस्त नहीं है—ये तीन बाते हैं। यदि चौथी बात आजाय—कि आत्मा अद्वितीय, अनन्त, ब्रह्म चैतन्य है, तब तो जाने-आनेका झगड़ा ही मिट जाये। लेकिन यह न भी आवे, तब भी—मैं हूँ, मैं जानता हूँ, और मैं सुखी हूँ—ये तीन बातें तो मृत्युके समय जरूर रहनी चाहिए। ये कैसे रहेंगे? दुनियामें किसीके साथ रिश्ता मत जोड़ो। अपनी मौतको मीठी बनाओ, जिससे मृत्युका भी भोग लगवाया जा सके अपने भगवान्‌को। यह देखो, हम मर करके, यह देह छोड़ करके, अब यह पुराना, मैला कपड़ा उतार करके और बिलकुल स्वच्छ निर्मल वस्त्र पहन करके तुम्हारी सेवामें आ रहे हैं—ऐसी मृत्यु होनी चाहिए।

आपको बताया—कि मरते समय अगर यह ख्याल हो—कि मैं दुःखी हूँ, तो वह नरकमें पड़ गया; उलटे, पहले नरकमें पड़ लेता है और तब शरीर छूटता है। यह मृत्युका विज्ञान आपको सुनाता हूँ। पहले अन्तःकरण किसी स्मृतिमें तादात्म्यापन्न होता है—

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाभिनिविष्टते तनाः
दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन् प्रपद्यते तत् किमपि हि यत्स्मृतिः।
यतो यतो धावति दैवचोदितं मनोविकारात्मकमाप्रपंचतु
पुनरेतु मायारचिते तुदेहि तु प्रपद्यमानाः सह तेन जायते॥

पहले मनमें आया—कि मैं तो बड़ा पापी हूँ। तब मरनेका समय आया; यमराजके दूत हमको लेनेके लिए आवेंगे। मरनेके समय क्या मालूम पड़ेगा, कि ये आ गये? और ये काले-काले और लम्बे-लम्बे, हाथमें फंदे लिय हुए; और यह भैंसा! और उसके बाद वह हमारे शरीरमें-से प्राणको, सूक्ष्म शरीरको निकाल रहे हैं। यह देखो, मैं तो उनके हाथमें आगया। जो पापी मनुष्य होगा, वह आँख बंद करके अपने पापोंके स्मरणसे ऐसा सपना देखने लग जायेगा मरनेके समय। वह उस सपनेमें डूब जायेगा और इस शरीरके साथ उसका सम्बन्ध छूट जायेगा। जो अपनेको दुःखी समझता है, पापी समझता है; तो उसकी नरकाकार चित्तवृत्ति हुई और शरीर छूट गया। वह नरकमें उपस्थित है। अपनेको पुण्यात्मा समझता है, अपनेको कर्ता-भोक्ता समझता है—कि हमने तो बड़ा पुण्य किया है, स्वर्गमें जायेंगे

तो अप्सरा मिलेगी—अब वह स्वर्गाकार चित्तवृत्ति हुई और देह छूट गया, तो स्वर्गमें उपस्थित है।

इसके बाद यह प्रश्न आया—कि यदि पुण्यात्मा पुरुष अच्छे समयमें मरे, तब तो उसकी अच्छी गति होवे और बुरे समयमें मरे, तो उसकी बुरी गति होवे। समयकी प्रधानता हो गयी; पुण्यकर्म और पापकर्मकी तो प्रधानता नहीं रही। बोले—एकने बड़े-बड़े पाप किये जिन्दगीमें और मरा उत्तरायणमें, शुक्लपक्षमें और बिलकुल दिनमें—तो क्या उसकी सद्गति हो जायेगी? और एक आदमीने बड़ा पुण्य किया, लेकिन मरा दक्षिणायनमें, कृष्णपक्षमें और रात्रिमें—तो क्या उसकी दुर्गति हो जायेगी? कर्मकी प्रधानता है, कि कालकी प्रधानता है? एकादशीको मरने मात्रसे ही मुक्ति होगी, कि जिन्दगी भरका पुण्यात्मा होगा और एकादशीको मरेगा—तब मुक्त होगा? जो जिन्दगी भरका पुण्यात्मा होगा और उत्तरायणमें मरेगा, वह देवयान मार्गसे जायेगा। जो जिन्दगी भरका पापी होगा और उत्तरायणमें मरेगा—तो वह नरकमें जायेगा। यदि सकाम पुण्यात्मा होगा, तो पितृयान मार्गसे जायेगा, निष्काम पुण्यात्मा होगा तब देवयान मार्गसे जायेगा। लो, अब यह बात जो है—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।

यह ज्योर्तिमय अग्नि है। अग्नि और ज्योति—ये दो देवता नहीं हैं, एक देवता है। श्लोक देखनेमें ये दो मालूम पड़ते हैं, लेकिन ये हैं एक ही। क्यों? कि उपनिषद्में जहाँ इसका वर्णन है—छान्दोग्य उपनिषद्में—

अर्चिषामेवाभि संभवन्ति। अर्चिषोऽहः। अह्न आपूर्यमाणपक्षम्। आपूर्यमाणपक्षाद्याषडुदङ्ङेति मासाँ्स्तान्। मासेभ्यः संवत्सरम्। संवत्सरादादित्यम्। उपनिषद्में इनका ऐसा निरूपण है—कि जो पुण्यात्मा लोग होते हैं, वे ज्योतिर्मय अग्निको प्राप्त होते हैं। फिर उससे दिनको प्राप्त होते हैं, फिर उससे शुक्लपक्षको प्राप्त होते हैं। फिर उससे—आदित्य जिन महीनोंमें उत्तरदिशामें रहते हैं—उनको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार चलते-चलते ये वेद-रहस्यके जानकार जो पुरुष हैं—वे ब्रह्मको प्राप्त हो जाते हैं।

अब यह देखो—ज्योतिर्मय अग्नि। यह ज्योतिर्मय अग्नि क्या है? असलमें मनुष्यके शरीरमें भी वासना और संस्कार लगे रहते हैं। अच्छा, आपने कभी कोई बुरा काम किया हो, जो जरा आँख बन्द करके देखो! याद आजायेगा झट! वह कहाँ छिपा हुआ है? कैसे याद आया? अच्छा, आपने कभी अच्छा काम किया हो

न! खूब सुख मिला हो; और याद करो—कि आपने जिन्दगीमें कोई अच्छा काम किया है? झट याद आजायेगा, कि यह काम हमने बहुत बढ़िया किया है। कहाँ बैठा हुआ है? उसका जो संस्कार है, उसका जो स्मृति है, वह आपके अंत:करणमें बैठी हुई है। ये जो स्मृति संस्कार होते हैं न, ये स्थूल शरीरको भी प्रभावित करते हैं।

देखो, एक पुरुषको कामिनी स्त्रीकी याद आयी और एक कामिनीको पुरुषकी याद आयी। उनके शरीरमें विकार होता है कि नहीं? नींबूकी याद आनेपर जीभपर पानी आता है कि नहीं? दुश्मनकी याद आनेपर भौहें चढ़ जाती हैं कि नहीं? क्रोधके संस्कारसे आरक्त हो जाता है मुखमण्डल और खट्टी-मीठी चीजकी याद आनेपर पानी-पानी हो जाता है। इसका मतलब है, कि भावका प्रभाव अपने शरीरपर पड़ता है। दु:खकी बात याद आती है, तो झट आँखसे पानी निकलने लगता है और अच्छी बातकी याद आती है, तो मुख कैसे खिल जाता है! मुस्कुराहट आजाती है! आप सच समझो; ये जो पापी लोग मरें और उनको धरतीमें गाड़ दें—तो उस धरतीमें जो घास उगेगी न, उस घासमें भी उसकी बुराई आवेगी। यदि उनके मुर्देको पशु खावेंगे, तो उन पशुओंमें भी उनकी जो बुराई आवेगी। अपने जीवनमें दु:खको और बुराईको स्थान देना अपनी अगली पीढ़ीको दु:ख और बुराईके लिए स्थान बनाना है। अगली पीढ़ी भी बुरी हो जायेगी। इसलिए अपनेको ठीक रखना, कि तुम जैसे हुए—खैर! जो किया सो किया। अब आगे जो दुनिया तुम्हारे साथ सम्बन्ध रखे, वह तो अच्छी रहे। आगसे जलाना जो है—वह श्रेष्ठ है। धरतीपर ऊपर फेंक देंगे तो उसको पशु-पक्षी खायेंगे; धरतीमें गाड़ देंगे, तो कीड़े पड़ जायेंगे और पानीमें बहा देंगे—तो कछुए खा जायेंगे या सड़ जायेगा। आगमें जला दिया, तो उसके संस्कार भी जला दिए। संस्कार, जो स्थूल शरीरपर पड़े हैं—वे जलेंगे; जो सूक्ष्म शरीरमें पड़े हैं—वे तो नहीं जलेंगे।

अब क्या हुआ—कि चाहे पापी हो, चाहे पुण्यात्मा—मरते तो दोनों हैं। पापियोंकी जो गति है, वह नरक है—

तद्य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्तेकपूयां योनिमापद्यरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा। छान्दोग्योपनिषद्में यह प्रसंग आया है। यह नहीं समझना कि उपनिषदोंमें यही लिखा है—कि तुम ब्रह्म हो। आत्मा ब्रह्म है—इतनी बात उपनिषद्में नहीं लिखी है; उपनिषदोंमें बहुत सारी बातें लिखी हैं। ब्रह्मविद्या यदि मिल जाये, तो उन सारी बातोंसे छुटकारा मिल जाता है और

ब्रह्मविद्या प्राप्त न हो, तो उन बातोंसे छुटकारा नहीं मिलता है। नहीं तो वेदान्त निरर्थक हो जायेगा।

अब आओ, देखो! तो जिसने बुरा काम किया, वह तो नरकमें गया। और जिसको अपने पापीपनेकी हिंसक वासना है—कि खूब मांस खायें—तो जाओ गीध, चील बनो। कि अपने दुश्मनको दबोच लें—तो जाओ, शेर बनो। दूसरेको दुःख पहुँचावें—तो साँप बनो। ये सब बने कैसे? आप कभी इसपर विचार करना। इसका दूसरा कोई जवाब नहीं है कि मसाला सबका पाँच भूत अथवा मसाला सबके परमाणु अथवा सबकी प्रकृति अथवा मसाला जो है—वह ब्रह्म! और उसमें इतने किस्मके लोग कैसे बन गये? यदि वासनाके भेदसे आकार-प्रकारका भेद स्वीकार करो, तब तो इसकी संगति बैठती है, नहीं तो दूसरी कोई संगति इसकी बैठती नहीं है। जिसकी जैसी वासना—उसको वैसा शरीर मिला, वैसी जाति मिली और वैसा भोग मिला और वैसी आयु मिली। नहीं तो एक ही मिट्टीसे हँड़िया बनी बड़ी और सकोरा बना छोटा। कैसे बना? कि यह कुम्हारके संकल्पसे बना। अगर कुम्हार संकल्प करके जानबूझकर छोटा-बड़ा न बनाता, तो कैसे बनता? जब चैतन्यसे मिश्रित मूल धातु है, उस मूल धातुमें संकल्पकी प्रधानतासे आकारकी सृष्टि होती है, प्रकारकी सृष्टि होती है, विकारकी सृष्टि होती है। बोले—ईश्वरने बना दिया—किसीको गरीब, किसीको धनी क्यों बना दिया? किसीको सुखी, किसीको दुःखी क्यों? कि वह भी वासनाके अनुसार ही बनाता है। इसलिए जीवनमें **तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमाद्येरन्**—छान्दोग्योपनिषद्में यह प्रसंग आया है। जो अच्छे काम करेगा, जीवनमें उसको अच्छी जाति मिलेगी, अच्छी आयु मिलेगी और अच्छा भोग मिलेगा। और जो बुरे काम करेगा, उसको बुरी योनि मिलेगी, बुरी आयु मिलेगी और बुरे भोग मिलेंगे।

अब वे कालाभिमानी देवताकी बात कहते हैं। पापी-पुण्यात्माकी बात यहाँ नहीं है। अब जो प्रसंग हम यहाँ वर्णन कर रहे हैं—पापीके लिए देवयान मार्ग नहीं है और पापीके लिए पितृयान मार्ग नहीं है; ये दोनों मार्ग तो पुण्यात्माके लिए हैं। इस रास्तेपर वे ही चल सकते हैं—जो सत्कर्म करें, जिनके हृदयमें श्रद्धा हो, जिनके हृदयमें विश्वास हो, जिनके जीवनमें सदाचार हो। अब सकाम और निष्कामका भेद हो जाता है। जब पापी आदमी दिनमें मरा, तो दिनकी गति कुण्ठित हो जाती है—दिन माने दिनका अभिमानी देवता। वह

लेकर उसको बैठ जाता है। क्या करें, कहाँ जायें—बड़ा बोझ है इसमें। ज्यों रात्रि आवेगी, तो रात्रिके अभिमानी देवताको दे देगा। रात्रिका अभिमानी देवता जो है, वह यदि उत्तरायण शुक्लपक्ष हुआ, तो पन्द्रह दिन अपने पास रखेगा। जब कृष्णपक्ष आवेगा, तब उस देवताको देगा। कृष्णपक्षका देवता यदि उत्तरायण हुआ, तो छह महीना अपने पास रखेगा और फिर दक्षिणायनके देवताको दे देगा। और दक्षिणायन देवता उसको ऐसी गतिमें—चान्द्रमस गतिमें लेकर गये; और फिर धरतीपर बरस गये। उसको नरकमें नहीं जाना पड़ता। वे तो फिर बरस जाते हैं धरतीपर और फिर मनुष्य हो जाते हैं। यदि अच्छा काम करनेवाला मरा; कहीं वह रातमें मरा, तो रातका देवता पुण्यात्माको नहीं छूयेगा; हाथ जोड़कर बैठा रहेगा। जब दिन आवेगा, तो दिनके देवताको देगा। प्रकाश है न वहाँ। पुण्यात्माके जीवनमें प्रकाश है। वह प्रकाशसे मिल सकता है। पापीके जीवनमें अंधकार है; वह अंधकारसे मिल सकता है। सकामके जीवनमें, सवासनके जीवनमें अंधकार है; वह अंधकारके साथ मिल सकता है। क्यों? कि यह जो वासना है न, यह बिना अंधकारके नहीं होती है। जब यह मालूम पड़ेगा कि यह चीज हमारे पास नहीं है, तब उसकी प्राप्ति के लिये वासना होगी। और अभाव कब होगा? जब हम अपने स्वरूपको नहीं जानेंगे। और अपने स्वरूपको क्यों नहीं जानते? कि अज्ञानके कारण। अज्ञानका अंधकार जब होता है, तभी वासना होती है। वासनावान माने अज्ञानान्धकारमें भटका हुआ प्राणी। उसको जाना-आना—**जायस्व म्रियस्व**—गति प्राप्त करनी पड़ती है।

अब निष्काम पुण्यात्मा मरा रातमें, तो रातने दिया दिनको। दिन अगर कृष्णपक्षका हुआ, तो पन्द्रह दिनतक दिन रखेगा, फिर शुक्लपक्ष आनेपर वह उसको दे देगा। शुक्लपक्ष यदि दक्षिणायनका हुआ, तो छह महीने रखकर फिर उत्तरायणको दे देगा। और उत्तरायण उसको सूर्यमार्गसे देवयानमें ले जायेगा। फिर ब्रह्मलोकमें जानेपर उसको एक अमानव पुरुष मिलेगा, और वह अमानव पुरुष उसको मुक्त कर देगा। इस ढंगसे यह बात उपनिषदोंमें कही गयी है।

अब आपको यह बताते हैं, कि भौगोलिक ढंगसे इसका विभाग है। यह बारह घंटेका दिन होता है और बारह घंटेकी रात; चौबीस घंटेमें दोनों होते हैं न! जहाँपर दिन और रात्रिका विभाग है ऐसा, उसको अहर्लोक कहते हैं। उसमें अहर्देव काम करता है। और, और ऊपर उठनेपर अंतरिक्षमें—जहाँ हमारे पन्द्रह दिनके बराबरका एक दिन, और पन्द्रह रात्रिके बराबरकी एक रात्रि होती है—उस

दिनको शुक्लपक्ष और रात्रिको कृष्णपक्ष कहते हैं। वह जो पितरोंके रहनेका स्थान है न, वही कृष्णपक्ष है—जहाँ पन्द्रह दिनका दिन और पन्द्रह दिनके बराबरकी रात होती है। अब उससे भी आगे बढ़ें, तो अंतरिक्षमें क्या होता है—कि छह महीनेके बराबरका दिन और हमारे छह महीनेके बराबरकी एक रात्रि होती है। वह क्या होता है—कि उत्तरायण और दक्षिणायन, वह देवताओंका स्थान होता है। जब अंतरिक्षमें हमारी गति होती है; पृथ्वीसे ऊपर जब उठते हैं, तो एक दिनके दिनका घेरा और फिर पन्द्रह दिनके एक दिनका घेरा और फिर छह महीनेके एक दिनका घेरा—इस प्रकार अंतरिक्षमें यह विभाग होता है। और यह जो सूक्ष्म रेखा—विभाजक रेखा—खिंची हुई है, उसमें एक-एक देवता बैठे हुए हैं—उत्तरायण देवता और शुक्ल देवता, और अहर्देवता ज्योतिर्मय अग्नि देवता। जब निष्काम पुण्यात्मा पुरुषका शरीर छूटता है, तो ज्योतिर्मय अग्नि देवता—उष्णतामें छूटेगा उसका शरीर।

देखो, उष्णताकी पहचान क्या है? मोटी बात है; वैसे मरते समय शरीरकी अवस्था देखकर पहचाना नहीं जा सकता कि इसकी क्या गति होगी; क्योंकि बाहरसे जितना दीखता है, उसके बाद भी भीतर उसकी अवस्थाएँ होती हैं। ऐसा है—कि एक आदमी बाहरसे बड़ा व्याकुल, छटपटा रहा था और मरते-मरते उसका चित्त बदल गया। वह हमें बाहरसे दिखाई नहीं पड़ता।

यह बात देखनेमें आती है कि किसीके प्राण अधोगामी होते हैं और किसीके प्राण उर्ध्वगामी होते हैं—यह बात मरते समय साफ दीखती है। मरते समय किसीका शौच निकल जाता है, किसीका पेशाब निकल जाता है—ऐसा होता है। किसीकी आँख निकल जाती है; किसीका सिर फट जाता है; किसीका मुँह खुल जाता है। मैंने और तो किसीको मरते समय बहुत पाससे नहीं देखा—एक परमहंसजीको देखा था। एक अपने पितामहको देखा था। पिताका तो सुना था; मैं बहुत छोटा था उस समय। मैंने तो नहीं देखा, पर बहुत लोगोंने देखा था। पितामहकी जब मृत्यु हो रही थी, मैं बिलकुल पास—उनके मुँहसे एक-दो फुटकी दूरीपर था। देखा—कि उनका शरीर पेटतक काला पड़ गया और ऊपरका भाग चमकने लगा; झिलमिल-झिलमिल चमक आगयी। फिर गलेतकका काला पड़ गया और मुँह झिलमिल-झिलमिल करने लगा। उसके बाद एक बार यों हुआ—और पितामहका शरीर पूरा हो गया। माने उनके शरीरमें जो ज्योति थी—वह ऊपर हो गयी। ऐसे वे भी जानता हूँ—जो मरने

लगे, तो पेशाब हो गयी, पेशाबके रास्ते प्राण निकल गये ऐसी या टट्टी हो गयी, टट्टीके रास्ते प्राण निकल गये; भी गति होती है।

शरीरके भीतर एक ज्योतिर्मय तत्त्व होता है। यह फोटो-ओटो लेनेकी जो बात है न, वह दूसरी है। अगर आत्माकी फोटो आ जाती न, तब तो ये उसको पकड़ लेते बिलकुल, मशीनसे। पकड़कर उसकी अमृतवटी बनाते या कोई अमृतरस बनाते—और मरते हुए आदमीके मुँहमें एक कौर डाल देते। यह फोटो-ओटो लेनेका जो चक्कर है न, उसमें ज्यादा पड़नेका नहीं है। लेकिन एकज्योतिर्मय ज्योति होती है शरीरमें; वह ज्योतिर्मय अग्निके साथ मिलकर दिक्—जो दिनका देवता है, के प्रकाशके साथ मिलती है, और फिर वह उतने बड़े भूगोलमें व्याप्त होकर, शुक्लपक्षवाले भूगोलसे और ऊपर व्याप्त हो जाती है। बादमें अत्यन्त व्यापक रूप हो जाती है।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।

वेदके रहस्यको जाननेवाले इस रास्ते जाते हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—इस रास्तेको जो जान जाता है न, वह पहले आपको ऐसा अनुभव करे—कि जहाँतक दिन होता है, रात होती है—वहाँतकके देवताके साथ हमारा तादात्म्य है। और उसके बीचमें जो कुछ है—धरती, पशु, पक्षी, मनुष्य, समुद्र—ये सब मैं हूँ। उसके बाद बोले—कि एक पक्षका दिन, और एक पक्षकी रात जहाँतक होती है; अंतरिक्षमें जितनी व्यापकता है—वह मैं हूँ। उसके बाद छह महीनेका दिन और छह महीनेके बराबरकी रात जितने अंतरिक्षमें होती है—वह मैं हूँ। उसके बाद अंतर्यामी परिपूर्ण ईश्वर जितनेमें विद्यमान है, सम्पूर्ण प्रकृति प्राकृत ब्रह्माण्डमें—मैं हूँ। प्रकृति प्राकृत ब्रह्माण्ड कुछ नहीं है—मैं ब्रह्म हूँ। यह क्रम-मुक्तिका ढंग है, सद्योमुक्ति नहीं। सद्योमुक्ति तो तत्त्वमस्यादि महावाक्यसे तत्काल हो जाती है। वह मुक्ति तो मालूम होती है जिन्दगीमें—वह वेदान्तके महावाक्यसे जो मुक्ति होती है—वह तो जीवनकालमें साफ मालूम पड़ती है; कि हमारे बंधन नहीं हैं, मैं नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप हूँ। लेकिन जो लोग मरनेके समय भी मुक्त होते हैं, उनकी भी यह गति हुई।

गति क्या हुई? कि भावसे भावान्तरकी प्राप्ति; अल्प भावसे भूमा भावकी प्राप्ति। पहले ज्योतिर्मय होनेका भाव, ज्योतिर्मय होकर दिनके देवतासे चैतन्य; क्योंकि चैतन्यसे चैतन्य मिलेगा न! चैतन्य जड़से मिलेगा—तब तो गलती हो जायेगी न! इसलिए दिनके देवतासे मिलेगा; शुक्लपक्षके देवतासे मिलेगा; फिर

उत्तरायणके देवतासे मिलेगा। इस तरहसे फिर ब्रह्मके साथ एक होकर अपनेको परिपूर्ण अनुभव करेगा गतिः। गति कैसे हुई? कि एक भावसे दूसरे भावमें जाना—इसीका नाम गति है। चले गये; कि कहाँ चले गये? आजतक तो हमसे दोस्ती करते थे, अब आजसे हमारे दुश्मनसे दोस्ती कर ली। कि घर छोड़कर कहीं गये? कि नहीं, घर छोड़कर कहीं गये नहीं, हमारे पाससे चले गये। कैसे चले गये? कि मैत्रीका जो भाव है, वह शत्रुका भाव हो गया। हमारे पाससे चले गये। कि भाई, आजकल वे हमारे पास नहीं रहते हैं। क्यों? कि उनका भाव दूसरेके पास है। असलमें भावका बदलना ही जाना है और भावका बदलना ही आना है। भावसे भावान्तरकी जो प्राप्ति है न—उसीको गति बोलते हैं। बोले—यह बात कैसे बोलते हो? यह बात आपको ऐसे बोलते हैं—यह जो स्थूल शरीर है न; इसका तो धरतीपर आना-जाना होता है—घोड़ेपर चढ़कर, साईकलपर चढ़कर और मोटरपर चढ़कर, सूक्ष्म शरीर जो है, उसका घोड़ेपर चढ़ आना-जाना नहीं होता। वह कर्मके अनुसार, और प्रज्ञाके अनुसार; विद्याके अनुसार चलता है। विद्या सम्प्रदायसे प्राप्त हुई, प्रतिमा भीतरसे उदय हुई, और कर्म जैसे किये—इन तीनोंसे मिलकर भाव बनता है; वही आकार सूक्ष्म शरीरका हो जाता है। स्थूल शरीर जैसा भी हो, उसकी कोई परवाह नहीं। उसको जाना पड़ता है।

अब देखो! एकाध बात आपको और सुनाता हूँ। यह बात जैसे बृहदारण्यक उपनिषद्में है, वैसे ही याज्ञवल्क्योपनिषद्में भी है।

क्रमादेषां भवन्त्यर्थीः अहः शुक्लं तथोत्तरं अयनं देवलोकं च। सवितारं स वैद्युतम्।

उत्तरायणमें गये, फिर देवलोकमें गये। देवलोकसे फिर सूर्यमें गये। सूर्यसे फिर वैद्युतमें गये। ब्रह्म जो है—वह विद्युत्की तरह वैद्योतमान हो रहा है। यह बात केनोपनिषद्के अन्तमें आयी है। **यदेतद्विद्युतो व्याद्युत।**

वह ब्रह्म विद्योतित हुआ, प्रकाशित हुआ।

अब एक बात यह कहते हैं—कि ठीक है। उपनिषद्में भी ऐसा लिखा है और ब्रह्मसूत्रमें भी इसका विवेचन है—**अर्चिरादिना सत्प्रतीते।**

अर्चिरादि मार्गका जो वर्णन है, उससे उसकी प्रतीति होती है। ये सब-के-सब—दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण—आतिवाहिक होते हैं। आतिवाहिक माने **अतिक्रम्य वहति**; उसको भीतकी, समुद्रकी, धरतीकी रुकावट नहीं है। वह तो सम्पूर्ण भूगोलमें परिपूर्ण है। परन्तु महाभारत पढ़नेसे किसी-किसीको ऐसा प्रतीत

होता है, कि भीष्म पितामहने यह कहा, कि अभी हम दक्षिणायनमें नहीं मरेंगे। जब उत्तरायण आवेगा—तब मरेंगे। जब युधिष्ठिरजीको धर्मोपदेशकर लिया, तो बोले—कि अब युधिष्ठिर, तुम जाओ। अपने घरका काम-धन्धा करो। युधिष्ठिर बोले—कि महाराज, आप शरशय्यापर पड़े हुए हैं और हम जाकर राजपाट सम्भालें—यह कैसे ठीक है ? बोले—कि देखो, अभी हम नहीं मरेंगे। अभी तो दक्षिणायन है। जब उत्तरायण आवेगा, तब हम मरेंगे—क्योंकि योगी लोगोंको उत्तरायण काल बहुत पसंद है। हंस आकाशमें उड़ रहे थे; उन्होंने कहा—देखो, भीष्म इतना धर्मात्मा था और वह दक्षिणायनमें, मार्गशीर्ष मासमें युद्धभूमिमें गिर पड़ा। मर रहा है। यह दक्षिणायनमें क्यों मरा ? इतना पुण्यात्मा, धर्मात्मा, निष्काम होकर यह दक्षिणायनमें क्यों मरा ? भीष्मने सुन लिया और वे बोले—कि अरे ओ हंस ! मैं दक्षिणायनमें नहीं मरूँगा; मैं उत्तरायणमें मरूँगा। ऐसा कह दिया।

ये दोनों कथाएँ महाभारतमें हैं। अब देखो, भीष्म पितामह तो समयका ही विभाग कर रहे हैं—कि मकर संक्रान्तिसे छह महीनेतक उत्तरायण और कर्क संक्रान्तिसे छह महीनेतक दक्षिणायन। मैं दक्षिणायनमें नहीं मरूँगा; उत्तरायणमें मरूँगा। बोले—कि नहीं, वहाँ भाव दूसरा है। सरसरी निगाहसे जो महाभारत पढ़ेगा, उसकी समझमें यह बात नहीं आवेगी। भीष्म पितामहको ब्रह्मचर्यके प्रतापसे और पिताकी सेवा करनेके लिए राज्यका परित्याग कर देनेसे यह वर मिला था, कि वे स्वच्छन्द-मृत्यु हैं। भीष्म पितामहने दो काम किये न; एक तो उन्होंने यह प्रतिज्ञा की—कि हमारे पिता दूसरा ब्याह करलें, अब मैं ब्याह नहीं करूँगा। पिता प्रसन्न हुए; फिर दूसरी संतान नहीं, वंश नहीं—माने राजगद्दीका सारा अधिकार छोड़ दिया। उन्होंने कहा—कि हमारे पिताजी ब्याह करें, तो उससे जो बच्चा होगा, वह राजा होगा। मैं राजा नहीं होऊँगा। देवीने कहा—कि तुम तो राजा नहीं होओगे, लेकिन तुम्हारा जो बेटा होगा, वह कहेगा—कि हमारा हक है। फिर हमारे बेटेसे छिन जायेगा राज्य। उन्होंने कहा—मैं ब्याह ही नहीं करूँगा। ब्रह्मचर्यसे रहूँगा। तुम्हारे ही वंशमें राजगद्दी रहेगी। तब पिताने प्रसन्न होकर उन्हें स्वच्छन्द-मृत्युका वरदान दिया। यह ऐश्वर्य भीष्म पितामहको पिताकी सेवासे और ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञासे प्राप्त हुआ। यदि वे युद्धभूमिमें गिरते ही मर जाते—दो दिन, पाँच दिन, दस दिनके फर्कसे, तो यह बात कैसे जाहिर होती कि पिताकी सेवासे और ब्रह्मयर्चके पालनसे उनको स्वच्छन्द मृत्युकी प्राप्ति हुई है ! अपने उस ऐश्वर्यको प्रकट करनेके लिए लोकमें भीष्म पितामहने अट्ठावन दिनतक अपने शरीरको रोक

लिया। तो उसमें दक्षिणायन कालकी प्रतीक्षा मुख्य नहीं है; अपने ब्रह्मचर्य और पिताकी सेवाका जो प्रभाव है—उसको प्रकट करना मुख्य है। शंकराचार्य भगवान्ने ब्रह्मसूत्रमें इसका उल्लेख किया, कि वह तो लोकाचारका प्रतिपालन और अपने ऐश्वर्यका प्रदर्शन है।

अब देखो! तीसरी बात महाभारतकी सुनाता हूँ। भीष्म पितामहके गिर जानेसे पाँच दिन बाद ही द्रोणाचार्यकी मृत्यु हुई। वे तो बाणसे नहीं मरे न! द्रोणाचार्यको तो किसीने कह दिया, कि '**अश्वत्थामा हतः**'—अश्वत्थामा मर गया; तो उन्होंने अपना धनुष-बाण फेंक दिया। बेटा था न। जब बेटा ही नहीं रहा, तो अब हम रह करके क्या करेंगे! अब क्या लड़ाई करें! आसन बाँधा, सिद्धासन लगाया और अपने प्राणोंको ब्रह्मरन्ध्रमें धारण किया, और क्रम-मुक्तिके मार्गसे ब्रह्मलोकमें चले गये। माघ मासमें ही द्रोणाचार्यकी मृत्यु हो गयी, और उनको ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। उसी महाभारतमें, वहीं यह प्रसंग है। इसका मतलब यह हुआ, कि सद्गतिके लिए उत्तरायण और दक्षिणायन—यह कालका उतना महत्त्व नहीं है। महत्त्व इसमें है, कि मनुष्यकी जो चित्तवृत्ति है न, वह ज्योतिर्मय होवे; वह झिलमिल-झिलमिल, चमचम चमकती हुई होवे। मनुष्यके अन्तःकरणकी जो ज्योतिर्मय स्थिति है, वह अग्नि-रूप है और वह दिनमें एक होकर, फिर शुक्लपक्षसे—देवतासे एक होकर, देवतासे देवता मिलता हुआ अन्तमें शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक और सूर्य और वैद्युत्को प्राप्त होकर, वह अमानव जो पुरुष है—**वेदं ब्रह्म गम्यति**—इसको ब्रह्मका साक्षात्कार करवा देता है। यह उत्तरायणका मार्ग है।

अब दक्षिणायनका जो मार्ग है न, उसपर अब कल सुनावेंगे।

☆

१९

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥ २५॥

कल आपको सुनाया, कि जो निष्काम पुण्यात्मा होते हैं, वे पहले ज्योतिर्मय अग्नि, ग्रहः अभिमानी देवता; शुक्लाभिमानी देवता, फिर उत्तरायणाभिमानी देवता, उसके बाद सोम लोक और फिर सविता वैद्युत् और सविता—इस क्रमसे व्यापक मण्डलके साथ एक होते जाते हैं। ज्योतिर्मय अग्निकी प्रधानतासे इनकी गति होती है। गति होती है प्राणमें; जब जीवात्मा अपनेको प्राणके साथ एक करके रखता है—माने अन्तःकरण सहित आत्मा प्राणके साथ तादात्म्यापन्न रहता है। शरीर जब जलता है, एक तो अग्नि-प्रधान हो जाता है और एक धूम-प्रधान हो जाता है और एक भस्म-प्रधान हो जाता है—ये तीन गति होती हैं। जो तामस हो गया है—तमोगुणी देहाभिमानी, वह तो भस्म-प्रधान; राखमें मानो मिल जाता है। जो रजोगुणी है; कामनाके कारण तो अन्धकार है और प्राणके कारण गति है—वह धुएँके साथ एक होकर ऊपर उठता है। और जो निष्काम होनेके कारण प्रकाश-रूप है, और प्राणाभिमानी होनेके कारण गति है, वह अग्निसे एक हो जाता है। प्राणाभिमानी सात्त्विक, प्राणाभिमानी राजस और प्राणभिमानी तामस—ये तीन गतियाँ मरनेके बाद होती हैं। जो राखसे मिल जायेंगे, वे तो फिर जब वर्षा होगी, जलका मेल होगा या भीतका सम्बन्ध होगा—तो कहीं पेड़-पौधा हो जायेंगे। घास बन गये, तो कहीं बकरीने चर लिया; तो फिर छनाई हुई। अब उसमेंसे कुछ हिस्सा बकरीकी मेंथनी बनकर निकल गया। कुछ उसके खूनमें, पीबमें चला गया। कुछ उसके दूधमें आगया। अब फिर उस दूधको मनुष्यने पिया। गायने चर लिया—तो दूधमें आगया; भैंसने चर लिया—तो दूधमें आगया, या फिर कट-कटाकर घास ही हो गया। फिर माटी हो गया।

सकामता जो है, यह धुआँ है, और प्राणाभिमान ऊर्ध्व गति है और देहाभिमान अधोगति—भस्मगति है। जो निष्कामताके प्रकाशमें देहाभिमानी है, वह ज्वालासे ऊपर जाता है। अब जानेमें जो देश पार करना पड़ता है—स्थान, उसके लिए **अहः शुक्लः षण्मासा**—यह सब कहा है। उधर **रात्रिः कृष्णः दक्षिणायनम्**—यह सब है। समझो, अपने शरीरमें तीन रास्ते हैं—एक बायेंकी ओरसे ऊपर उठना,

एक दाहिनेकी ओरसे ऊपर उठना और एक नीचेकी तरफ जाना। प्राणका जो नीचे होकर जाना है—वह अधोगतिका मार्ग है जो दाहिने होकर जाना है—यह पुनरावृत्तिका मार्ग है; जो बायें होकरके जाना है—इड़ा पिंगला जैसे बोलते हैं न—यह अपुनरावृत्तिका मार्ग है। इसको उत्तर मार्ग समझो। जैसे पूर्वमुख खड़े हो जाओ तो दक्षिणायन होगा दाहिना हाथ और उत्तरायण होगा बायाँ हाथ। हिमालयकी ओर उत्तर हो जायेगा दाहिना हाथ, कन्याकुमारीकी तरफ बायाँ हाथ और सामने सूर्य। सूर्यके अभिमुख खड़े हुए। जो उत्तरमार्गसे जायेगा, उसकी उर्ध्वगति होकर अपुनरावृत्ति हो जायेगी और जो दिक्षण मार्गसे जायेगा, वह धूममार्गसे जाकर फिर लौट आवेगा। जो अधोमार्गसे जायेगा, वह पहले कीट-पतंग आदि **जायस्व म्रियस्व**—सहस्रों योनियोंमें जन्म लेनेके बाद तब उसको फिर मनुष्यकी गति प्राप्त होगी। यह जो देवता हैं न, ये भी प्राणकी प्रधानतासे ही होते हैं। प्रज्ञा और प्राणकी प्रधानतासे देवताओंका शरीर बनता है।

एक तो काल हुआ, दूसरे कालाभिमानी देवताओंका राज्य हुआ। राज्य कितना है? जैसे हमारा दिन जितना बड़ा होता है, उसका एक क्षेत्र है। फिर हमारे दिनसे पंद्रह गुणा दिन जहाँ होता है, उसका एक क्षेत्र है। फिर हमारे दिनके हिसाबसे छह महीनेका जहाँ दिन होता है, वह एक क्षेत्र है। उसके बाद देवलोक, उसके बाद विद्युत् और उसके बाद सूर्य। और वहाँ अमानव पुरुषका साक्षात्कार होकर फिर ब्रह्मका अधिष्ठान होता है। यह क्षेत्र बढ़ गया—माने, कोई एक जिलेका राजा है, कोई एक प्रान्तका राजा है, तो कोई एक राष्ट्रका राजा है, तो कोई चक्रवर्ती सम्राट् है। ऐसे ही ये देवताओंके क्षेत्र जो हैं—वे बढ़ते ही जाते हैं। जब मनुष्यको सूर्य लोकमें जाना पड़ता है, तो पहले छोटे क्षेत्र वालेमें-अहर्में, उसके बाद शुक्ल पक्षमें—जहाँ पंद्रह दिनकी रात और पन्द्रह दिनका दिन होता है—उसके बाद उत्तरायणमें और फिर उसके बाद सूर्यलोकमें वह क्रम-क्रमसे जाता है। सूर्यलोकमें जानेके बाद प्राणाभिमानको निवृत्त करनेवाले तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जानेसे जो ब्रह्म रूपसे आत्माकी उपासना—निष्काम उपासना करनेवाले महात्मा हैं, वे परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं। उनको क्रममुक्ति हो जाती है।

अब जो लोग सकाम भावसे रहते हैं? यह दुःख जितना है दुनियाँ मैं—यह सब कामका बेटा है। जिसको कुछ नहीं चाहिए, उसको न तो कुछ करना है, न कुछ पाना है। करना तो उसीको है, जिसको पाना है। तो करनेमें भी तकलीफ होती है,

और अपनी चाही हुई चीज न मिले—तो भी तकलीफ होती है। तो दु:खकी जितनी सृष्टि है, वह सब कामनामें-से होती है। अगर दुनियाँमें कोई दु:खी है—तो किसी न किसी अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके लिए; दुश्मनको मारनेके लिए या दोस्तको पानेके लिए; गरीबीको मिटानेके लिए या अमीरीको प्राप्त करनेके लिए। उसके मनमें मनोरथ है, और उस मनोरथ, उस इच्छाके लिए वह दु:खी हो रहा है।

अब यह जो मनुष्यके मनमें इच्छा है,-उसको कोई दूसरा चाहे, कि हम मिटा दे हाथसे पकड़के उस इच्छाको—तो यह दूसरेके बसकी बात नहीं है। अपनेको ब्रह्म न जाननेके कारण अपनेको जीव जानते हैं। तो अपनेको ब्रह्म न जानना अज्ञान है, और अपनेको जीव जानना भ्रान्ति है। वेदान्त सम्प्रदायमें अज्ञान और भ्रान्तिमें भेद माना जाता है। इसको अध्यास बोलते हैं। अपनेको ब्रह्म न जानना अज्ञान है, और अपनेको जीव जानना-परिच्छिन्न, संसारी, कर्ता भोक्ता—यह भ्रान्ति है; यह अध्यास है। अज्ञान जो है, वह अनिर्वचनीय कारण रूप होतो है, और यह जो भ्रान्ति है, यह जो अध्यास है—यह बुद्धिरूप होता है। तो जब अपनेको छोटा मान लेते हैं, तब दुनियाँमें बहुत सारी चीजें ऐसी होती हैं, जो हमोरे मनको मुताबिक नहीं रहती है। अपने मनके मुताबिक न हो—और मिले; तो दु:ख होतो है, और अपने मनके अनुकूल हो, और मिले—तब सुख होता है। तो संसारमें दु:खी-सुखी कौन है? कि जो अपनेको परिच्छिन्न शरीरसे एक करके बैठे हुए हैं, और अपने परमात्मा—स्वरूपको भूल गये हैं। उन्हींका नाम सुखी और दु:खी है।

तो अब समझो—कि संसारमें कोई भी जीव ऐसा नहीं, जिसके मनके मुताबिक ही हर काम होवे। यह तो ईश्वरके सिवाय दूसरे जीवकी स्थिति कभी हो ही नहीं सकती। जीव तो बड़ी छोटी चीज है, और ईश्वर तो बड़ी वस्तु है। और ब्रह्म जो है—उसमें न छोटापन है, न बड़ापन है; वह तो व्यष्टि और समष्टि—छोटेपन और बड़ेपनसे विनिर्मुक्त है। और अपनी आत्माको ब्रह्म न जाननेके कारण अपनेको छोटा मान बैठा, तो बोला-हमको यह नहीं मिला, यह नहीं मिला; और हमारे यह आ गया, यह आ गया। कोई कहता है कि हम जिस सड़कपर चलते हैं, उस सड़कपर हमारा दुश्मन न चले। अब कहीं दुश्मन दिख गया सड़कपर, तो कलेजा जल गया। तो कलेजा जल गया-इसमें दुश्मन कारण नहीं है, दुश्मनी कारण है: दुश्मन दूसरी चीज है। दुश्मन तो सड़क पर चल रहा है, और दुश्मनी कलेजेमें चल रही है! तो यह जो जलन होती है, यह अपनी वृत्तिके दोषसे होती है। तो संसारमें यह हमको न मिले—ऐसी इच्छा, और यह हमको मिले—ऐसी इच्छा—ये दोनों अन्त:करणमें रहती हैं

अब जब हम अपनेका जाने-आनेवाला और कर्ता, प्राण मान करके, और इस इच्छाको लेकर बैठ जाते हैं, तब इस इच्छाके अनुसार हमारी गति होती है। जिसकी जितनी इच्छा कम होती है, वह उतना ही भारमुक्त होता है। इच्छाका भार होता है मनुष्यके चित्तमें। तो अधोगति कैसे होती है? फिर लौटना क्यों पड़ता है? कितना भी ऊँचे जाओ, जबतक भारमुक्त नहीं होओगे, तबतक वह भार फिर तुमको लौटा करके ले आएगा। और यदि भारसे मुक्त हो गये, तो माने पृथ्वीके वातावरणसे मुक्त हो गये! भीमसेनने प्रतिद्वन्दीको इतने जोरसे फेंका, कि वह पृथ्वीके वातावरणसे बाहर हो गया और पृथ्वीकी परिक्रमा करने लगा। क्यों? कि वह भारसे मुक्त हो गया। तो अपने अन्त:करणको ऐसा बनाना, कि इसमें कामनाका भारन रहे। तब तो प्राणात्मा इसको लेकरके ऊपर बढ़ता है; और जब कामनाका भार रहता है, तब प्राणात्मा कितना भी ऊपर जाय—जैसे गीध कितने भी ऊपर उड़े, अन्तमें उसकी नजर मांस पर पड़ती है, और वह नीचे आकरके गिर पड़ता है; इसी प्रकार यह कामना जो है—यह मनुष्यको एकाध बार ऊपर ले भी जाय कभी-कभी, तो वहाँसे फिर नीचे आना पड़ता है। और यदि कामना न हो, तो ऊपर जानेके बाद नीचे आनेका कोई कारण नहीं होता। तो जितना भी दु:ख है दुनियाँमें, वह अपनी बेवकूफीसे है। इसमें ईश्वरका हाथ बिलकुल नहीं है। ईश्वर किसीको दु:खी नहीं करता। क्यों? बोले—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।

परमात्मा तो आनन्द-रूप है।

रसो वै सः—वह तो रसरूप है।

आनन्दो ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।

ईश्वरके हाथ भी आनन्दके हैं।

आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि।

ईश्वरका मन भी आनन्दरूप है। जिस चीजको हाथ लगा देता है ईश्वर, वह आनन्द-रूप हो जाता है।

तो ईश्वर किसीको दु:ख नहीं देता, प्रकृति किसीको दु:ख नहीं देती, प्राण किसीको दु:ख नहीं देते। यह मिट्टी, पानी, आग किसीको दु:ख नहीं देते; ये दोस्त, दुश्मन, स्त्री, पुरुष किसीको दु:ख नहीं देते। अपने मनमें इनका जो भाव है न, वही दु:ख देता है। संसारमें आज जो स्त्री-पुरुष दु:खी हैं—इसका क्या कारण है? इसका कारण है खोपड़ीका उल्टा होना। सिवाय बेवकूफीके दु:ख होनेका कोई और कारण

नहीं है। बापसे बेटा नाराज हुआ; रोने लगा। तो इसमें बेटा वजह है या बाप वजह है? नहीं, अपना दिल वजह है। अपना दिल कामनासे युक्त हो गया, कि हमारे मनके मुताबिक सब होना चाहिए। ये बड़े-बड़े धनी और ऊँची कुर्सीपर बैठनेवाले जो होते हैं—उनको यह जिद रहती है कि जो मेरे मनमें आया, वही होना चाहिए। इसी कारण वे गरीबोंसे ज्यादा दु:खी रहते हैं। गरीब लोग ज्यादा दु:खी नहीं रहते। हम आपको विश्वास दिलाते हैं; गरीबोंमें रहनेका हमको काम पड़ा है। हम हल जोतने वालोंको जानते हैं, फावड़ा चलानेवालोंको जानते हैं। गाँवमें जो रहते हैं, दिनभर मौजसे खेती करते हैं, और अरहरकी, चाहे मटरकी मोटी-मोटी रोटी नमकके साथ खाते हैं। और ये जो कंकड़-पत्थर पड़े होते हैं न सड़कपर, उनके ऊपर पीठका सहारा लेकर सोते हैं। घर्र-घर्र नाक बजती है उनकी; ऐसी नींद उनको आती है। क्यों? कि उनको इस बातकी वासना नहीं है, कि गाँवका मालिक हमारी इच्छाके अनुसार काम करे। इसलिए उनको दु:ख नहीं होता है।

तो यह सम्पूर्ण दु:खोंका मूल जो है—यह बेवकूफी मूलमें, और वासना बीचमें है। अब जो बिलकुल अंधकारमें, और वासनाओंकी गड़बड़ीमें पड़ जाते हैं, उनके चित्तमें लड़ाई होती है—यह वासना पूरी करें, यह वासना पूरी करें—और फिर वे वासनाओंके संघर्षमें जड़ हो जाते हैं। जड़ होकर वे मिट्टीसे, या राखसे मिल जाते हैं। चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद तब उनको मनुष्य शरीरकी प्राप्ति होगी, माने—ऐसा वासनाओंका संघर्ष अपने चित्तमें होनेसे आदमीका दिमाग खराब हो जाता है, बेहोशी आ जाती है। बेहोशी होनेसे वह जड़ हो जाता है। और जो अपनी कामना पूर्ण करना चाहते हैं, और पुण्य कर्मका आचरण करते हैं, वे धूम मार्गसे ऊपर जाते हैं, और वासना पूरी करनेके लिये उनको फिर सृष्टिमें आना पड़ता है। वे ज्वालाके साथ नहीं मिलते। निर्मल होंगे, तो ज्वालाके साथ मिलेंगे, और धूमिल होंगे, तो ज्वालाके साथ कैसे मिलेंगे? वह धुएँके साथ मिलेगा, जिसका दिल ही धुआँ हो गया—***धू धू करके जला रही है अंतस्तल की ज्वाला।*** और धुआँ उठ रहा है कलेजेमें।

एक पंडित थे। वे कहते थे—हमारे बापकी छातीपर बाल बहुत हैं। क्यों? बोले—अपने हृदयमें ही ये यज्ञ करते रहते हैं। यज्ञाग्निका धूआँ बालके रूपमें इनकी छातीपर बढ़ आया है; ये यज्ञाग्निके धूम हैं। हमने बहुत लोमश देखे हैं। जिनके सारे शरीरपर प्राय: बड़े-बड़े बाल होते हैं—उनको लोमश कहते हैं। ऐसे जो पुरुष होते हैं, वे प्राय: बहुत भोले-भाले चित्तके होते हैं। छल-कपट वे बेचार कम जानते हैं।

अब कहो, कि वह कालिख रोयाँ बनकर निकल गई, तो हृदय शुद्ध हो गया। तो धुएँके साथ कौन मिलते हैं ? मलिन चित्त। और अग्निके साथ कौन मिलते हैं ? उज्ज्वल चित्त। और राखके साथ कौन मिलते हैं ? कि जिनका चित्त बिलकुल मरियल हो गया है। भोग-प्रधान जो लोग हैं, और धर्मका उल्लंघन करते हैं, वे माटीमें मिलते हैं। और जो भोग-प्रधान होकर धर्मका पालन करते हैं, धर्मावतार भोग भोगते हैं, वे धुएँके साथ मिलकर ऊपर जाते हैं, और फिर लौट आते हैं। और जिनके मनमें भोगकी वासना नहीं है, और धर्मानुष्ठान करते हैं, वे ज्वालाके साथ मिलकर ऊपर जाते हैं, क्योंकि वे बड़े निर्मल हैं। और जब ऊपर जाते हैं न, तो ये देवता लोग क्या करते हैं ? जैसे दिनका देवता जब मिलेगा न, तो वह जीवात्माको चन्दन लगावेगा, माला पहनावेगा, आरती उतारेगा, और बोलेगा—वाह ! वाह ! तुम बड़े पुण्यात्मा रहे अपने जीवनमें, निष्काम ! अब हम तुम्हारा सत्कार करते हैं। ऊपर चलो। ऊपर चले, तो शुक्लपक्षका देवता मिला, तो बोला—आइए ! आइए ! बड़ा स्वागत किया—चन्दन लगाया, माला पहनाईं, हाथ जोड़ा, आदर किया, कहा—महाराज, ऊपर जाइए ! उत्तरायणका देवता मिला। ये सब इनके क्षेत्र होते हैं। जैस देखो—हम महाराष्ट्र प्रान्तमें हैं। अब यहाँसे पूरब जाना हो, या दक्षिण जाना हो—आगे चल करके वहीं आन्ध्र प्रदेश मिलेगा, कहीं मध्यप्रदेश मिलेगा लेकिन ये सब-के-सब भारतवर्षके अंतर्गत हैं ना। तो बम्बई जिलेको पार करेंगे, तो थाना जिला मिल जायेगा; महाराष्ट्र प्रान्त वहाँ भी रहेगा। तो इस प्रकार यह जो दिनका भाग है, वह जिला सरीखा है। शुक्लपक्ष प्रान्त सरीखा है, और उत्तरायण राष्ट्र सरीखा है। उसके बाद जो देवलोक है, वह जैसे बाहरका देश-एशिया हो ऐसे है। इनके भूगोल बड़े-बड़े होते हैं। और आगे बढ़े, तो सवितृ-मण्डलमें आ गए; सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें आ गये। सवितृ मण्डलके बाद जब अमानव पुरुषकी प्राप्ति हुई, तब ब्रह्माण्डका सिर-भेदन करके उसने क्रम मुक्तिके मार्गसे परमेश्वरमें मिला दिया। परमेश्वरका जो मार्ग है ना, वह केवल ब्रह्माण्डका नहीं है, अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके रोम-रोममें उस प्राकृत मण्डलका भेदन करके परमात्माकी प्राप्ति हो गई।

तो भौगोलिक दृष्टिसे भी लम्बाई-चौड़ाई होती है, और कालिक दृष्टिसे भी लम्बाई-चौड़ाई होती है। और जीवात्माकी जो व्याप्ति है, वह कितनी है ? कितना बड़ा है जीव ? कि ज्वालाके बराबर, अग्निकी अर्चिके बराबर जीव है। उसके बाद ? कि दिनका प्रकाश जितना बड़ा होता है, उतना बड़ा जीव। उसके बाद एक पक्षके बराबर जितना दिन, उतना बड़ा जीव; सौ महीने जितने, उतना बड़ा जीव। जीवकी जो व्याप्ति है; वह बढ़ते-बढ़ते सौर जगत्में व्याप्त हो जाता है-ऐसी है। और उसके

बाद ब्रह्माण्ड मण्डलमें व्याप्त चेतनके साथ एक हो जाता है, और उस मायासे परे हो जाते है। यह गति है। तो भौगोलिक दृष्टिसे पिण्ड, ब्रह्माण्ड और माया देशका उल्लंघन, और कालिक दृष्टिसे पिण्ड, ब्रह्माण्ड और माया देशका उल्लंघन! इन प्रकार ये शुक्ल और अग्निर्मय ज्योति-ये दोनों एक हैं, क्योंकि अर्चिरादि मार्गका ही वर्णन वेदोंमें है, और सूत्रोंमें भी है—**अर्चिरादिना प्रतीयते** सूत्र है ब्रह्मसूत्रका; और **अर्चि संभवन्ति।** इस प्रकार अग्निमय ज्योति दिग्देवता है; अग्नि देवता अलग और ज्योति देवता अलग-ऐसा नहीं है। इसके बाद शुक्ल पक्षका देवता, फिर उत्तरायणका देवता, इसके बाद देवलोक, इसके बाद विद्युत् पुरुष-सूर्य लोक, उसके बाद परब्रह्म परमात्मासे एक! इस प्रकार निष्काम योगी उन्नतिको प्राप्त होते हैं।

ये जो सकाम हैं, ये भी दो तरहके होते हैं—एक तो कामनाके वशवर्ती होके पाप करते हैं, और एक कामनाके वशवर्ती होके भी पाप नहीं पुण्य करते हैं; अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये पुण्य मार्ग पर चलते हैं। यह पितृयान मार्ग दक्षिणायन मार्ग है। दाहिनी ओरसे उनका रास्ता ऊपरको जाता है। तो इसमें धूम जो है, वह वासनाका है—धूमाभिमानी देवता-उसकी एक व्याप्ति लेकिन धुआँ जहाँ तक जाता है, उससे बड़ी व्याप्ति किसकी है? कि रात्रिकी। रात तो बहुत दूर-दूर तक होती है ना। जहाँ-जहाँ तक दिन होता है, वहाँ-वहाँ तक रात होती है। उसके बाद पन्द्रह रातके बराबर एक रात-यह कृष्ण पक्ष हो गया। उसके बाद सौ महीनेकी रातके बराबर एक रात। तो देखो, देश भी लम्बा होता गया, और काल भी लम्बा होता गया, और उसकी व्याप्ति भी लम्बी होती गयी।

उसके बाद यह चान्द्रमस ज्योतिको प्राप्ति हुई। अब वह ठंडी चीज है। ठंडी चीज नीचे आती है। और गरम चीज ऊपर जाती है। तो ज्वालाका मार्ग ऊपर जानेका मार्ग है, और चान्द्रमस-जो शीतल ज्योति है-उससे नीचे आनेका मार्ग है। इस तरहसे इस मार्गसे जो योगी जाता है, वह लौटके आता है। यह लौटनेका चक्करका रास्ता है। तीन रास्ते हैं; एक गड्ढेमें गिरनेका रास्ता है-वह पाप है। आगे चक्कर लगानेका मार्ग है-वह क्या है? कि पाप नहीं, कामना है। और ऊपर जानेका रास्ता क्या है? कि निष्काम वासना। कामना फिर चक्कर कटाती है, और पाप नीचे ले जाते हैं, और निष्काम पुण्य ऊपर ले जाते हैं। उस रास्तेसे जाने पर फिर लौटना नहीं पड़ता, और इस रास्तेसे जाने पर लौटना पड़ता है। तो—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥ २६॥

अब फल बताते हैं। गति माने रास्ते; ये दो रास्ते हैं। तुम्हारा मन हो आने-जानेके रास्ते पर चलनेका, तो आने-जानेके रास्ते पर चलो, और तुम्हारा मन न आनेके रास्ते पर चलनेका हो, तो उस रास्ते चलो। जिसकी दुनियाँमें बड़ा मजा मालूम पड़ता है ना, वह उसमें लौटके आना चाहता है। जो वैराग्यवान् होता है, दुनियाँसे विरक्त होता है-उसको दुनियाँकी कोई चीज अच्छी नहीं लगती। वह कहता है-हमको तो ईश्वर चाहिए। अभी मिल जाए-तो बहुत बढ़िया, और अभी न मिले, चलना भी पड़े-तो उस रास्तेसे चले; सफेद रास्तेसे चलें, काले रास्तेसे क्यों जाना? **शुक्लकृष्णे—**

एक सफेद मार्ग है, एक काला मार्ग है। गंगाजीके किनारे जब चलते हैं ना, तो बालुका चमचम चमकती हुई चलती है। और ऐसे-ऐसे देश भी मिलते हैं, जहाँ केवल चक्कर लगाना ही हाथ लगे—और मिले कुछ नहीं? एक शुक्लगति है और एक कृष्णगति है। व्यापार भी दो तरहका होता है ना—एक सफेद, एक काला। जिनको जल्दी धनी होनेकी हविस होती है। वे लोग काला व्यापार करते हैं, और जो कहते हैं—भाई, धनसे बड़ी चीज ईमानदारी है—वे सफेद व्यापार करते हैं। कई तरहके लोग होते हैं; किसीको काला पसन्द होता है, किसीको लाल पसन्द होता है, किसीको सफेद पसन्द होता है। और कोई आलसी होता है, तो महाराज, तान दुपट्टा सोना ही उनको पसन्द आता है। सोने वालेकी तो कहीं गति नहीं होती है। तो ये दो मार्ग हैं।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः और उधर **तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य**—दोनोंमें इसका अन्वय होता है; कि तत्र प्रयाता योगी, 'प्रयाता'का इसने 'प्राप्य' कर लिया। अब-

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥ २६॥

एकया प्रयाता अनावृत्तिं याति अन्यया प्रयाताः पुनः आवर्तते। यह 'प्रयाता' इसमें भी जोड़ना। तो अब देखो-कृष्ण मार्गसे चलना, कि शुक्ल मार्गसे चलना? माने शास्त्र कहते हैं-कि दो घड़ी जीओ; बड़ी लम्बी उम्र प्राप्त करनेकी कोई जरूरत नहीं है। लम्बी उम्रमें क्या रखा है? **मूहूर्तमपि जीवेत शुक्लेन कर्मणा**-दो घड़ी जीओ, लेकिन चमकके जीओ। एक तारा आकाशमें चमक गया, भले दो घड़ी रहा। और रहे बरसों, लेकिन किसीने देखा ही नहीं; चमका ही नहीं, तो उसका रहना क्या हुआ? कोयला बनके रहा। हीरा बनके रहना पसन्द करते हो,

कि कोयला बनके रहना पसन्द करतेहो? यह शुक्लगति जो है-वह हीरा है, और कृष्णगति क्या है? कि कोयला है। तो यह कामना ही कोयला है। सेवा करना, प्रेम करना! जीवनको काला मत बनाओ; उसको श्वेत बनाओ, उज्ज्वल बनाओ। जब अपना कर्म उज्ज्वल होता है, अपना भाव उज्ज्वल होता है, तो हृदय भी उज्ज्वल हो जाता है और हम उज्ज्वल परमात्मासे मिल जाते हैं। और अपने दिलको अगर काला बना लिया, अपने कर्मको काला कर लिया, तो यह जो काली बकरी है—इसके साथ मिलना पड़ता है। तो शुक्ल कर्म करो—अपने उज्ज्वल वंशमें, उज्ज्वल पुरुषोंने जैसा कर्म किया है।

दुनियाँके सब लोगोंको शुक्ल अथवा कृष्ण गति हमेशासे प्राप्त होती रही है। एक गतिसे जानेपर अनावृत्ति प्राप्त होती है, और एक रास्तेसे जाने पर अन्धेरेमें भटककर फिर लौट आना पड़ता है। अब व्यवहारिक बात बताते हैं, कि हे पार्थ! जो योगी इन दोनों मार्गोंको जान लेता है, वह मोहमें नहीं पड़ता। मोहमें पड़ जानेसे क्या होगा—कि अन्धकारके रास्तेमें भटक जायेंगे। यह मोह जो है ना—यह स्वयं अन्धकार है।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥२७॥

हे पार्थ! **एते सृती जानन्योगी कश्चन योगी न मुह्यति। कश्चन**—कोई-कोई योगी ऐसे होते हैं, जो जान लेते हैं इसको। वे फिर मोह नहीं करते हैं। मोहको आप पहचानते हैं। जब धनमें मोह होता है, तो परिवार भूल जाता है; अपना देह भी भूल जाता है। माने मोहमें वह मोहनी शक्ति है—कि जब एक जगह आदमी मोहमें फँस जाता है, तो दूसरी बात उसको दिखाई नहीं पड़ती। धनका मोह हुआ, तो खाना पीना पहनना—सब भूला। बस, बस, बस; धन, धन, धन! उसका होना क्या—इसका पता नहीं। हम ऐसे लोगोंको जानते हैं, जिनके बेटा नहीं, बेटी नहीं; कोई आगे खानेवाला नहीं; और वे सबेरे उठके टेलीफोन उठाते हैं, तो 'के भाव है?' पहला प्रश्न यही होता है। कि ध्यान है? के धारण है? तुम्हारा क्या ध्यान है, क्या धारण है भविष्यके बारेमें? दिन भर पैसा कमाते हैं; खाना-पीना भी ठीक नहीं, दान भी नहीं, धर्म भी नहीं। यह भी उनको मालूम नहीं कि सरकारको जायेगा पैसा, कि डाकू-चोर ले जायेगा। छूट जाने पर क्या होगा—इसका कुछ पता नहीं। एकने पूछा हमसे—करोड़पति आदमी है, उसके बेटा-बेटी कुछ नहीं है—उसने कहा—स्वामीजी। हमारे पास बीस हजार रुपया था, और अब करोड़ रुपये हमारे पास है।

पता नहीं चलता, कि हमारे बाद इस धनका क्या होगा। सबेरेसे सोने तक बस कमाई, कमाईमें लगे रहते हैं। ऐसी आदत पड़ गयी। ऐसा मोह हो गया, कि छूटता ही नहीं। किसीको स्त्रीसे, पुरुषसे मोह हो जाय, तो धन छूट जायेगा कि नहीं ? चाहे जितना धन खर्च करो, जिससे मोह है, वह मिले। ऊँची कुर्सीसे मोह हो जाय तो स्त्री, पुत्र, धन—सब छोड़कर कुर्सी पे लग जाते हैं। जहाँ मोह होता है, वहाँ मनुष्य अपने आपको भूल लाता है। लेकिन यह जीवात्मा जो है—यह शरीर नहीं है। शरीरके बाद भी इसको एक रास्ते पर चलना पड़ता है; यही चीज—जिसमें आपकी याद बनी रहती है। बचपनमें जो देखा—आज याद आता है। एक अमरूदके पेड़में चढ़ गये बचपनमें। उतरना ही न आवे। अब चिल्लाना पड़ा—कि भाई! उतारो। अमरूदका पेड़ तो बहुत छोटा होता है। देखो, अपनी ही बात सुना दी ना। हमको पेड़पर चढ़ना बिलकुल ही नहीं, आता। दूसरे किसीको भी पेड़पर चढ़ते देखते हैं ना, तो हाथो—पैरोंमें एक तरहकी हरकत होने लगती है।

तो अब हम आपसे यह पूछते हैं, कि वह पाँच वर्षकी उम्रमें जो पेड़पर चढ़ गये, आज याद आती है उसकी—तो वह याद कहाँ रखी है ? हड्डीमें क्या याद रहती है ? खूनमें याद रहती है ? चाममें याद रहती है ? जीभमें, दांतमें याद रहती है ? वह पेड़ पर चढ़नेका जो संस्कार है, वह कौन सी भीतर जगह है, कौनसा भीतर ऐसा खजाना है—जिसमें जमा है ? तो अगर पचास वर्षमें वह स्मृति, और वह संस्कार नहीं कट गया, तो आगे अपने आप कट जायेगा—यह कैसे मालूम पड़ा ? ऐसे-ऐसे स्वप्न आते हैं ! जो चीज कभी नहीं देखी, जो चीज कभी नहीं पढ़ी—वह सब कहाँसे आते हैं ? उनका जो खजाना है ना, उसीको संस्कृतमें आशय बोलते हैं। उसमें संस्कार होता है। उसमेंसे वह निकलता है। तो मरनेके बाद क्या होगा ? पंचभूतमें यह शरीर कैसे बन गया—इस पर विचार करो; प्रकृतिमें यह कैसे बन गया, ईश्वरमें यह शरीर कैसे बन गया—बिना कर्म संस्कारके कैसे आती हैं ? इनसे छूटनेका उपाय क्या है ? यह नहीं समझना, कि किसी कच्चे-बच्चेने कह दिया—कि मरनेके बाद कुछ नहीं रहता है—और तुमने कह दिया—कि मरनेके बाद कुछ नहीं रहता है—और तुमने ताली पीट दी—कि आहा ! एक गम्भीर विज्ञान है ना इसका। तो जो इसको पहचान लेता है, वह योगी कहीं मोह नहीं करता।

देखो, भागवतमें एक प्रसंग है—कि राजा चित्रकेतुका बेटा मर गया। वह बहुत रोया, बहुत सिर पीटा, बहुत दुःखी हुआ। नारदजी आये, तो उन्होंने कहा—कि तुम्हारे माँ-बाप तुम्हारे बिना बहुत दुःखी हैं। अब अपने इस पुराने शरीरमें तुम

प्रवेश करो, और कुछ दिन सम्राटके पुत्र होकर भोग भोगो संसारके। तुम इससे निकल क्यों गये? तो यह जीव बोला—कि हमको अपने हजारों जन्मकी याद है। इतनी माताएँ हुई हैं हमारी, और इतने पिता हुए हैं हमारे, कि हम जब याद करते हैं कि ये किस जन्मके हमारे माता-पिता हैं, तो कई बारकी तो याद आती है—कि ये हमारे बेटे थे, हम इनके माता-पिता थे—और कई बार ऐसी याद आती है कि ये माता-पिता हुए, और हम बेटे हुए।

कस्मिन् जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन्।

ये कब मेरे लिये माँ बने, और कब मेरे लिये पिता बने? न मेरे लिये कभी ये माँ बने और न कभी बाप बने। यह तो जीव अपने कर्मानुसार एक योनिसे दूसरी योनिमें, दूसरी योनिसे तीसरी योनिमें भटकता रहता है। पद्मपुराणमें तो लिखा है कि जिसका कर्जा लिया था न, वह चुकाया नहीं। अब अपना कर्जा वसूलनेके लिये आकर बेटा बन गया; और जब बाप मर जायेगा, तो बटा उसका सारा धन ले लेगा। वह दुश्मन—जिसे तुमने सताया था—आकर बेटा बनेगा, और मर जायेगा; और तुम रोओगे उसके लिए। बोले—पिछली बार हमको तुमने रुलाया था, अब हम तुमको रुलाते हैं।

तो यह जो जीवात्मा है, यह हड्डी-मांस-चाम नहीं है; यह विष्ठा मूत्र नहीं है; यह अन्नमय कोष नहीं है। सबके सूक्ष्म सम्बन्ध अलग होते हैं, सूक्ष्म शरीर अलग होते हैं। केवल मर जानेसे काम नहीं बनेगा। जबतक सूक्ष्म शरीरसे सम्बन्ध नहीं छूटेगा, जबतक कारण शरीरसे सम्बन्ध नहीं छूटेगा—जबतक ब्रह्म-प्राप्ति नहीं होगी; तबतक संसारके बन्धनसे छुटकारा नहीं हो सकता। तो जो इस मार्गको जानता है—माने देह छूटनेके बाद आत्मा वासनाके अनुसार दक्षिण मार्गसे जाता है, और भोग-वासनसे आबद्ध होकर अधोगतिको प्राप्त होता है—वह **न मुह्यति**; वह इस संसारमें, स्त्रीमें, पुरुषमें, धन-दौलतमें, मकानमें, सम्मोहको प्राप्त नहीं होता। इसलिए क्या करना चाहिए?

तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥ २७॥

इसलिए मेरे प्यारे मित्र अर्जुन! भोले-भाले! **सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भव।** सब कालमें तुम योगयुक्त हो जाओ।

☆

२०

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥ २८॥

आपने ध्यान दिया—कि जो लोग निषिद्ध कर्म करते हैं; उनको ऊपर जानेका मार्ग नहीं मिलता है। निषिद्ध कर्म और विहित कर्म—दो प्रकारके कर्म हैं। कर्मके बढ़ियापनसे निश्चित नहीं होता, कि यह बहुत बढ़िया कर्म है, इसलिए यह करेंगे—तो यह धर्म है; और यह बहुत बुरा कर्म है—यह करेंगे तो अधर्म है। कर्मके बढ़ियापन और बुरेपनका निश्चय करके कोई वह कर्म करे, और बोले—कि हमको धर्म हो गया—तो ऐसे धर्म नहीं होता। यह बड़ी अद्‌भुत बात है; कि जैसे कोई यह कहे—कि यह स्त्री बहुत सुन्दर है, यह हमको मिलनी चाहिए, तो स्त्रीके सौन्दर्यका निश्चय करके उसको प्राप्त कर लेना; जैसे स्त्री-पुरुषका सौन्दर्य ही उसकी प्राप्तिका कारण नहीं होता, उसके लिए यह देखना पड़ता है—कि ऐसा करना धर्म है कि नहीं। तो सौन्दर्यसे अलग एक धर्म हुआ न। इसी प्रकार भोजनकी वस्तु है। एकने फलाहारका निश्चय किया; और उसके सामने बहुत बढ़िया खीर बनकर आई, तो उसका जो फलाहारका निश्चय-है—उसमें वह खीर, हलवा, पूरी बहुत बढ़िया होनेपर भी उसका सेवन करना अधर्म हो जायेगा। इसी तरहसे लोग कहते हैं कि प्याजसे बहुत लाभ है; लाभदायक होनेसे ही वस्तु सेवन योग्य नहीं होती। यह देखना पड़ता है—कि यह विहित है कि नहीं, यह निषिद्ध है कि नहीं। यहाँ तक कि कर्मके सौन्दर्यसे भी धर्मका निश्चय नहीं होता, और कर्ताके सौन्दर्य से भी

धर्मका निश्चय नहीं होता। क्यों? कि कोई बड़ा कर्ता होवे, और देखनेमें, बोलनेमें बहुत बढ़िया होवे, बुद्धिमान् होवे, जो चाहे सो करे—तो इससे भी धर्मका निश्चय नहीं होता। बोले—उनकी नीयत बहुत अच्छी थी—इससे भी धर्मका निश्चय नहीं होता। धर्मका निश्चय तो संवैधानिक है। इसलिये जो किया—सो संविधानके अनुसार किया, कि संविधानके विरुद्ध किया। यही निर्णायक होता है। आजकल भी मनुष्यके कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय उसकी बुद्धि पर नहीं छोड़ा जाता—संविधानके अनुसार रहकर उसकी बुद्धिपर छोड़ा जाता है। तो धर्मके विरुद्ध न हो—इसके लिए उसमें कर्मकी भावकी शुद्धि, कर्मकी पवित्रता—यह सारी बातें देखी जाती हैं। यदि वह धर्मके विरुद्ध होवे, तो उसमें कर्ता, भाव और क्रियाका सौन्दर्य कोई काम नहीं देता।

असलमें मनुष्य निषिद्ध कर्म करता कब है? किसने निषेध किया—यह जाननेकी कोई जरूरत नहीं है। हम कहते हैं; एक बच्चेने निषेध किया; न वह विद्वान् है, न बुद्धिमान् है, न बड़ा है—तब भी उसकी आज्ञा माननी चाहिए। बच्चेने आकर कहा—कि यह काम मत करो—तो उसके निषेधका उल्लंघन तुम क्यों करते हो? वह काम करनेकी बड़ी वासना है, भोग भोगने की बड़ी वासना है। ऐसे नहीं। लेकिन वह बच्चा कभी आकर कह दे—कि जो भोजन तुम करने जा रहे हो, उसमें जहर पड़ा है; मत खाओ—तो देखो मजा। बच्चेकी बात मान लेते हो—कि नहीं? तो अदृष्टके सम्बन्धमें, नरकके सम्बन्धमें, अधोगतिके सम्बन्धमें—असलमें उसपर विश्वास न होनेके कारण ही हम निषेधका उल्लंघन करते हैं, और अपनी वासनाके अनुसार चलते हैं। तो शास्त्र-विधिका उल्लंघन जो होता है—वह तीव्र वासनाके कारण होता है।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ १६.२३
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ २४॥

यह बात भगवान्ने गीतामें कही।

अब प्रश्न आता है, कि अच्छा, अधोगतिका जो मार्ग है—उसको छोड़ देवें, उर्ध्वगतिके मार्गको अपनावें। तो उर्ध्वगतिमें भी दो मार्ग हैं; प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग; कर्मसे छूटनेके लिए कर्म करना, और अधिक से अधिक कर्म करनेके लिए कर्म करना। तो समझो—भौतिक वस्तुके शोधनके लिये जो कर्म होता है,

उसको तो आजकल श्रम बोलते हैं। श्रम करो, भाई! श्रम करो। आराम हराम है। काहेके लिये? कि इस्पातका उत्पादन बढ़ाओ; वह देशके लिए बहुत आवश्यक है। अन्नका उत्पादन बढ़ाओ, वह देशके लिए बहुत आवश्यक है। बिजलीका उत्पादन बढ़ाओ, वह देशके लिए बहुत आवश्यक है। तो उसमें जो काम करनेवाले लोग होते हैं, उनको 'श्रमी' बोलते हैं—श्रमिक। भौतिक वस्तुओंका शोधन और उत्पादन और संवर्द्धन उनका लक्ष्य है। और आध्यात्मिक वस्तुओंका शोधन और उनकी उपलब्धि जहाँ लक्ष्य होता है, वहाँ धर्म होता है। तो लौकिक उन्नतिसे लेकर पारलौकिक उन्नति तक उन्नति करना, आना-जाना, नीचे गिरना-उठना बढ़ते जाना। मनुष्यसे भूल हो जाती है; भूल होना कोई अपराध नहीं है। सबसे भूल होती है। जो रास्तेमें चलेगा, उसका पाँव कभी फिसलेगा। जो मोटर चलायेगा, उसका कभी एक्सीडेंट हो जायेगा; लेकिन कभी गलती हो जानेके बाद फिर वहीं बैठ रहना, आगे न बढ़ना—बोले, बस-बस, अब क्या आगे बढ़ेंगे—यह बड़ा भारी अपराध है। गलती होवे—फिर उठो, आगे बढ़ो, पाँव फिसल गया, गिर गए। उठो, फिर आगे बढ़ो, पीछे नहीं लौटो। धर्म आगे बढ़नेके लिये है, पीछे लौटनेके लिए नहीं।

तो यह प्रवृत्ति धर्म जो है, यह चक्करदार है। जितने चाक चलते हैं, न, पहिए चलते हैं—वह चाहे कपड़ा बनानेकी मशीन हो, चाहे बिजली पैदा करनेकी मशीन हो, चाहे इस्पात बनानेकी मशीन हो—उसमें एक चक्र चलता है। उसको गति—अगति बोलते हैं; जाना और आना। ऊपर गये, नीचे आये—प्रवृत्ति है यह। निवृत्ति उसको कहते हैं, जिससे छूट जाये। तो निवृत्ति मार्ग क्या है? कि परम पुरुषका ध्यान, महापुरुषका ध्यान, ध्येय परमेश्वरका जो वर्णन आठवें अध्यायमें बताया—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।

परम पुरुषका ध्यान करो।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।

अनन्य भक्ति करो। इससे मनुष्य ऊपर उठता है। ऊपर उठते-उठते जब महापुरुषकी प्राप्ति होती है, तब अमानव पुरुष इस चक्रसे छुड़ा देता है। यह उसका पद्धति है।

अब इसके सिवाय एक शुद्ध मार्ग होता है। वह क्या है? कि न नीचे जाना है, न चक्करमें पड़ना है, न ऊपर जाना है। यहीं—जहाँ है, वहीं—भीतर ही

अध्यात्मका शोधन करके अपनी आत्माके शुद्ध स्वरूपको पहचान लेना, और यहीं मुक्त हो जाना। तो इसमें क्या करना पड़ता है? कि इसमें **सर्वं खल्विदं ब्रह्म, सर्वं ब्रह्म स्वभावजं**—यह सम्पूर्ण ब्रह्मसे ब्रह्ममें **ब्रह्मनि ब्रह्म जृम्भते**—ब्रह्ममें ब्रह्म फुरफुरा रहा है। इसमें न नरक है न स्वर्ग, न पुनर्जन्म; न अधोगति है न ऊर्ध्वगति, न चक्र; एक अखण्ड परमात्मा परिपूर्ण है, और उसीमें यह सब फुरफुराहट हो रही है। और वह परमात्मा क्या है? अपनी आत्माका स्वरूप! तो परब्रह्मके साक्षात्कारसे परब्रह्मसे अभिन्न अपनेको जानना—यह अद्वैत वेदान्त नहीं है। अपनेसे अभिन्न ब्रह्मको जानना—यह अद्वैत वेदान्त है। अद्भुत गति है इसकी। आप लोग शायद सम्प्रदायके सिद्धान्त जानते होंगे; अलग-अलग आचार्योंके कथनके भेदपर भी ध्यान दो। अब वह भेद क्या है?

देखो, श्रीरामानुजाचार्यजी जीव और जगत्—दोनोंको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं। जीव और जगत्—दोनोंको ब्रह्मसे अभिन्न वल्लभाचार्यजी और निम्बार्काचार्यजी भी मानते हैं। परन्तु शंकराचार्य भगवान् ब्रह्मको आत्मासे अभिन्न मानते हैं। ब्रह्मसे अभिन्न आत्मा—कि ठीक है; बोले—तुम जो कहते हो—सो बिलकुल ठीक। श्री रामानुजाचार्यकी बात, श्री वल्लभाचार्यजीकी बात, श्री निम्बार्काचार्यजी की बात बिलकुल ठीक है—ब्रह्मसे अभिन्न यह आत्मा है, और ब्रह्मसे अभिन्न यह जगत् है। जगत्का अभिन्न-निमित्तोपादान कारण ब्रह्म है—ठीक है। ब्रह्मसे भिन्न न जीव है, न जगत् है। जीव ब्रह्मका अंश है—यह भी ठीक है। लेकिन बोले—चैतन्य तो वही होता है ना—प्रत्यक्! अपनी आत्माका नाम चैतन्य होता है, और इसीसे सब कुछ ज्ञात होता है। यही सबका प्रकाशक है। यही स्वयं—प्रकाश है, यही सर्वाधिष्ठान है। तो इसके ब्रह्मत्वका जो ज्ञान है, वह कोई भावनात्मक नहीं है—कि कोई परोक्ष बड़ा भारी ब्रह्म है। जैसे सौ रुपयेमें दस रुपया सामाया हुआ है, इस तरहसे बड़े ब्रह्ममें यह छोटा ब्रह्म—जीव-समाया हुआ है—ऐसा नहीं। जैसे मिट्टीमें घड़ा है—ऐसे नहीं; जैसे सूतमें कपड़ा है—वैसे नहीं। तब? यह रज्जु—स्थानीय आत्मा है, और सर्प-स्थानीय प्रपंच है; आकाश-स्थानीय आत्मा है और नीलिमा-स्थानीय सम्पूर्ण जगत् है। इस तरहसे अपनी आत्मासे भिन्न दूसरी कोई चीज नहीं है; न दूसरा जीव है, न दूसरा जगत् है, न दूसरा ब्रह्म है। इस प्रकारका जो सिद्धान्त है—कि ब्रह्म कारण और हम कार्य, और कारणसे कार्य अभिन्न—ऐसा नहीं है। अपनेसे अभिन्न ब्रह्म है—वह भी द्रष्टा; और द्रष्टा—द्रष्टा एक! जैसे ब्रह्मसे अभिन्न आत्मा है, वैसे ही आत्मासे अभिन्न ब्रह्म है।

अहं ब्रह्म परमधामा ब्रह्माहं परमं पदम्।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥

भा० १२.५.११

इसको शुद्ध मार्ग बोलते हैं। माने, ध्येयका निरूपण दूसरी वस्तु है, और ज्ञेयका निरूपण दूसरी वस्तु है। शंकराचार्य भगवान्‌का जो निरूपण है—वह ज्ञेय-प्रधान है, और श्रीरामानुजाचार्य आदिका जो निरूपण है—वह ध्येय—प्रधान है। शास्त्रमें दोनोंका ही निरूपण आता है। जो जैसे अधिकारी होते हैं, वे उसको ग्रहण करते हैं। तो—

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन्।

अब इस मार्गको जान लो—कि यह प्रवृत्ति मार्ग है, और यह निवृत्ति मार्ग है; यह क्रम मार्ग है और यह पुनरावर्तनका मार्ग है। जब योगी इसको जान लेता है, तो इसमें मोहित नहीं होता, माने फिर वह संसारमें जानेका जो काम है—वह नहीं करता।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन।

इसलिए हे अर्जुन! तुम हर समय—सर्वेषु कालेषु—काम कुछ भी करो—योगयुक्त रहो। हमारे एक महात्मा कहते थे—कि भले हाथमें खुरपा लेके छीलो; मशीन चलाओ, फावड़ा चलाओ—लेकिन जिस समय जो काम आ जाय, उसको पूरी सावधानीसे करना, माने—उस समय फिर मन दूसरी जगह नहीं जाना चाहिए। उसमें पूरी तरहसे लग जाना चाहिए। यह योगीका काम है। जैसे समझो—कि आपलोग बैठके श्रवण कर रहे हैं, और हम आपको सुना रहे हैं। तो हमको ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, ज़िससे आपके श्रवणमें बाधा पड़े; और आप लोगोंमें भी किसीको ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिससे आपके श्रवणमें, और हमारे प्रवचनमें बाधा पड़े। जो जिस समय हम कर रहे हों, उसको सबसे बढ़िया काम समझके करना चाहिए।

देखो, हम पेड़—पौधोंमें पानी दे रहे हैं, और तुम आ गये; तो तुम्हें कहा—तुम भी पानी दो। क्यों? कि यह सबसे श्रेष्ठ काम है। घायल दुश्मन आया—जिसने तुम्हारे ऊपर आक्रमण किया था—तो तुम उसकी सेवा करो—कि वह सबसे बढ़िया आदमी है, कि ईश्वर आया है। बैशाख मास और कार्त्तिक मास बढ़िया नहीं होता; बढ़िया समय वह है—जो समय सेवामें, बढ़िया काम करनेमें बीत जाए। कि देखो—आजकी रात तुम्हारी कितने बढ़िया काममें बीती है—एक घायलकी सेवा

करते हुए। इसके अन्दर ईश्वर बैठा हुआ है। तो सबसे बढ़िया मनुष्य कौन? कि जो अपने सामने है। सबसे बढ़िया काम कौन? कि जो हमको करनेको मिलता है। सबसे बढ़िया समय कौन? कि भूत नहीं—कि आहा! कितना बढ़िया समय हमारे सामने आया था—कि यादकरके रोओ; कि नहीं—छह महीनेके बाद एक बहुत बढ़िया योग आनेवाला है। अरे, तबतक जिन्दा रहोगे, तब ना! मर गये, तो? वह छह महीना किस काम आवेगा? वर्तमान समयको ठीक-ठीक व्यतीत करना, सामने वाले पुरुषसे ठीक-ठीक व्यवहार करना और जो काम करते हो—उसको अपना पूरा मन लगाके करना!

महाभारतके अनुशासन पर्वमें यह कथा आती है—कि महाभारत-युद्ध जब समाप्त हो गया, और श्रीकृष्ण विदा होने लगे, तो अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—कि हे श्रीकृष्ण! जो गीताका उपदेश तुमने हमको किया था, उस समय तो घंटे—घड़ियाल बज रहे थे, और मार-काटकी ध्वनि आ रही थी चारों ओरसे—सो मैंने ध्यानसे नहीं सुना। भूल गया; जरा फिरसे सुना दो। श्रीकृष्णने कहा—अरे राम, बड़ी गलतीकी तुमने, अर्जुन! उस समय मैं योग-युक्त था, जब मैंने तुम्हें गीता सुनाई थी। अब वैसा योग-युक्त मैं कैसे होऊँ—कि फिर सुनाऊँ? अरे, उस समय जो बात मुँहसे निकलनी थी, निकल गयी!

तो मनुष्यको सावधान रहना चाहिए। **योगयुक्तो भवार्जुन** का यह अर्थ नहीं, कि सब जगह प्राणायाम करने बैठ जाना चाहिए। एक आदमीने कल-परसों हमें बताया, कि माँ तो घड़ेमें पानी भरके ले आती है नीचेसे ऊपर; अब वह कहती है—कि उतरवा दो, तो बच्चे कहते हैं—कि हम माला फेर रहे हैं, हम कैसे उतरवावें? अब लेके बेचारी खड़ी रहे। तो माला फेरनेमें तो बड़ा भारी पुण्य है, और माँके सिरसे घड़ा उतरवा देनेमें पुण्य नहीं है? यह भ्रान्ति है; भूल है।

तो सब समयमें सावधान रहना, चित्तको एकाग्र रखना, और जो काम हो रहा है—उसीमें ईश्वरकी सेवा समझना; उसी कामको पूरे मनोयोगके साथ करना। 'योगयुक्त' का यह अर्थ नहीं है, कि आसन बाँधके, पीठकी रीढ़ सीधी करके, प्राणायाम करके बैठ गये; बोले—अब योगयुक्त हुए। योगयुक्तका अर्थ है—मनका अपने स्थानपर रहना। जैसे आप अभी इस हालमें बैठे हुए हैं—तो आपका मन कहाँ है? हालके भीतर है, कि बाहर है? यदि आपका मन हालके भीतर है, और प्रवचन सुन रहा है—तो जो काम कर रहे हैं आप, उसमें योगयुक्त हैं। और यदि बैठे हैं प्रवचनमें, और याद कर रहे हैं दुकानकी—तो आप योगयुक्त नहीं हैं। और बैठे

हैं आप; समय है आठ बजेके आसपासका, और याद कर रहे हैं बारह बजेकी— तो भी योगयुक्त नहीं हैं। और बैठे हैं यहाँ, और याद कर रहे हैं श्रीमतीजीकी—तो भी योगयुक्त नहीं हैं। योगयुक्तका अर्थ है—कि सावधान होकरके, पूरे मनोयोगके साथ अपने प्राप्त कर्तव्यका अनुष्ठान करते जाना।

राम भजे जा काम किये जा।
का कालू ते डर रे!

तो बोले—भाई!

तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन।

सर्वेषु कालेषु—सब समयमें सावधान, सावधान! सोनेमें भी सावधान, जागनेमें भी सावधान। सवेरे उठनेमें भी सावधान। शास्त्रमें ऐसे लिखा है—कि नींद टूटते ही पहले किसकी याद करना? बोले—भगवान्‌की याद करना। धरती पर पाँव रखना, तो कहना—तुम हमारी माँ हो। भगवान्‌का स्मरण करना, गुरुका स्मरण करना। मांगलिक वस्तुका दर्शन करना—माने अपना सारा दिन मंगलमय काममें व्यतीत करना है। अपने आपको कहीं ऐसी जगह बाँधके रख दिया—कि बस, रोवो, रोवो! हर बातमेंसे दुःख निकाल बैठना; यह कोई जिन्दगीका सार नहीं है; यह जिन्दगीका रहस्य नहीं है। हर जगह अनुकूल भाव होना चाहिए ना। भावकी अनुकूलता हृदयमें आनी चाहिए।

योगयुक्त—शंकराचार्य भगवान्‌ने योगयुक्तका 'अर्थ समाहित' लिखा है। शंकराचार्य भगवान्‌का जो भाष्य है ना, तत्काल अविद्या—निवर्तक भाष्य है। वह श्रवण—रूप भाष्य है। मधुसूदनीको मनन बोलते हैं; शंकरानन्दीको निदिध्यासन बोलते हैं। श्रीरामानुजाचार्यने बताया—

अर्चिरादिगतिचिन्तनाक्ष्य योगयुक्तो भव।

तो फिर सर्वेषु कालेषु नहीं बनेगा। कहते हैं—कि अर्चिमार्ग ऐसा, पितृयान मार्ग ऐसा, देवयान मार्ग ऐसा—इसका निरन्तर चिन्तन करना—ऐसा '**योगयुक्त**'का अर्थ है। और शंकराचार्यने कहा—कि हर समय अपने चित्तको समाहित रखो। आप देखो! दोनोंमें जो फर्क है, वह आपकी बुद्धिमें स्वयं आ जायेगा। देवयान और पितृयान मार्गका निरन्तर चिन्तन कोई मनुष्य काहेको करेगा?

तो जो काम करना हो, वह सावधान होकरके करो। ऐसा करनेसे क्या होगा? बोले—मोह नहीं होगा। योगयुक्तका अर्थ भक्तलोग करते हैं—कि **मद्योगयुक्तोभव**—ईश्वरका स्मरण रखो। एक बात आपको यह

सुनावें, कि यह जो हमारे शास्त्रोंमें आता है—कि हर समय योगयुक्त रहना, इसका यह मतलब नहीं है कि सामनेसे नजर हटाके सातवें आसमानमें नजर ले जाना।

जाके पिया परदेश बसत हैं, लिख लिख भेजत पाती।
मोरे पिया मोरे हृदय बसत हैं, रोल करूँ दिन राती॥

तो देखो, ईश्वर सम्पूर्ण जगत्‌का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है—यदि यह बात पहचान लो, या यह मानो—कि वह विवर्ती अभिन्न निमित्तोपादान कारण है; चाहे वैष्णव मतको स्वीकार करो, चाहे शांकर मतको; एक एक पत्ता, एक-एक तृण, एक-एक कण, एक-एक स्त्री, एक-एक पुरुष उसी ईश्वरसे बने हुए हैं, सबके भीतर चैतन्यके रूपमें ईश्वर है, और सबके शरीरोंका मसाला भी ईश्वर है—**यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्**—तो जो चीज हर जगह, हर रूपमें और हर समय मौजूद है, उसका स्मरण करनेके लिए सातवें आसमानकी ओर देखनेकी कोई जरुरत है? वह तो—

जँह जँह चलौं सोइ परिकरमा
जो जो करौं सो पूजा।

हर जगह ईश्वर दिखेगा तो योगयुक्तका अर्थ हुआ—जो भी काम करो, जिससे भी मिलो, जो भी देखो, उसमें **ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्**—सम्पूर्ण जगत्‌में ईश्वर दिखे। अगर जानते हो, तब तो ईश्वर दिखेगा हर जगह, और नहीं जानते हो, तो ईश्वरसे आवासित कर दो। कम-से-कम यह निश्चय तो दृढ़ हो जाए—कि हमारा सारा व्यवहार ईश्वरमें ही हो रहा है! तो—

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्-

बोले, भाई! वेदका स्वाध्याय करो। पुण्य है; क्या पूछना! क्योंकि वेद अपौरुषेय वाणी है। रघुवंश पढ़ते हैं, तो कालिदास उसके कर्ताके रूपमें हमारी बुद्धिमें आरुढ़ हो जाता है। और जब कर्ता बनके बैठ गया हमारे दिलमें, तो जो परमात्माका अकर्ता शुद्ध स्वरूप है—उसको वह कैसे दिखावेगा? अपौरुषेयका बहुत बड़ा अर्थ है। वह ज्ञान—जो विषयको 'इदं' और जाननेवालेको 'अहं'—दो रूपोंमें बाँट देता है—सच्चा ज्ञान नहीं है। ज्ञानमें दो विवर्त होते हैं —यह घड़ी है—यह तो इदं हुआ, और—मैं घड़ीको जानता हूँ—यह अहं—मैं हुआ। ये दोनों ज्ञानके बच्चे हैं। इन दोनोंकी लड़ी जोड़नेवाला, कड़ी जोड़नेवाला ज्ञान। तो ज्ञान तीन टुकड़े-ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान—बन करके, तिकड़े-तिकड़े

बन करके जाना गया। तो ज्ञान कौन है? किं **वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्**। वेदको अपौरुषेय क्यों बोलते हैं? कि यह उस ज्ञानका स्वरूप बताता है, जिसमें ज्ञेय इदं रूपसे उपस्थित नहीं होता, और ज्ञाता अहं रूपसे उपस्थित नहीं होता। ज्ञानके अनन्त अखण्ड समुद्रमें डूब करके ज्ञाता और ज्ञेय—दोनों चकनाचूर हो जाते हैं। ऐसे ज्ञानके स्वरूपका निरूपण करता है वेद; इसलिए उसमें पुरुषकी उपस्थिति नहीं होती। पुरुषकी उपस्थिति नहीं होनेसे ज्ञाता और ज्ञानके भेदसे रहित है यह ज्ञान, इसलिए उसे अपौरुषेय ज्ञान बोलते हैं। नहीं तो क्या होता है? कोई योगी, कोई गुरु, कोई ज्ञानी, कोई सम्प्रदायाचार्य अपनेको बीचमें लाके खड़ा कर देगा; और ज्ञान तो पड़ जायेगा पीछे, और वह आचार्य आगे आ जायेगा। वेदान्तको हम इसलिए स्वीकार नहीं करते—कि उन्होंने वेदान्त कहा है। अद्वैत ब्रह्मका निरूपण करनेके कारण शंकराचार्य प्रामाणिक हैं; शंकराचार्यके द्वारा निरूपित होनेके कारण अद्वैत वेदान्त प्रामाणिक नहीं है। वस्तुकी प्रधानतासे वेदान्त है, व्यक्तिकी प्रधानतासे नहीं। इसीलिए वेद-उपनिषद् ऐसे ज्ञानवादी माने जाते हैं! उनका नाम ब्रह्मविद्या है। इसलिए उनका नाम ब्रह्मविद्या है, कि वे पुरुषके अन्तःकरणसे—जिसमें भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापारव आदि दोष होते हैं—निकले हुए नहीं है। तो वेदसे पवित्र और कोई भी ज्ञान नहीं है, क्योंकि वह व्यक्तिकी स्थापना नहीं करता है। ये पट्ठे जितने सम्प्रदाय और सम्प्रदायवाले हैं, वे एक आदमीको सिर पर बैठा देते हैं; और वेद जो हैं, वह आदमीको सिरपर नहीं बैठाता—बल्कि अपने व्यक्तिको भी चूर-चूर कर अद्वैत ब्रह्मकर देता है। इसलिए वेदसे पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

यज्ञेषु—अब वेदने बताया यज्ञ। यज्ञमें भी बड़ी विलक्षणता है। उससे क्या होता है? बोले—अन्तःकरणकी शुद्धि। सोद्देश्य जब द्रव्यका त्याग होता है—उसको यज्ञ कहते हैं। उद्देश्य है—देवताके लिए हवि-त्याग। अब ये देवता भी वेदके मन्त्रसे बनते हैं, पैदा होते हैं। वेदका सिद्धान्त विचित्र है; देवता विग्रह-अधिकरण है पूर्व-मीमांसामें—बड़ा भारी विचार है। आजकल तो शाबर भाष्यको भी मीमांसक लोग भी नहीं मानते हैं। ऐसा विचित्र निरूपण है। देवता विग्रहवती होती है कि नहीं; देवताकी मूर्ति होती है कि नहीं—यह इस पर विचार है। तो पूर्व मीमांसाके मूलमें—शाबर भाष्यमें यह विचार किया गया है, कि देवताके विग्रह होता नहीं; मूर्ति होती नहीं। तब क्या होता है? कि जब हम

मन्त्र पढ़ते हैं ना, तो उस मन्त्रकी शक्तिसे देवता उत्पन्न होता है। जैसे एक साथ हजार कुण्डमें यज्ञ किया जाय, हवन किया जाय, और **वज्रहस्त पुरंदरः। इन्द्राय स्वाहा** करके हवन किया जाय, तो हजार यज्ञमें हजार इन्द्र पैदा होंगे, और युगपत् आहुतिको ग्रहण करेंगे। मन्त्र-शक्तिसे प्रकट होता है इन्द्र; इन्द्र नामका मूर्तिमान कोई पदार्थ नहीं है। इसके बादके जो व्याख्याता लोग हैं ना पूर्वमीमांसाके; खण्डदेवने तो तो लिखा है—कि ऐसी बात करनेमें हमारी जीभ शर्माती है—**जिह्लति जिह्वा**—जिह्वा हमारी लज्जित होती है। जो बात शाबर भाष्यमें लिखी है, वह हम कैसे बोलें!

तो यज्ञमें कितना आत्म—सामर्थ्य है! नवीन देवता, नीवन लोक! यज्ञके द्वारा नवीन स्वर्गका निर्माण कर सकता है मनुष्य! यज्ञके द्वारा नवीन देवताका निर्माण कर सकता है। अपने सामर्थ्य, अपने ऐश्वर्य, अपने प्रभावका अनुभव करनेके लिए यज्ञ है।

तपःसु चैव—और आत्म-संयम! भोग और भोग-क्रियाको काबूमें कर लेना बड़ा पुण्य है। और **दानेषु**—जो द्रव्य इकट्ठे किये गये हैं ना—दूषित; उनके साथ ममता करनेसे भी मनुष्य दूषित हो जाता है। यह बेईमानीके साथ कमाया हुआ जो धन है, उसको मेरा समझने वाला भी बेईमान हो जाता है। लोग कहते हैं—ईश्वर हमारे अब तक क्यों नहीं आया है? बाले—कि हमने बेईमानीसे एक करोड़ रुपया कमाया, और उसमेंसे पचास लाख दान कर दिया। अब भी ईश्वर नहीं आया! बोले—अभी पचास लाख है तुम्हारे पास बेईमानीका। बेईमानीमें आधेमें ईश्वरको खरीद लें, और आधा अपने पास रखें—ऐसा लोग सोचते हैं। अरे भाई, कुछ परिश्रम करो। सचमुच तुम्हारे स्वत्वकी कोई चीज होवे! वह अगर दान करो—देखो! क्या पुण्य होता है। वैसे तो जो चीज जुड़ गयी है अपने साथ अच्छी-बुरी, सब द्रव्यको छोड़ देना—यह पवित्रताका आपादक है, क्योंकि दुर्भाव जो मनमें है—वह इससे निकलता है। तो दानमें बाहरकी वस्तुएँ छोड़ी जाती हैं, और तपस्यामें भोग और इन्द्रियका संयम करके अन्तःकरणको शुद्ध किया जाता है। यज्ञसे अपने सामर्थ्यका अनुभव किया जाता है, और वेदमें परमात्माको—धर्मको जाना जाता है। अपौरुषेय ज्ञान है। तो ज्ञात दानके लिए वेद, वैभवके अनुभवके लिए यज्ञ, और अपने संयम सामर्थ्यको—कि इन सब चीजोंके बिना भी हम रह सकते हैं—इसका अनुभव करनेके लिए तपस्या और यह जो अंट-शंट अपने पास जुड़ गया है, जिन पर अपना कोई स्वत्व नहीं,

जिनपर अपना कोई ममत्व नहीं, ऐसी चीजें अपनी जिन्दगीमें आ गयी हैं—इनको छोड़ देना—दान। इनसे पुण्य फलकी प्राप्ति होती है। लेकिन यह प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग यदि जान जाओ ना—तो महापुरुषकी प्राप्ति हो जायेगी।

अत्येति तत्—वह महापुरुष, वह ध्यानगम्य परम-पुरुष, वह सत्पुरुष—उसकी प्राप्ति हो जाय, तो **तत्सर्वं। अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा**—यह जो मार्ग—द्वय है, ये जो दोनों मार्ग हैं—इनको जान करके, अथवा आठवें अध्यायमें जिस प्रतिपाद्य वस्तुका वर्णन किया गया है—उसको जान करके—**किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।** ये जो सात अथवा आठ अथवा दस प्रश्न जो किये गये, उनके उत्तरका जो विवेचन है—उसको ठीक-ठीक जान जाए, तो **तत्सर्वं अत्येति**—उस सबका अतिक्रमण कर जाता है।

तमेव विदित्वा—अतिक्रमण कर जाता है, क्योंकि **सर्वकर्म-संस्काराणां भगवत्स्मृत्या विफलीकरणात्**—भगवान्‌का जब स्मरण होता है, परमपुरुषका जब स्मरण होता है, तो सब कर्म, और कर्मोंके संस्कार जो हैं—वे सब-के-सब विफल हो जाते हैं। तो,

अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा—इसको जानो, केवल इसको समझो। इसमें ज्ञानका माहात्म्य बताया। यह एक प्रकारकी विज्ञापनकी पद्धति है। क्या? कि भाई, वेद पढ़ो, क्योंकि उसमें बड़ा पुण्य है। यज्ञ करो—कि इसमें बड़ा पुण्य है। तपस्या करो; उसमें बड़ा पुण्य है। दान करो—उसमें बड़ा पुण्य है। हाँ, पुण्य तो है ही! इसमें कोई बात नहीं। ये जो दो सृति बताई—देवयान और पितृयान; यह अर्चिरादि मार्ग और धूमादि मार्ग जो बताया—इन दोनोंको जाननेसे क्या लाभ होगा? कि जाननेसे भगवान्‌का स्मरण होगा, और भगवान्‌का स्मरण होनेसे कर्मके जो संस्कार बैठे हुए हैं हृदयमें, वे सब-के-सब धुल जायेंगे।

योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्—और फिर इस योगीको परम स्थान परमात्माकी प्राप्ति, परम पुरुषकी प्राप्ति होगी, और आदिस्थानकी प्राप्ति होगी। **परमं स्थानं।** और वह कैसा? कि **आद्यम्-आदौ भवं।** आद्य माने—जो शुरू-शुरूमें है। सबके प्रारम्भमें जो स्थान है—उस स्थानकी प्राप्ति हो जाती है इस अध्यायके स्वाध्यायसे।

अब आपको एक बात सुनाते हैं इस अध्यायके सम्बन्धमें। आठवें अध्यायका श्रवण करनेसे बड़ा भारी आनन्द होता है। बोले—दक्षिणापथमें एक आमर्दक नामका पुर है। वहाँ भवशर्मा नामके एक बड़े दुराचारी ब्राह्मण थे। वेश्या

उनके पास, माँस उनके पास, शराब उनके पास! चोरी वे करें, परस्त्री उनके पास, शिकार वे करें। थे तो ब्राह्मण, पर बड़े पापी थे; बड़ा उग्र जीवन व्यतीत करते थे। एक दिनकी बात है—उन्होंने ताड़ी पीली, और मर गये। मरने पर ताड़के पेड़ हो गये; महात्म्यमें ऐसा वर्णन है। तो एक पति-पत्नी किसी कारणसे ब्रह्म-राक्षस हो गये थे। वे दोनों घूमते फिर उस ताड़ पेड़के नीचे आये। वे दोनों भी ब्रह्मराक्षस इसलिए हुए थे, कि उनकी पत्नी कुमति थी। ब्राह्मणका नाम था कुशीबल, और पत्नीका नाम था कुमति। दान तो वे सबसे लेते थे पहले जन्ममें, लेकिन दानका जो हिस्सा दान करना चाहिए—वह नहीं करते थे। काल पुरुषका दान वे लें, घोड़ेका दान वे लें, तुलादान वे लें, लेकिन दान लेकर उस दानको पचानेके लिए जो दान करना चाहिए, सो वे नहीं करते थे। इसलिए ब्रह्मराक्षस हो गये थे वे दोनों। धनकी शुद्धि बिना दानके होती नहीं है।

अब वे दोनों ब्रह्मराक्षस घूमते फिरते उसी ताल वृक्षके नीचे आये, तो पत्नीने पूछा—कि पतिदेव! हमारा इस योनिसे कभी उद्धार हो सकता है, कि नहीं? उसी ताड़के पेड़के नीचे बैठे थे वे; तो उन्होंने कहा—देखो, उद्धार तो तब होता है, जब आदमी ब्रह्मविद्याका विचार करे। अपने अध्यात्मका विचार करे—कि आँखके भीतर कौन है, कानके भीतर कौन है। अध्यात्म इसको बोलते हैं। ये लोगोंके जेबमें अध्यात्म नामके जो पर्चे होते हैं ना, 'अखिल विश्व अध्यात्म विद्या मण्डल', उसका नाम अध्यात्म नहीं होता है। आजकल अखिल विश्वसे कम तो कोई संस्था होती नहीं है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-मण्डलकी जो अध्यात्मविद्या संस्था है, वह जेबमें है। एक सज्जन बताते थे—कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मण्डलका जो संत मण्डल है, उसके पार्लियामेंट बोर्डका मैं प्रेसीडेंट हूँ।

बोले—कि अध्यात्म माने शरीरके भीतर हमारी क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति कैसे काम करती है, और उसको पावर कहाँसे मिलती है, प्रकाश कहाँसे मिलता है—उसका जो विचार करता है, उसका नाम अध्यात्म विचार है। सो ब्रह्मविद्या प्राप्त हो, अध्यात्मविचार प्राप्त हो, कर्मविधान प्राप्त हो, तब जाकरके मुक्ति होती है; ऐसा पतिने बताया। तब पत्नीने पूछा—

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म?

ब्रह्म क्या है? कर्म क्या है? अध्यात्म क्या है? सो गीताका आधा श्लोक आ गया। ब्रह्मराक्षसीने अपने पति ब्रह्मराक्षससे प्रश्न किया उसी ताड़वृक्षके नीचे

बैठकर। तो सुनते ही वह ताड़का पेड़ चरमराके गिर पड़ा, और उसमेंसे एक मनुष्य निकल आया। अब तो बड़ा आश्चर्य हुआ ब्रह्मराक्षसको! अरे बाबा! तुम कहाँसे निकले? बोला—यह जो गीताका आधा श्लोक बोला ना तुमने आठवें अध्यायका, इसको सुनकर मैं इसमें-से निकल पड़ा। अब तो वह वहाँसे निकला, और काशी गया। वहाँ गीताके आठवें अध्यायका रोज पाठ करे। तो एक दिन वैकुण्ठमें विष्णु भगवान् नींद ले रहे थे। अब नींद ही न आवे भगवान्‌को। लक्ष्मीजीने पूछा—कि देव, आज आपको नींद क्यों नहीं आ रही है? तो बोले—कि काशीजीमें गंगाके तटपर एक बड़ा मेधावी ब्राह्मण मेरी भक्तिसे भर करके गीताके आठवें अध्यायका पाठकर रहा है। उस पर मैं संतुष्ट हो गया हूँ, और विचार कर रहा हूँ, कि ऐसी क्या चीज है दुनियाँमें, जो दे दें उसको! यह विचार करनेके कारण आज नींद नहीं आ रही है। लक्ष्मीजीने कहा—कि जिसके ऊपर आप प्रसन्न हैं, और उसे कुछ देनेके लिए चिन्तामें पड़ गये हैं—वह कैसा भक्त होगा! बोले—देवी, यह गीताके आठवें अध्यायका फल है। तो जो आठवें अध्यायका पाठ करता है, उसका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए मैं व्याकुल हो जाता है।

तो ऐसा समझो—यह गीताका आठवाँ अध्याय तो '**अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।**' शंकराचार्य भगवान् कहते हैं—कि पहले इसको जानो, उसके बाद इसके अनुसार अनुष्ठान करो। ब्रह्मविद्यामें यह अपरा विद्या है। इस आठवें अध्यायको समझो—माने सात प्रश्नोंके निर्णय द्वारा जो बात कही गयी है, उसको भली भांति समझ करके **अवधार्य अनुष्ठाय च**—उसका अवधारण करो और उसका अनुष्ठान करो, तब परमेश्वरकी प्राप्ति होगी।

श्रीरामानुजाचार्यने भी यही बात कही है—कि इस अध्यायमें जो भगवन्माहात्म्यका वर्णन है, वह सब **वेदेन सुखातिरेकेण तत्सर्वं तृणवत् मन्यते।**

जानकारीका बड़ा विलक्षण सुख होता है। भोगीको तो मालूम पड़ता है—कि भोगसे सुख होता है। जैसे बच्चा होता है ना; उसको काहेका सुख मालूम है? कि भाई, जीभ पर पड़ा—तो बोला, बड़ा मजा आया! तो बच्चेको जीभपर कुछ पड़नेसे ही सुख मिलता है; उसके पास दस हजारका नोट रख दो, तो नन्हें बच्चेको उसका सुख नहीं है। अब वह इससे बड़ा हुआ, भले एक दिन खाना न मिले, लेकिन सुखी हो जायेगा उस रुपयेसे। और उससे भी बड़ा हुआ, बोले—भले दस हजार खर्च करना पड़े, लेकिन ऊँची कुर्सी पर बिठा दो एक दिन। संस्थाका अध्यक्ष बना दो, तो दस हजार दान भी कर देगा। तो देखो, ऐसे

मनुष्यके ख्याल बढ़ते हैं। तो संसारके भोगी लोग भोगको सुख मानते हैं। और लोभी लोग? लोभी लोग धनको सुख मानते हैं। और संग्रही लोग? संग्रही लोग भी धनको सुख मानते हैं और अभिमानी लोग अपने अभिमानको सुख मानते हें, अभ्यासी लोग अभ्यासको सुख मानते हैं। यह तो अपना-अपना ख्याल है। असली सुख क्या है? अपने व्यक्तित्वको परमात्माके साथ एक कर देनेमें जो सुख है, उसको देखो। यदि सबमें एक ही मनुष्य है—तो उसको परमात्माका सुख मिल रहा है। तुम सबमें एक हो गये, कि नहीं? सब समय सब देशमें एक! न देशका विरोध रहा, न कालका विरोध रहा, न व्यक्तिका विरोध रहा! न वस्तुका विरोध रहा। परमात्मासे मिल जानेपर कैसा सुख प्राप्त होता है!

इसको आप ऐसा सोचो—कि जैसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमें व्यापक, जो हमेशा अजर-अमर सत्स्वरूप, सबका प्रकाशक चित्स्वरूप, और सर्वका आनन्द है, जिसका कोई शत्रु नहीं, कोई विरोधी नहीं —ऐसा, जो अपने स्वभावमें स्थित है—ऐसा जो परमात्माका आनन्द है, वह परमात्मासे एक होने पर मिलता है। ऐसा आनन्द तुम्हें न भोगमें मिलता है, न कर्ममें मिलता है, न अभिमानमें मिलता है, न अभ्यासमें मिलता है। ऐसा आनन्द तो केवल परमात्मासे एक होनेमें मिलता है। और कोई पद्धति नहीं है।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!



अक्षरब्रह्म योग

श्रीमद्भगवद्गीताका आठवाँ अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीताके आठवें अध्याय को अक्षरब्रह्म योग, महापुरुष योग, प्रणवब्रह्म योग आदि नामोंसे जाना जाता है।

'ज्ञान' प्रमाणके विभागमें है–वस्तुको दिखानेवाला, और 'ध्यान' निर्माणके विभागमें है–जीवनको बनानेवाला। जीवनको आप जैसा बनाना चाहते हो वैसा ध्यान करो।

साधकके जीवनमें जब ध्यानकी विशेषता आती है, तब वह ज्ञानके योग्य हो जाता है। यदि साधक जीवनमें ज्ञानका अभ्यास हो गया तो ज्ञान होने पर भी वह विशेषता बनी रहेगी और साधकके जीवनको चमकाकर निष्ठावान् ज्ञानीके रूपमें लोगोंके सामने रख देगी।

ध्यानके प्रसंगका निरूपण करनेके लिए 'अक्षरब्रह्म योग' है। कैसे भगवान्‌के नामका जप करना, कैसे महापुरुषका ध्यान करना और कैसे अक्षरब्रह्म-निर्गुणब्रह्मका ध्यान करना–विशेष करके इन तीनों बातोंको जानने के लिए आइये! यह आठवाँ अध्याय आरम्भ करें।

आनन्द कानन प्रेस
टेढ़ीनीम, वाराणसी • फोन : 2392337